साहित्य समालोचना ग्रन्थमाला—12

वैदिक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

(भाग-दो)

लेखक

डॉ० सुधीकान्त भारद्वाज

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक

हरियाणा साहित्य अकादमी

चण्डीगढ़

प्रथम संस्करण 1989
प्रतियां 1100
मूल्य 30.00 (तीस रुपये मात्र)

सम्पादन प्रकाशन
डॉ० पृथ्वीराज कालिया
विजेन्द्र जसराम

कला
रामप्रताप वर्मा

मुद्रक पवन प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

भूमिका

'वैदिक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, भाग-दो' का प्रकाशन भारत सरकार की हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत किया गया है। विश्वविद्यालय स्तर की पढ़ाई हिन्दी माध्यम से सम्भव कराने के लिए विभिन्न विषयों की पुस्तकें तैयार करवाने की यह योजना वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के तत्वावधान में विभिन्न ग्रन्थ अकादमियों एवं पाठ्य पुस्तक प्रकाशन बोर्डों द्वारा क्रियान्वित की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा अब तक 147 पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक इस योजना का 148वां प्रकाशन है।

वैदिक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास भाग-दो पुस्तक डॉ० सुधीकान्त भारद्वाज, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक द्वारा लिखी गई है। प्रस्तुत पुस्तक छः अध्यायों में विभक्त है। इसमें वेदांगों की पृष्ठभूमि, शिक्षा वेदांग, कल्पसूत्र, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष का सरल और सहज भाषा-शैली में समझाया गया है।

पुस्तक हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा साहित्य की विभिन्न विधाओं, प्रख्यात साहित्यकारों के कृतित्व तथा मध्यकालीन साहित्य का वस्तुनिष्ठ विवेचन

प्रस्तुत करने के उद्देश्य से साहित्य समालोचना की पुस्तकें लिखवाने की योजना के अन्तगत तैयार करवाई गई है। इस योजना में विशेष सलाहकार हरियाणा साहित्य अकादमी की ग्रंथ प्रभाग समिति के सदस्य तथा सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० नामवर सिंह हैं। योजना को पूर्णता प्रदान करने में डॉ० आर० एन० श्रीवास्तव, डॉ० नित्यानन्द तिवारी, डॉ० बलदेव सिंह और डॉ० सत्यव्रत शास्त्री ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। हम इन विद्वानों के आभारी हैं।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक का छात्रों, शिक्षकों तथा काव्य-शास्त्रियों द्वारा स्वागत जाएगा।

अमर नाथ शर्मा	[signature]
अध्यक्ष	निदेशक
हरियाणा साहित्य अकादमी	हरियाणा साहित्य अकादमी
चण्डीगढ़	चण्डीगढ़

प्राक्कथन

हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा 'वैदिक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' लिखने का मूल प्रस्ताव मुझे अगस्त, 1986 में प्राप्त हुआ था। इस कार्यक्रम के अनुसार यह ग्रन्थ इस वर्ष के प्रारम्भ में पाठकों के हाथ में पहुँच जाना चाहिए था। दुर्भाग्य से कुछ तो अनपेक्षित प्रशासनिक विप्रतिपत्तियों और कुछ सेवाविषयक परिस्थितियों की परवशताओं के कारण इसके लेखन का कार्य दिसम्बर 87 से पहले प्रारम्भ न हो सका। पुनश्च लेखन-कार्य प्रारम्भ करने के पश्चात् भी बीच-बीच में अनुभव होने वाली प्रामाणिक ग्रन्थों की दुष्प्राप्यता भी ग्रन्थ-समापन में विलम्ब के लिए उत्तरदायी रही।

ग्रन्थ-लेखन काल में संस्कृत के मूर्धन्य टीकाकार श्री मल्लिनाथ का निम्नलिखित वचन सदा हमारा लक्ष्य बना रहा—

'नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते' तथापि साधनों की सीमितता ने कभी-कभी 'मूल' को 'अमूल' रखने के लिए बाध्य किया। आशा है उदार पाठक इस 'न्यूनता' को सन्दर्भित ग्रन्थान्तरों की सहायता से 'अन्यूनता' में परिवर्तित कर लेंगे। एतदनन्तर कुछ निवेदन इस ग्रन्थ की संघटना के विषय में भी अपेक्षित है जिससे पाठक विषय के आस्थापन के औचित्य को समझ सकें।

वैदिक साहित्य का विभाजन सामान्यतया चार खण्डों मे किया जाता है। प्रथम खण्ड मे सहिताओ का ग्रहण होता है, द्वितीय मे ब्राह्मणो का तथा तृतीय मे आरण्यको और उपनिषदो का समावेश किया जाता है। वेदागो का परिगणन वैदिक साहित्य के चतुर्थ खण्ड म किया जाता है। वर्तमान अध्ययन मे सहिता-भाग को विषय-वस्तु की दृष्टि से दो खण्डो मे विभक्त किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि पाठको को कम-से-कम विषय की एकरूपता का आधारभूत दृष्टिकोण स्पष्ट हो सके। अपरिनिर्दिष्ट द्वितीय व तृतीय खण्ड के विषय-विभाजन म आरण्यको का समावेश कभी कभी ब्राह्मणो के साथ और कभी-कभी उपनिषदो के साथ किया जाता है। यहा भी विषय की एकरूपता को दृष्टि मे रखकर आरण्यको का समावेश तृतीय खण्ड मे किया गया है। वेदागो का विवेचन इस ग्रन्थ मे किया गया है।

भारतीय सस्कृति के विकास मे वेदागो का जितना अधिक हाथ रहा है, उतना और किसी ग्रन्थ का नही। यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से वैदिक साहित्य मे सहिताओ का सर्वोच्च स्थान है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से भारतीय समाज और सस्कृति के निर्माण म जितना योग वेदागो का है उतना वेदो का नही। वेद मन्त्र केवल यज्ञ मे विनियोज्य मात्र रह गए थे। वे समाज के दैनिक व्यवहार से दूर हो चले थे। उनम किसी प्रकार का परिवर्तन या परिवर्धन सम्भव नही था, परन्तु वेदागो मे समाज के विकास के अनेक तत्त्व समय-समय पर समाविष्ट होते रहे थे। अत वेदागो का विकास भारतीय समाज और सस्कृति के विकास का प्रतिबिम्ब है।

वैदिक साहित्य के अब तक लिखे गये अधिकाश इतिहास ग्रन्थो मे मुख्य रूप से सहिता और ब्राह्मण ग्रन्थो पर ध्यान केन्द्रित रहा है। वेदांग भाग को बहुत गौण स्थान मिला है। इन वैदिक इतिहासो मे वेदाग ग्रन्थो के नामो का उल्लेख मात्र किया गया है। इस भाग मे प्रथम बार वेदाग ग्रन्थो का यथेष्ट विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इस ग्रन्थ को सामान्य पाठक के लिए उपयोगी बनाने की दृष्टि से पादटिप्पणी और सन्दर्भ सूचनाओ को प्रत्येक अध्याय के अन्त मे दिया गया है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक समझा गया कि ग्रन्थ को पढते समय पाठक का ध्यान पादटिप्पणियो और सन्दर्भ सूचनाओं म न उलझे और वह ग्रन्थ मे प्रतिपादित विषय को एक प्रवाह रूप म समझ सके। शोध की दृष्टि से पढने वाला छात्र आवश्यक टिप्पणियो और सन्दर्भो को अध्याय की समाप्ति पर तुलना के लिए देख सकता है।

ग्रन्थ म जिन पाश्चात्य लेखकों के नामो और रचनाओ को उद्धृत किया गया है व अधिकाशत रोमन लिपि मे ही लिखे गये हैं। ऐसा करने का मुख्य कारण यह है कि हिन्दी और यूरोपीय भाषाओ मे लिखित वर्णानुपूर्वी (Spellings) और

इनके उच्चारण में भेद होने के कारण देवनागरी लिपि में लिखित सूचना के अनुसार मूल ग्रन्थ को खोज पाना दुष्कर होता है।

ग्रन्थ में अकादमी की नीति के अनुसार संख्याएं अन्तर्राष्ट्रीय अंकों में ही दी गयी हैं। पादटिप्पणी या सन्दर्भ सूची में उल्लिखित फ्रेंच और जर्मन भाषा में लिखित ग्रन्थों के समीप के पुस्तकालयों में उपलब्ध न होने के कारण उन ग्रन्थों के उद्धरण की सूचनाएं Winternitz और J N Gonda की पुस्तकें A History of Indian Literature Vol I Part I और A History of Indian Literature (Vedic Literature) Vol I Part I के अनुसार दी गयी हैं। संस्कृत के उद्धरणों की टिप्पणियां मूल ग्रन्थों के अनुसार ही दी गई हैं।

इस आलोचनात्मक इतिहास का लेखन का उत्तरदायित्व स्वीकार करने में हमारा यह दावा नहीं है कि हम वैदिक साहित्य के ज्ञात तथ्यों में अतिरिक्त किन्हीं नये तथ्यों का उद्घाटन इस ग्रन्थ में कर सके। हमारा निवेदन यही है कि इस आलोचनात्मक इतिहास को पढ़ते समय अध्येता वैदिक साहित्य की विषय-वस्तु के विविध आयामों के विषय में प्रचलित विभिन्न मतों का पुनर्मूल्याङ्कन मूलग्रन्थों की सहायता से करके इस साहित्य की महत्ता और उपादेयता को हृदयङ्गम करने में समर्थ हो सकें।

इस ग्रन्थ के लिखे जाने का सम्पूर्ण श्रेय हरियाणा साहित्य अकादमी का ही है। यह अकादमी के अनुरोध और बारम्बार आग्रह का ही फल है कि यह ग्रन्थ विलम्ब से ही सही, अन्त में लिखा जा सका और अब पाठकों के समक्ष उपस्थित है। इसलिए अकादमी के सभी अधिकारी धन्यवाद के पात्र हैं।

—सुधीकान्त भारद्वाज

क्रम

अध्याय-1

वेदांगो की पृष्ठभूमि

भारतीय परम्परा में जितना महत्त्व वेदों का है, उतना ही वेदांगों का। वैदिक साहित्य वेदांगों के बिना पूर्ण नहीं माना जाता। इसलिए वेदांग वेद का ही अभिन्न अंग है। जहाँ वेदों के अध्ययन और अध्यापन का विधान किया जाता है, वहाँ वेदांगों का अध्ययन और अध्यापन भी स्वतः सम्मिलित होता है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में वेद का षडङ्ग विशेषण प्रयुक्त किया है—

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेय इति।[1]

यास्क ने वेदों के साथ वेदांगों का भी उल्लेख किया है—वेदं च वेदाङ्गानि च।[2]

वेदांग के छह नामों का सबसे स्पष्ट उल्लेख सर्वप्रथम मुण्डकोपनिषद् में मिलता है। वेदांगों को चार वेदों के साथ अपरा विद्या की कोटि में रखा गया है—

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं
निरुक्तं छन्दो ज्योतिषामिति।[3]

मनुस्मृति में वेदों के साथ प्रवचन शब्द का प्रयोग हुआ है—

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च।[4]

व्याख्याकार कुल्लूक के अनुसार प्रवचन से तात्पर्य वेदांगों से है—

प्रकर्षेणेवोच्यते वेदार्थ एभिरिति प्रवचनान्यङ्गानि ।

वेदाग का क्रम

मुण्डकोपनिषद् मे वर्णित उपर्युक्त क्रम ही बहुलता से स्वीकार किया गया है । चरणव्यूह मे भी उपर्युक्त क्रम ही वर्णित है—शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् । परन्तु कही-कही यह क्रम भिन्न प्रकार से भी मिलता है । आपस्तम्ब सूत्र (2.4 8) मे यह क्रम इस प्रकार दिया हुआ है—षडङ्गो वेद कल्पो व्याकरण ज्योतिषं निरुक्तं शिक्षा छन्दोविचिति । शाकल प्रातिशाख्य की वृत्ति मे यह क्रम इस प्रकार दिया हुआ है —कल्पो व्याकरण निरुक्त शिक्षा छन्दोविचितिर्ज्योतिषामयनम् ।

इससे स्पष्ट है कि वेदागो का क्रम स्थिर नही रहा है । परन्तु आजकल जो क्रम सर्वाधिक प्रचलन मे है वह वही है जो मुण्डकोपनिषद् या चरणव्यूह मे वर्णित है ।

वेदांगो का प्रयोजन

वेदागो का प्रयोजन वेदो के अध्ययन मे सहायता करना है । जैसे शरीर बिना अवयवो के व्यर्थ होता है उसी प्रकार बिना वेदागो की सहायता के वेद निरर्थक हैं । वेदो का मुख्य प्रयोजन यज्ञ बन गया था । प्रारम्भ मे वेद-मन्त्रो की रचना यज्ञ के उद्देश्य से हुई हो, ऐसा नही कहा जा सकता । ऋग्वेद मे अनेक ऐसे मन्त्र हैं जो न तो स्तुतिपरक हैं और न ही याज्ञिक कार्यों मे उनकी सगति बैठती है । अनेक मन्त्र केवल स्वतन्त्र काव्य के रूप मे ही रचे गए प्रतीत होते हैं । परन्तु बाद मे सभी मन्त्रो का विनियोग यज्ञ कार्यों मे होने लगा । वेद मन्त्र गौण हो गए और यज्ञ-तन्त्र प्रधान हो गया । यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए अनेक सहायक ग्रथो की आवश्यकता पडी । ये सहायक ग्रन्थ ही वेदांगो के रूप मे प्रसिद्ध हुए । वेद को शरीर माना गया और वेदागो को उसके अवयव । षड्विंश ब्राह्मण मे कहा गया है कि चार वेद ही शरीर हैं, छह अग उसके अवयव, ओषधि तथा वनस्पतिया रोम—

> चत्वारोऽस्य वेदा शरीर षडङ्गान्यङ्गानि ।
> ओषधिवनस्पतयो लोमानि ।[5]

जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अवयव होते हैं उसी प्रकार इन छह अगो के भी उनकी उपयोगिता के अनुसार मुखादि भिन्न नाम दिए है । चरणव्यूह मे छह अगो की कल्पना इस प्रकार की गई है—

> छन्द पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
> ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते ।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।

पाणिनीय शिक्षा में भी यही श्लोक दिया हुआ है।

छन्दों का मुख्य प्रयोजन वैदिक मन्त्रों के अक्षर, मात्रा आदि का ज्ञान कराना है। इससे मन्त्रों में उच्चारण के समय किसी अक्षर के घट-बढ़ आने के दोष को दूर किया जा सकता है। जिस प्रकार पैरों के बिना मनुष्य चल नहीं सकता, उसी प्रकार बिना छन्दोज्ञान के मन्त्र का ठीक प्रकार से प्रयोग नहीं हो सकता और मन्त्र गतिहीन हो जाएगा। इसीलिए छन्दों को वेद का पाद कहा है।

कल्प वेदांग का मुख्य प्रयोजन यज्ञ-तन्त्र की व्याख्या करना है। जब तक यज्ञ-विधि का ज्ञान नहीं होगा तब तक यज्ञ कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। इसीलिए कल्प वेदांग को वेद-शरीर का हाथ कहा है, क्योंकि बिना हाथों के कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता।

ज्योतिष वेदांग को वेद का नेत्र कहा है। नेत्र का कार्य है देखना। यज्ञ कार्य शुभ मुहूर्त में किए जाने से फलवान् होता है। शुभ मुहूर्त का ज्ञान कराना ही ज्योतिष का उद्देश्य है।

निरुक्त का मुख्य प्रयोजन वेदमन्त्रों के अर्थ का ज्ञान कराना है। जिस प्रकार बिना कानों के मनुष्य कहे हुए वाक्य को ग्रहण नहीं कर सकता, उसी प्रकार बिना निरुक्त के मन्त्रों के अर्थ का ग्रहण नहीं हो सकता। वेदमन्त्रों को केवल रट कर बोलने से उनका फल नहीं मिलता। अतः निरुक्त को वेद का कान कहा है।

शिक्षा को वेद की नासिका कहा गया है। शिक्षा वेदांग का मुख्य प्रयोजन मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण का ज्ञान कराना है।

व्याकरण को वेद का मुख कहा है। इससे व्याकरण की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है। जिस प्रकार मुख से ही मनुष्य के स्वरूप की पहचान होती है, उसी प्रकार व्याकरण के द्वारा ही वेदमन्त्रों के स्वरूप की पहचान होती है। बिना प्रकृति, प्रत्यय आदि के ज्ञान के मन्त्रों का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो सकता। इसीलिए व्याकरण को वेद-शरीर का मुख कहा है।

छह वेदांगों की उपर्युक्त संज्ञाएं उनके कार्य की दृष्टि से बहुत सटीक हैं। जिस प्रकार किसी भी एक अंग के दुर्बल हो जाने से कार्य में व्यवधान उपस्थित हो जाता है, उसी प्रकार किसी भी एक वेदांग के बिना यज्ञादि कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते। इसीलिए वेदांगों को वेद का अभिन्न अंग माना जाता है।

वेदांग—स्मृतिग्रन्थ

वैदिक साहित्य को दो भागों में बांटा जाता है— श्रुति तथा स्मृति। वेदों तथा उनके व्याख्या ग्रन्थों को श्रुति कहा जाता है। अतः संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा

उपनिषत् श्रुति ग्रन्थो की कोटि मे हैं। श्रुति ग्रन्थ किसी लौकिक व्यक्ति की रचना नही माने जाते। वेदांग श्रुति ग्रन्थो के अन्तर्गत नही माने जाते, क्योकि वेदागो के रचयिता भिन्न-भिन्न व्यक्ति माने गए है जो लौकिक व्यक्ति हैं। इन ग्रन्थो को स्मृति ग्रन्थों की कोटि मे रखा गया है। स्मृति ग्रन्थो की भी मान्यता उतनी ही होती है जितनी श्रुति ग्रन्थो की, क्योकि स्मृति ग्रन्थ भी श्रुति ग्रन्थो की स्मृति से ही रचे जाते हैं। हिरण्यकेशिसूत्र के व्याख्याकार महादेव ने स्मृतिग्रन्थो को वेदमूलक माना है—

श्रुतिरपि स्मृतीनां वेदमूलत्वमाह।

वेदागो का उद्गम और विकास

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वेदागो की आवश्यकता मुख्य रूप से वेदो के सहायक ग्रन्थो के रूप मे पडी। वेदो के यज्ञपरक हो जाने के कारण ऐसे ग्रन्थो की आवश्यकता पडी जो यज्ञ को व्यवस्थित रूप दे सकें। इसलिए वेदागो के बीज सहिता काल मे ही देखने को मिलते हैं। परन्तु उनका पूर्ण विकास ब्राह्मण ग्रन्थो मे हुआ। ब्राह्मण काल मे छह अंगो का स्वरूप निर्धारित हो चुका था। ब्राह्मणो मे षडग वेद के उल्लेख मिलते हैं।

परन्तु ब्राह्मणो म वेदागो का विषय बिखरा हुआ और अव्यवस्थित था। उनको पृथक्-पृथक् ग्रन्थो के रूप मे निबद्ध करने का कार्य सूत्र काल मे ही हुआ। आगे के पृष्ठो मे प्रत्येक वेदाग के उद्गम और विकास पर पृथक रूप से प्रकाश डाला गया है।

वेदागो की शैली

वेदागों की रचना सूत्र शैली मे हुई। सूत्र शैली केवल भारत मे ही प्रचलित हुई। विषय को कण्ठस्थ करने की दृष्टि से सूत्र शैली का जन्म हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थो मे बहुत लम्बे-लम्बे व्याख्यान हैं जो दृष्टान्त आदि से पुष्ट हैं। कही-कही व्याख्यानों मे आख्यायिकाए भी समाविष्ट हैं। ब्राह्मण ग्रन्थो मे विषय भी कई स्थानो पर प्रकीर्ण हैं। अत याज्ञिको के लिए सभी विषय को कण्ठस्थ रखना कठिन हो गया। अत ऐसी शैली का अन्वेषण हुआ जिसके माध्यम से छोटे से छोटे कलेवर मे अधिक से अधिक विषय समाविष्ट हो सकें। यही शैली सूत्र शैली कहलायी।

सूत्र का अर्थ है धागा। जिस प्रकार एक ही धागे मे अनेक मनके एक साथ सम्बद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार एक वाक्य के साथ अनेक अगले और पिछले वाक्य परस्पर जुड जाते हैं। वाक्यों को परस्पर जोडने वाली कडी अनुवृत्ति कहलाती है। जब किसी वाक्य का कोई अश अगले वाक्यो मे भी लागू हो तो उस अश को प्रत्येक वाक्य मे साथ आवृत्त करने की आवश्यकता नही होती। बिना आवृत्ति के ही उसे

समझ लिया जाता है। इसे ही अनुवृत्ति कहते हैं।

सूत्र शैली का मुख्य प्रयोजन लघुता है। अल्प शब्दों में ही समस्त विषय का नियमबद्ध करना ही आचार्यों का प्रयत्न रहा है। सूत्र प्रायः आकार में छोटे होते हैं। एक शब्द मात्र का भी एक सूत्र हो सकता है। सूत्रों में क्रियापद का प्रायः अभाव रहता है क्योंकि एक सूत्र में प्रयुक्त क्रियापद अनेक सूत्रों में अनुवृत्त हो जाता है।

सूत्र शैली का विकास ब्राह्मण काल से ही प्रारम्भ हो गया था। कुछ ब्राह्मणों में वाक्य सूत्र जैसे ही प्रतीत होते हैं। परन्तु इस शैली में निखार सूत्र काल में ही आया। पाणिनि की सूत्र शैली समस्त सूत्र साहित्य में उत्कृष्ट है। पाणिनि की शैली सूत्र रचना कौशल की पराकाष्ठा है। प्रारम्भिक सूत्र ग्रन्थों की शैली बहुत कसी हुई और सजी हुई नहीं है। लघुता को भी बहुत महत्त्व नहीं दिया गया है। इन ग्रन्थों पर ब्राह्मणों की व्याख्यानात्मक शैली का भी प्रभाव अभी बना हुआ था। कुछ सूत्र तो बहुत लम्बे-लम्बे हैं और ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्यों से मिलते-जुलते हैं।

वेदांगों का काल

वेदांगों का काल निर्धारण संहिताओं के काल निर्धारण से जुड़ा हुआ है। संहिताओं का काल भी अभी तक विवादास्पद बना हुआ है और सम्भवतः सदा बना रहेगा। पाश्चात्य विद्वान् सूत्रों का काल 800 ई० पू० से 200 ई० पू० के मध्य मानते हैं। परन्तु यह सीमा समस्त सूत्र साहित्य के लिए बहुत कम है। कुछ सूत्र निश्चित रूप से ब्राह्मण काल में ही लिखे गए थे, जबकि कुछ सूत्र ईसवी सन् के बाद भी लिखे गए हैं। प्रत्येक वेदांग का समय तत्सम्बन्धित अध्याय में विवेचित है।

संदर्भ—

1. महाभाष्य, पस्पशाह्निक, पृ० 9
2. निरुक्त, 1.20
3. मुण्डकोपनिषद्, 1.4-5
4. मनु. 3.184
5. षड्विंशब्राह्मण, 4.7

अध्याय-2

शिक्षा वेदांग

षड् वेदागो मे शिक्षा का सबसे पहला स्थान है। पाणिनि के अनुसार 'शिक्ष सन्नन्त' धातु रूप है जो 'शक्' धातु से सन् प्रत्यय लगाकर बनता है। शक् के अकार का इकार मे परिवर्तन हो जाता है।[1] पाणिनीय धातुपाठ मे 'शक्' धातु का 'शक्तौ' अर्थात् समर्थ होना अर्थ दिया है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'शिक्षति' का अर्थ' समर्थ होना चाहता है यह अर्थ होता है। मैक्समूलर इसी धातु से शिक्षा शब्द का उद्गम मानते हैं जिसमे ऋग्वेद[2] मे प्रयुक्त अध्यापक के अर्थ मे शाक्त तथा शिष्य के अर्थ मे शिक्षमाण शब्द निकले हैं। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से 'शिक्षा' शब्द का आगम शास् 'अनुशिष्टौ' धातु से भी सम्भव है, क्योकि शास् के आकार को भी कुछ अवस्थाओ मे इकार आदेश हो जाता है।[3] तथा स को भी मूर्धन्य ष्[4] हो जाता है जो क्[5] मे परिवर्तित हो जाता है। इसके अतिरिक्त पाणिनि के धातुपाठ म 'शिक्ष विद्योपादान' धातु भी है जो शिक्षा शब्द से पूर्णत सम्बन्धित है। सायण ने इसी धातु से शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति की है—शिक्ष्यन्ते वेदनायोपविश्यन्ते स्वरवर्णादयो यत्रासौ शिक्षा।'

शिक्षा वेदांग का वर्ण्य विषय

शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति चाहे किसी भी धातु से हो, इसका मुख्य लक्ष्य उपदेश देना है। वैदिक मन्त्रों का यथेष्ट उच्चारण सिखाना ही शिक्षा वेदांग का प्रमुख प्रयोजन रहा है। तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा के अन्तर्गत छह अंग गिनाए हैं— वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम तथा सन्तान। वर्ण से तात्पर्य भाषा ध्वनियों से है। भाषा में कुल कितने वर्ण हैं, इसे बताना सबसे प्रमुख है। वर्ण के अनेक पक्षों, यथा—उच्चारण प्रक्रिया उच्चारण स्थान आदि पर विचार करना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। स्वर से तात्पर्य उदात्तादि स्वरों से है। मात्रा से तात्पर्य ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतादि मात्राओं से है जो वर्ण के उच्चारण में प्रयुक्त हुए काल पर निर्भर है। बल से तात्पर्य प्रयत्न से है। वर्ण के उच्चारण में स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्टादि प्रयत्नों को ही बल कहा गया है। साम से तात्पर्य मन्त्रों के गायन में प्रयुक्त सामंजस्य से है। यह विशेषतः सामवेद के मन्त्रों में प्रयुक्त होता है। सन्तान का अर्थ है 'व्यवधान न होना।' मन्त्रों का संहिता पाठ ही 'सन्तान' से अभीष्ट है।

प्रातिशाख्य और शिक्षा ग्रन्थों में मुख्यतः इन्हीं विषयों का वर्णन है। शिक्षा वेदांग का मुख्य प्रयोजन वेदमन्त्रों में आने वाले उच्चारण दोषों का निवारण करना था। वेदमन्त्र जब यज्ञों के विषय हो गए तो उनकी पवित्रता को अक्षुण्ण रखना नितान्त आवश्यक हो गया। अतः दुष्ट उच्चारण को दूर करना आचार्यों के लिए एक चुनौती बन गया था क्योंकि भाषा के क्षेत्रीय विकास के साथ-साथ अनेक क्षेत्रीय प्रभाव भाषा पर पड़ने लगे थे। अतः वेदमन्त्रों के उच्चारण में दोष आ जाना स्वाभाविक ही था। इन दोषों से वेदों को बचाने के लिए व्यवस्थित रूप में शिक्षा देना आवश्यक था। पतंजलि ने शब्दानुशासन के प्रयोजनों में सबसे प्रमुख प्रयोजन वेद की रक्षा ही बताया है—'रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्' पतंजलि ने व्याकरण के गौण प्रयोजनों में भी शुद्ध उच्चारण की आवश्यकता पर बल दिया है। अपशब्द बोलने से अनिष्ट प्राप्त होता है, इसके समर्थन में असुरों के नाश हो जाने का उदाहरण भी दिया है—'तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः। तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः।' एक स्वर के अपराध को भी अक्षम्य माना जाता था—

> 'दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
> स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥"

वेदों की रक्षा के प्रयोजन से ही शिक्षा ग्रन्थों का शास्त्र के रूप में विकास हुआ। शिक्षा वेदांग में उच्चारण के नियमों के अतिरिक्त उच्चारण दोष, स्वर, छन्द, सन्धि, वर्ण-विकार आदि वर्णित हैं।

शिक्षा वेदाग का उद्गम और विकास-

अति प्राचीन काल से ही भारत म भाषा को सुन्दर से सुन्दर रूप म बोलन की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई थी। ऋग्वेद के मन्त्र अपने भाषा सौष्ठव के लिए प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रो म भाषा को सजाने की बात कही गई है। देवताओ से भी ऋषिगण अनेक बार प्रार्थना करते थे कि वे उन्हे भाषा का ज्ञान दें, ताकि वे अच्छी से अच्छी स्तुति की रचना करके देवताओ को अर्पित कर सकें। वैदिक ऋषियो को यह विश्वास था कि सुन्दर और दोष रहित भाषा ही देवता को प्रसन्न करने में समर्थ है।

वैदिक ऋषि भाषा के मर्मज्ञ थे। ऋग्वेद मे अनेक मन्त्र ऐसे है जो ऋषियो के भाषा सम्बन्धी ज्ञान की पराकाष्ठा के परिचायक हैं। ऋग्वेद के अनेक सूक्त यथा 10 71, 10 125, 1.164 पूर्णत वाग्देवी की स्तुति मे हैं। इनमे वाणी के बहुत ही उत्कृष्ट स्वरूप की कल्पना की गई है। अनेक स्थानो पर वाणी को समस्त ब्रह्माण्ड के समकक्ष माना है। वाणी और ब्रह्म की एकरूपता ऋग्वेद मे अनेक स्थानो पर दृष्टिगोचर होती है।

भाषा को सिखाने और अध्यापक से सीखने का कार्य भी ऋग्वेद काल मे ही प्रारम्भ हो गया था। ऋग्वेद के मण्डूक सूक्त मे एक मेडक के दूसरे मेडक की भाषा का अनुकरण करने की तुलना अध्यापक का शिष्य के द्वारा अनुकरण किए जाने से की है—

'यदेषामन्यो अन्यस्य वाच शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।'[6]

इसस स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद काल मे ही शिष्य अध्यापक के उच्चारण का अनुकरण करते थे।

इस प्रवृत्ति का विकास आगे चलकर शास्त्रो के रूप मे हुआ। ऐतरेय ब्राह्मण म वाणी को इन्द्र से सम्बन्धित बताया—'वाग्घैन्द्री।'[7] इसी ब्राह्मण मे वाणी के अनश्वर रूप की कल्पना की गई और वाणी की तुलना समुद्र से की—'वाग्वै समुद्रो न वाक् क्षीयते।'[8] यज्ञो मे भिन्न भिन्न प्रकार के उच्चारण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। अतः ब्राह्मण काल म निश्चित रूप से उच्चारण के नियम निर्धारित होने लगे थे। गोपथ ब्राह्मण मे स्थान, अनुप्रदान, करण आदि पारिभाषिक शब्दो का भी उल्लेख है—

'ओंकार पृच्छाम ... किं स्थानानुप्रदान करण शिक्षुका किमुच्चारयन्ति।'[9]

इमी ब्राह्मण म उच्चारण स्थान 'ओष्ठ' तथा 'स्पृष्ट' प्रयत्न का भी उल्लेख है—

'किं स्थानमित्युभावोष्ठौ।... द्वितीयस्पृष्टकरणस्थितिश्च।... यडङ्गविद-स्तत्तथा धीमहे।'[10]

आरण्यक और उपनिषद् काल में भाषा सम्बन्धी सूक्ष्मताओं का रूप अधिक विकसित होने लगा था। ऐतरेय आरण्यक में स्वर व्यंजन विषयक धारणाएं स्पष्ट होने लगी थीं। स्वर, व्यंजन, स्पर्श, प्राण, संहिता आदि विषयों पर ऐतरेय आरण्यक में कुछ विचार हुआ है।[11]

उपनिषद् काल में शिक्षा के वेदांग के रूप में विकसित हो जाने के निश्चित प्रमाण मिलते हैं। मुण्डकोपनिषद् में शिक्षा को सबसे पहला वेदांग गिनाया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में एक पृथक् अध्याय (1 2) ही शिक्षाध्याय नाम से है। (यहां पर शिक्षा वेदाङ्ग के लिए ही शिक्षा शब्द का प्रयोग किया गया है।) इसका प्रारम्भ 'ऊं शिक्षां व्याख्यास्यामः' इन शब्दों से होता है तथा अन्त 'इत्युक्तः शिक्षाध्यायः' शब्दों से होता है।

इससे स्पष्ट है कि उपनिषद् काल से पूर्व शिक्षा वेदांग विकसित हो चुका था।

शिक्षा वेदांग का क्षेत्र एवं स्वरूप

जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है, शिक्षा वेदांग का मुख्य क्षेत्र वैदिक मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण था। यह वेदांग व्याकरण से भिन्न है क्योंकि व्याकरण भाषा का विश्लेषण करता है जबकि शिक्षा वेदांग में केवल उच्चारण को ही प्रमुख माना गया है। शिक्षा वेदांग में जो विषय मुख्य रूप में वर्णित हैं वे हैं—वर्ण, मात्रा स्वर, सन्धि, वर्ण-विकार, आगम, लोप, विवृति, अभिनिधान आदि स्वर-वैशिष्ट्य, उच्चारण दोष, वर्णों के उच्चारण स्थान, प्रयत्न, अनुप्रदान आदि। ऋक्प्रातिशाख्य में छन्दों का भी विवेचन है।

शिक्षा वेदांग दो रूपों में आज उपलब्ध है—1 प्रातिशाख्य तथा 2. शिक्षा। यद्यपि दोनों रूपों के लिए शिक्षा शब्द का प्रयोग होता है परन्तु शिक्षा नाम से अलग ग्रन्थ मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रातिशाख्य अपनी-अपनी शाखाओं के लिए अलग-अलग बन गए जबकि शिक्षा ग्रन्थ सभी वेदों के लिए समान रूप से उपयोगी थे। प्रारम्भ में सभी वेदों पर समान रूप से सामान्य ध्वनि-विज्ञान के रूप में शिक्षा ग्रन्थों का प्रयोग हुआ होगा परन्तु अपनी-अपनी शाखाओं की विशेषताओं को नियमबद्ध करने के लिए 'प्रातिशाख्यों' का स्वरूप विकसित हुआ। शिक्षा ग्रन्थ निश्चित रूप से प्रातिशाख्यों से पूर्व के होंगे क्योंकि विकास क्रम की दृष्टि से सामान्य शिक्षाओं का ही स्थान पहले आता है। प्राचीन शिक्षा के आधार पर ही भिन्न-भिन्न शाखाओं की विशेषताओं का प्रातिशाख्यों में समाविष्ट किया गया। परन्तु दुर्भाग्य से आज कोई भी शिक्षा ग्रन्थ ऐसा नहीं है जिसे प्रातिशाख्यों से प्राचीन कहा जा सके। सभी उपलब्ध शिक्षा ग्रन्थ बहुत बाद के हैं। वे तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी तक भी लिखे जाते रहे हैं।

प्रातिशाख्य

प्रातिशाख्यों को मूल रूप में पार्षद कहा गया है। विष्णुमित्र ने ऋक्प्रातिशाख्य के भाष्य के प्रारंभ में ऋक् प्रातिशाख्य को पार्षद ही कहा है—

सूत्रभाष्यकृत सर्वान् प्रणम्य शिरसा शुचि ।
शौनक च विशेषेण येनेद पार्षद कृतम् ॥

पार्षद शब्द पर्षद (परिषद्) से निस्सृत है। सम्भव है किसी परिषद् विशेष म प्रातिशाख्यों का प्रवचन होता हो, जिससे इनका नाम पार्षद पड़ा हो। यास्क के निरुक्त के भाष्यकार दुर्गाचार्य ने पार्षद की व्याख्या करते हुए कहा है कि पार्षद वे ग्रन्थ है जिनके द्वारा अपने-अपने चरणो की परिषदो मे पदो का विग्रह, प्रगृह्य, सहिता तथा स्वरों के लक्षण बताए जाते हैं—

'स्वचरणपरिषदयेव यै प्रतिशाखानियतमेव पदावग्रहप्रगृह्यक्रमसहिता-स्वरलक्षणमुच्यते। तानीमानिपार्षदानि प्रातिशाख्यानीत्यर्थ.।'

प्रातिशाख्यों के आधार ग्रन्थ

प्रातिशाख्य अपने विषय-प्रतिपादन मे यद्यपि पूर्ण है परन्तु इनके आधार ग्रन्थ निश्चित रूप से विद्यमान थे। प्राचीन शिक्षा जैसा कोई ग्रन्थ अवश्य विद्यमान रहा होगा जिस पर आश्रित रहकर सभी प्रातिशाख्यों ने ध्वनि सम्बन्धी नियमो का वर्णन किया है। व्याकरण के ग्रन्थ भी सम्भवत विद्यमान हो। अथर्वप्रातिशाख्य मे पूर्वशास्त्र का स्पष्ट उल्लेख किया गया है—

'शास्त्रे पुराणे कविभिर्दृष्टमेतत् वर्णलिगस्वर विभक्तिव्यत्ययश्छन्दसीति।'

प्रातिशाख्यो का काल

प्रातिशाख्यो के काल के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। अधिकाश विद्वान् इस मत के हैं कि प्रातिशाख्यों का काल पाणिनि से पूर्व का है। परन्तु गोल्डस्टुकर न सभी प्रातिशाख्यो को पाणिनि मे बाद का माना है। परन्तु गोल्डस्टुकर का मत उचित नही है। उसको वाजसनयि-प्रातिशाख्य के रचयिता कात्यायन के विषय म भ्रान्ति हुई है कि यह वही कात्यायन है जिसने अष्टाध्यायी पर वार्तिक लिखे। परन्तु यह बात अब लगभग प्रमाणित ही है कि वार्तिककार कात्यायन प्रातिशाख्य-कार कात्यायन तथा श्रौतसूत्रकार कात्यायन से भिन्न था। (देखें कात्यायन श्रौतसूत्र) अत यह नही कहा जा सकता कि उपलब्ध प्रातिशाख्य पाणिनि से बाद के हैं। अथर्वप्रातिशाख्य के बृहद् सस्करण के विषय मे तो अवश्य सन्देह हो सकता है कि वह पाणिनि से बाद का हो क्योंकि उसमे अनेक ऐसे प्रसग जोड़े गए हैं जो पाणिनि के व्याकरण से प्रभावित लगते हैं परन्तु अन्य किसी प्रातिशाख्य को पाणिनि

से बाद का सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसके पक्ष में कुछ तर्क इस प्रकार हैं—

1 किसी भी प्रातिशाख्य में पाणिनि का नामोल्लेख नहीं किया गया है।

2 सभी प्रातिशाख्यों में पाणिनि की संज्ञाओं का ग्रहण नहीं किया गया है। जो पारिभाषिक शब्द पाणिनि और प्रातिशाख्यों में समान रूप में मिलते हैं वे प्राचीन हैं और पाणिनि ने स्वयं परम्परा से ग्रहण किया है।

3 पाणिनि ने शब्दों के दो वर्ग किए हैं सुप् तथा तिङ्। परन्तु प्रातिशाख्यों में शब्दों के वे ही चार वर्ग बताए हैं जो यास्क के निरुक्त में हैं—नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात।

4 सूत्र रचना कौशल जो पाणिनि की अष्टाध्यायी में दिखाई देता है प्रातिशाख्यों में नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रातिशाख्यों के सूत्रों को संशोधन करके पाणिनि ने ग्रहण किया है। कुछ सूत्र प्रातिशाख्य और पाणिनि में समान रूप में मिलते हैं परन्तु वहां पाणिनि ही ऋणी है क्योंकि इन सूत्रों के प्रातिशाख्यों में भिन्न भिन्न मिलते जुलते रूप मिलते हैं जिन्हें पाणिनि ने संशोधित रूप में ग्रहण किया है।

अतः यह लगभग निश्चित ही है कि प्रातिशाख्य पाणिनि से पूर्व के हैं।

डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने प्रातिशाख्यों और पाणिनि का क्रम इस प्रकार रखा है।

1 ऋक्प्रातिशाख्य 2 तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (मूल) 3 अथर्वप्रातिशाख्य (मूल) 4 वाजसनेयि-प्रातिशाख्य 5 पाणिनि 6 तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (पुनः संस्कृत), 7 अथर्वप्रातिशाख्य (पुनः संस्कृत) 8 ऋक्तन्त्र।[12]

उपलब्ध प्रातिशाख्य

इस समय कुल छः प्रातिशाख्य उपलब्ध हैं—

1 ऋग्वेद प्रातिशाख्य
2 तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
3 वाजसनेयि प्रातिशाख्य
4 ऋक्तन्त्र
5 शौनकीया चतुरध्यायिका
6 अथर्वप्रातिशाख्य

इन प्रातिशाख्यों का विस्तृत विवेचन इस प्रकार है—

1 ऋग्वेद प्रातिशाख्य

ऋग्वेद प्रातिशाख्य उपलब्ध प्रातिशाख्यों में सबसे प्राचीन और प्रामाणिक है। यह ऋग्वेद की शाकल शाखा से सम्बन्धित शौनक की रचना है। ग्रन्थकार ने

स्वयं इसे शैशिरीय शाखा कहा है—अस्य ज्ञानार्थमिदमुत्तरत्र वक्ष्ये शास्त्रमखिलं शैशिरीये। ऋग्वेद प्रातिशाख्य के प्रथम श्लोक मे ही ग्रन्थकार का नाम शौनक दिया गया है—

परावरे ब्रह्मणि य सदाहुर्वेदात्मान वेदनिधि मुनीन्द्र ।
त पद्मगर्भं परम त्वादिदेव प्रणम्यर्चां लक्षणमाह शौनक ।

इस ग्रन्थकार के नाम के विषय मे किसी को सन्देह नही है। सभी वृत्तिकारों ने शौनक को ही ग्रन्थ का रचयिता माना है। षडगुरुशिष्य ने शौनक के नाम से दस ग्रन्थो को गिनाया है—आर्षानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमणी, अनुवाकानुक्रमणी, सूक्तानुक्रमणी, ऋग्विधान, पादविधान, बृहद्देवता, ऋग्वेदप्रातिशाख्य तथा शौनक स्मृति—

शौनकीया दशग्रन्थास्तदा ऋग्वेदगुप्तये।
आर्षानुक्रमणीत्याद्या छान्दसी दैवती तथा॥
अनुवाकानुक्रमणी सूक्तानुक्रमणी तथा
ऋक्पादयोर्विधाने च बार्हद्दैवतमेव च।
प्रातिशाख्य शौनकीय स्मार्तं दशममुच्यते॥[13]

उपर्युक्त पद्यो म दिये गये शौनक के ग्रन्थ शौनक के प्रकाण्ड पण्डित होने के परिचायक हैं। जैसाकि ऊपर कहा गया है, उन्होंने ऋग्वेद की रक्षा के लिए इन सब ग्रन्थो की रचना की थी। ऋक्प्रातिशाख्य के वृत्तिकार विष्णुमित्र न शौनक की प्रशसा करत हुए कहा है कि भगवान् शौनक ने वेद के अर्थ को जानन वाले थे तथा लोक कल्याण के लिए ऋग्वेद के शिक्षा शास्त्र की रचना की—

अत्र आचार्यो भगवाञ्छौनको वेदार्थवित्सुहृद् भूत्वा पुरुषहितार्थमृग्वेदस्य शिक्षाशास्त्र कृतवान्।[14]

शौनक का परिचय

शौनक के विषय म हम षड्गुरुशिष्य स ही परिचय मिलता है। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है शौनक आश्वलायन तथा कात्यायन का गुरु था। शौनक बहुत उदार और शिष्य वत्सल था। आचार्य शौनक ने एक हजार खण्डो वाले एक श्रौतसूत्र की रचना की परन्तु जब उसके शिष्य आश्वलायन ने शौनक को प्रसन्न करने के लिए स्वयं श्रौतसूत्र की रचना करके शौनक को दिखाया तो शौनक ने अपना ग्रन्थ आश्वलायन की प्रसन्नता के लिए फाड दिया। साथ ही यह घोषणा भी कर दी कि यही सूत्र ऋग्वेद का सूत्र माना जाये।[15]

शौनक का काल

शौनक निश्चित रूप स यास्क से उत्तरवर्ती आचार्य हैं क्योंकि उन्होन

ऋक्प्रातिशाख्य तथा बृहद्देवता में यास्क के मतों को उद्धृत किया है। परन्तु पाणिनि के मत का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। अतः शौनक को यास्क और पाणिनि के मध्य माना जा सकता है।

ऋक्प्रातिशाख्य का वर्ण्य विषय

ऋक्प्रातिशाख्य सूत्रशैली में लिखा हुआ ग्रन्थ है। इसमें कुल 1067 सूत्र हैं। इन्हीं सूत्रों को पद्यात्मक शैली में रखा गया है। डॉ० वीरेन्द्र कुमार के अनुसार इसमें 529 श्लोक हैं[16]। तीन छन्दों का मुख्य रूप से प्रयोग हुआ है—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् तथा जगती। यह तीन अध्यायों में विभाजित है। प्रत्येक अध्याय में छह पटल हैं। पटल भी वर्गों में विभाजित हैं। प्रथम पटल में पूर्व वर्गद्वय नाम से दस श्लोक मिलते हैं। प्रथम पटल में संज्ञा-परिभाषा, द्वितीय में संहिता, तृतीय में स्वर, चतुर्थ में सन्धि, पंचम में नति, षष्ठ में ध्वन्यागम, सप्तम, अष्टम तथा नवम में प्लुति, दशम में क्रम, एकादश में क्रमहेतु, द्वादश में मीमा, त्रयोदश में शिक्षा, चतुर्दश में उच्चारण-दोष, पंचदश में वेदाध्ययन, षोडश, सप्तदश तथा अष्टदश पटल में छन्दों का वर्णन है।

ऋग्वेद प्रातिशाख्य में दृष्ट प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1 ऋक्प्रातिशाख्य में वर्णों के शुद्ध उच्चारण पर विशेष बल दिया गया है। चार पटलों (1, 6 13 तथा 14) में वर्ण-विषयक विचार हुआ है। वर्णों के उच्चारण स्थान तथा उच्चारण दोषों का सम्यक् निरूपण हुआ है।

2 संहिता को पदों की प्रकृति माना है—

संहिता पदप्रकृतिः (2 1)।

3. पदों की चार जातियां बताई हैं—नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात।

नामाख्यातमुपसर्गो निपातश्च चार्याहुः पदजातानि शब्दाः।

4 इस प्रातिशाख्य में अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है तथा उनकी सुन्दर तथा संक्षिप्त परिभाषाएं दी गई हैं यथा विवृत्ति की परिभाषा—'स्वरान्तरं तु विवृत्ति' कितनी सरल और संक्षिप्त है। अनेक पारिभाषिक शब्द जिनका प्रयोग पाणिनि ने अपने व्याकरण में किया है, इसमें दिए गए हैं, यथा अक्षर, अनुनासिक, अनुस्वार, अपृक्त, ऊष्मा, जिह्वामूलीय आदि।

5 वर्णों के 9 उच्चारण स्थान बताए गए हैं—कण्ठ, उरस्, जिह्वामूल, तालु, मूर्धा, दन्तमूल, वर्त्स्व, ओष्ठ तथा नासिका। पाणिनीय शिक्षा में दिए गए उच्चारण स्थानों से यहां कहीं-कहीं भिन्नता है। यथा ह 'और' 'आ' का उच्चारण कुछ आचार्यों के मत के अनुसार उरस्य बताया गया है। त्, थ्, द्, ध्, न्, स्, र्, और ल्, का उच्चारण दन्त न बताकर दन्तमूल बताया गया है। 'र्' का उच्चारण स्थान मूर्धा न बताकर दन्तमूल बताना महत्त्वपूर्ण है। अन्य आचार्यों के मत में 'र्' का उच्चारण 'वर्त्स्य' बताया गया है। ऋ, लृ, ल्, व्

वर्ग का उच्चारण जिह्वामूल माना है।

5 ऋकार को शुद्ध स्वर न मानकर व्यजन मिश्रित माना गया है। ऋकार मे रेफ होता है।

6 व्यजनो के उच्चारण मे आने वाली यम ध्वनियों को स्वीकार किया है। पाणिनि इन ध्वनियो का कही उल्लेख नही करता है।

7 तीन प्रकार के आभ्यन्तर प्रयत्न स्वीकार किए गए है, स्पृष्ट (क से म तक) दुस्पृष्ट (य, र, ल, व) तथा अस्पृष्ट (अ, आ, इ, उ, ऋ, ए, ओ, ऐ, औ, लृ, ह श, ष, स, अ, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अ)।

8 उच्चारण-प्रक्रिया मे उत्पन्न होन वाली विभिन्न अवस्थाओ का बडी सूक्ष्मता से निरूपण करके उनके लिए अनेक पारिभाषिक शब्द दिये हैं, यथा अभिनिधान (वर्णावरोध) ध्रुव, स्वरभक्ति, यम, क्रम (द्वित्व) आदि।

9 वर्णों के उच्चारण दोषो क अनेक प्रकार गिनाए गए हैं, जो स्वर और व्यजन की भिन्न भिन्न अवस्थाओ मे होते हैं। चतुर्दश पटल मे जिस विशदता और विस्तार से दोष गिनाए हैं वे अन्यत्र किसी ग्रन्थ मे नही समझाए गए हैं। स्वरो के उच्चारण मे जो प्रमुख दोष बताए गए हैं वे हैं अयथामात्र वचन, सदेश, व्यास, पीडन, निराम, राग, ग्रास, अन्यवर्णता, सदष्टता, विषमरागता, दीर्घीकरण। विवृत्ति के लोप, आगम, विपर्यय तथा अभिव्यादान दोष गिनाए हैं। व्यजन दोषो मे अदेशेवचन, विराग, लेश, पीडन, जिह्वाप्रथन, ग्रास, निरास, प्रतिहार, विक्लेश, अन्यवर्णता अनुनाद, धारण, अनाद, लोप, क्रम, लोमश्य, निरस्त, नासिक्य आदि दोष गिनाए गए हैं।

10 सन्धि के विभिन्न प्रकारो का निरूपण किया गया है। स्वर सन्धि के दस भेद माने हैं—1 प्रश्लिष्ट सन्धि, 2. क्षैप्र सन्धि, 3 भुग्न सन्धि, 4 अभिनिहित सन्धि, 5 पदवृत्ति सन्धि, 6 उदग्राह सन्धि, 7. उदग्राहपदवृत्ति सन्धि, 8. उदग्राहवत् सन्धि, 9 प्राच्यपचालपदवृत्ति सन्धि, तथा 10 प्रकृति भाव सन्धि। व्यजन सन्धि के 7 भेद माने हैं, यथा 1. अवशगम सन्धि, 2 वशगम सन्धि, 3 परिपन्न सन्धि, 4. विसर्जनीय सन्धि, 5. नकार विकार 6 आगम तथा 7 लोप। विसर्जनीय सन्धि के भी 9 भेद हैं, यथा—1 नियत सन्धि, 2. प्रथितसन्धि, 3 रेफसन्धि, 4 अकामसन्धि, 5 नियतसन्धि, 6 व्यापन्न सन्धि, 7 विक्रान्त सन्धि, 8 अन्वरवक्र सन्धि तथा 9. उपाचरित सन्धि। इनके अतिरिक्त वर्ण परिवर्तन के आधार पर भी सन्धियो के नामकरण किए गए हैं। इनमे सबसे प्रमुख है नति सन्धि जिसके अनुसार मूर्धन्यभाव होता है। दीर्घीकरण को सामवश सन्धि कहा है।

11. स्वर प्रकरण के अन्तर्गत उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित की विभिन्न अवस्थाओं का विशद विवेचन किया गया है। स्वरों के विभिन्न भेद बताए गए हैं।

स्वरित के तीन मुख्य भेद बताए है—उदात्तपूर्व, जात्य तथा संधिज। संधिज स्वरों के भी कई भेद बताए गए हैं यथा प्रश्लिष्ट स्वरित क्षैप्रस्वरित, अभिनिहित स्वरित, कम्पस्वरित। तीन स्वरों के अतिरिक्त एक प्रचय स्वर भी माना गया है। यह वस्तुतः अनुदात्त स्वर ही होता है, परन्तु जब वह उदात्त की तरह उच्चरित होने लगता है तो प्रचय कहलाता है।

12. पिछले तीन अध्यायों में वैदिक छन्दों की सूक्ष्मताओं पर विचार किया गया है, जिसका विवरण आगे देखें छन्द वेदांग के अन्तर्गत।

ऋग्वेद प्रातिशाख्य का भाष्य

ऋग्वेद प्रातिशाख्य पर उवट ने एक विस्तृत भाष्य लिखा है। यह भाष्य बहुत उच्चकोटि का है। अपने भाष्य में इन्होंने सूत्रों की विस्तृत व्याख्या करते हुए उसके औचित्य को सिद्ध किया है।

2. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य

जैसा कि नाम से ही विदित है तैत्तिरीय प्रातिशाख्य कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित है। इसके रचयिता का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का विभाजन दो प्रकार से है—एक तो प्रश्नों में तथा दूसरा केवल अध्यायों में। प्रश्न के विभाजन में केवल दो प्रश्न हैं, प्रत्येक प्रश्न में 12 अध्याय हैं। अध्यायों के विभाजन में सीधे 24 अध्याय ही दिए गए हैं।

वर्ण्य विषय

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के विषय को तीन भागों में बाटा जा सकता है, यथा 1. साधारण विधि जो एक से चार अध्यायों में वर्णित हैं, 2. संहिताधिकार जो 5-16 अध्यायों में वर्णित है तथा 3. उच्चारण कल्प जो 17-24 अध्यायों में वर्णित है।

प्रथम अध्याय में वर्णसमाम्नाय का वर्णन किया गया है। वर्णों को समानाक्षर कहा गया है। ह्रस्व, दीर्घ प्लुतादि, स्वर व्यंजन, स्पर्श, अन्तस्थ, ऊष्म, अघोष, घोष, उपसर्ग, विसर्जनीय, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार, अनुनासिक, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि संज्ञाओं के लक्षणादि वर्णित किए गए हैं। द्वितीय अध्याय में वर्णों के स्थान तथा प्रयत्नों का वर्णन किया गया है। तीसरे अध्याय में दीर्घ स्वरों के ह्रस्व में परिवर्तन आदि के नियम दिए गए हैं। चतुर्थ अध्याय में प्रग्रह संज्ञक नियम वर्णित हैं। पंचम अध्याय में संहिताकाल में होने वाले वर्णागमों का विवेचन है। षष्ठ अध्याय में षत्व तथा सत्व विधि वर्णित है। सप्तम अध्याय में नकार का णकार में तथा तवर्ग का टवर्ग में परिवर्तन वर्णित है। अष्टम से लेकर

षोडश तक सन्धि न होने वाले विभिन्न विकार लोप, आगम आदि वर्णित हैं। 17वें अध्याय मे वर्णविशेषों के उच्चारण मे तीव्र या दृढ प्रयत्नादि का वर्णन है। 18वें अध्याय मे अकार के स्वरो का वर्णन है। 19 से 21 तक स्वरो के भेदादि बताए गए हैं। 22वें अध्याय म पारिभाषिक शब्द वर्ण, कार, च, अभि आदि की परिभाषाए दी गई हैं। 23वें अध्याय मे वर्णों के उच्चारण स्थानो का वर्णन है। 24वे अध्याय म चार प्रकार की सहिताओ पदसहिता, अक्षरसहिता, वर्णसहिता तथा अगसहिता का वर्णन है। इसके साथ ही प्रातिशाख्य को पढने वाले व्यक्ति को किन किन विषयों का ज्ञान होना चाहिए ये विषय निम्नलिखित हैं—

> गुरुत्व लघुता साम्य ह्रस्वदीर्घप्लुतानि च।
> लोपागमविकाराश्च प्रकृतिविक्रम क्रम॥
> स्वरितोदात्तनीचत्व श्वासो नादोङ्गमेव च।
> एतत्सर्वं तु विज्ञेय छन्दोभाषामधीयता॥24 5

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य की विशेषताए

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य की कुल प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित हैं—

1 यह प्रातिशाख्य आकार म छोटा है परन्तु विषय को बहुत व्यवस्थित ढग से प्रस्तुत किया गया है।
2 अन्य प्रातिशाख्यो के नियम केवल सहिता, पद तथा क्रम पाठ पर ही लागू होते हैं, जबकि इस प्रातिशाख्य के नियम जटापाठ पर भी लागू होते हैं।
3 इस प्रातिशाख्य मे ध्वनि उच्चारण की प्रक्रिया को वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयास किया गया है यथा—वायो शरीरसमीरणात् कण्ठोरसो सन्धाने।
4 इसके कई सूत्र ऐसे हैं जो पाणिनि के निकट हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पाणिनि ने तैत्तिरीय प्रातिशाख्य को देखकर ही अपन कुछ सूत्र बनाए हो। यहा कुछ सूत्रो की तुलना उल्लेखनीय है—
   (क) कम से कम निम्नलिखित सूत्र तै०प्रा० तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी मे समान रूप से मिलत हैं—1 उच्चैरुदात्त, नीचैरनुदात्त तथा समाहार-स्वरित।
   (ख) कुछ सूत्र ऐसे हो जो पाणिनीय अष्टाध्यायी मे कुछ ही अन्तर के साथ प्रयुक्त हैं—

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य	पाणिनि
एकवर्ण पदमपृक्त	अपृक्त एकाल् प्रत्यय
आद्यन्तवच्च	आद्यन्तवदेकस्मिन्
विनाशो लोप	अदर्शन लोप

दीर्घं समानाक्षरे सवर्णपरे	अकः सवर्णे दीर्घः
उदात्तात्परोऽनुदात्त स्वरितम्	उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित
वेति वैभाषिकः,	न वेति विभाषा
नेति प्रतिषेध ।	

5. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में अनेक आचार्यों के नाम दिए गए हैं जो इस प्रकार हैं—
आग्निवेश्य, आग्निवेश्यायन आत्रेय, उख्य, उत्तमोत्तरीय, काण्डमायन, कौण्डिन्य, गौतम, पौष्करसादि, प्लाक्षायण, प्लाक्षि, वाडभीकार, भरद्वाज, भारद्वाज, माचाकय (या मैचिकाय) वाल्मव, वाल्मीकि शाखायन, शैत्यायन माकृत्य, स्थविर कौण्डिन्य, हारीत।
6. इस प्रातिशाख्य में पारिभाषिक शब्दों पर विशेष बल नहीं दिया है। सन्धि के लिए किसी भी पारिभाषिक शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, जबकि ऋग्वेद प्रातिशाख्य में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का काल

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के काल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इतना निश्चित है कि तैत्तिरीय प्रातिशाख्य पाणिनि से पूर्ववर्ती है क्योंकि जहां अनेक आचार्यों का नामोल्लेख किया गया है वहां पाणिनि का नामोल्लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ सूत्र इस प्रकार के हैं जिन्हें देखकर लगता है कि कुछ सूत्रों के निर्माण में पाणिनि ने तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का अनुकरण किया हो।

अनेक आचार्यों के नामों में शाखायन, आग्निवेश्य आदि नामों का उल्लेख है। शाखायन श्रौतसूत्र का रचयिता है। इसलिए तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का काल शाखायन श्रौतसूत्र तथा पाणिनि के मध्य कहीं होना चाहिए।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य पर टीकाएं

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य पर तीन टीकाएं उपलब्ध हैं—माहिषेयकृत पदक्रम सदन, 2. सोमाचार्यकृत त्रिभाष्यरत्न तथा 3 गोपालयज्वाकृत वैदिकाभरण। माहिषेयकृत पदक्रम सदन प्राचीन टीका है जिसका उपयोग सोमाचार्य ने किया है। इसके अतिरिक्त उसने वररुचि और आत्रेय की टीकाओं का भी उपयोग किया है, जो अब उपलब्ध नहीं है। गोपालयज्वा की वैदिकाभरण टीका बाद की है।

वाजसनेयि प्रातिशाख्य

वाजसनेयि प्रातिशाख्य शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि-शाखा से सम्बन्धित

है। वा० प्रा० के आठवें अध्याय के 68वें सूत्र में इस प्रातिशाख्य का रचयिता कात्यायन ही बताया गया है—

इत्याह स्वरसस्कारप्रतिष्ठापयिता भगवान् कात्यायनः।

वाजसनेयि प्रातिशाख्य आठ अध्यायों मे विभाजित है। यह प्रातिशाख्य आकार में ऋग्वेद प्रा० से छोटा तथा अन्य प्रातिशाख्यों से बडा है।

वाजसनेयि प्रातिशाख्य मे वर्णित विषय

इस प्रातिशाख्य का शुक्ल यजुर्वेद के पदपाठ, संहितापाठ तथा क्रमपाठ के उद्देश्य से उच्चारण दोषों को दूर करने के लिए लिखा गया है। इसका वर्ण्य विषय इस प्रकार है—

प्रथम अध्याय मे प्रथम चार सूत्रों में वैदिक के स्वर के निश्चित प्रयोग के विषय में बताया गया है। 5-15 सूत्रों में ध्वनि के अवयव तथा उत्पत्ति के विषय में बताया गया है। 16-26 तक वेदाध्ययन, 27-33 तक स्वर का उतार-चढ़ाव, उसके बाद पारिभाषिक संज्ञाएं यथा उपधा, इति, कार, रेफ, नति, अनुस्वार, यम, विसर्जनीय, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, सवर्ण, सिम, सन्ध्यक्षर, भावी, व्यंजन, संयोग, जित्, मुत्, धि, सोष्म, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अणु, परमाणु, तत्पश्चात् उच्चारण स्थान, प्रगृह्य, उदात्तादि स्वर, अभिनिहित, क्षैप्र, प्रश्लिष्ट, परिभाषाएं आदि वर्णित हैं। द्वितीय अध्याय में स्वरो के नियम वर्णित हैं। तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय में सन्धि के नियम तथा स्वर नियम, पंचम अध्याय में अवग्रह के नियम, षष्ठ में वाक्य स्वर, सप्तम में पद पाठ में इति का प्रयोग तथा आठवें अध्याय में वर्ण समाम्नाय वर्णित है। स्वर भेदों सहित कुल 65 वर्ण उपदिष्ट हैं। नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात—ये चार प्रकार के पद बताये गये हैं।

वाजसनेयि-प्रातिशाख्य की विशेषताएं

1. वाजसनेयि प्रातिशाख्य की विषय-वस्तु बिखरी हुई है। ठीक प्रकार से व्यवस्थित नहीं है।
2. इस प्रातिशाख्य में लौकिक और वैदिक भाषा में भेद किया गया है। वेदों में स्वरों के प्रयोग निश्चित हैं जबकि लोक में स्वरों का प्रयोग अर्थ के अनुसार होता है—

स्वरसंस्कारयोश्छन्दसि नियमः। (1.1)

लौकिकानामर्थपूर्वकत्वात् (1.2)।

इससे स्पष्ट होता है कि वाजसनेयि प्रातिशाख्य के काल में भी लोकभाषा में स्वरों का प्रयोग होता था परन्तु वह वेदों के स्वर के समान निश्चित नहीं था, अपितु अर्थानुसारी होता था।

3. वा० प्रा० में अनेक प्राचीन आचार्यों के नाम उल्लिखित हैं, यथा शाकटायन, शाकल्य, औपशिवि, काश्यप, जातुकर्ण्य, शौनक, गार्ग्य, भारद्वाज, मार्गेय तथा वसिष्ठ। वा० प्रा० के कई सूत्र पाणिनि के सूत्रों में ज्यों के त्यों मिलते हैं जबकि कुछ सूत्रों में केवल एक-दो शब्द या अक्षरों का ही अन्तर है।

(क) वा० प्रा० के निम्नलिखित सूत्र पाणिनि के सूत्रों में ज्यों के त्यों मिलते हैं—
उच्चैरुदात्त , नीचैरनुदात्त तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य, षष्ठी स्थाने योगा।

(ख) निम्नलिखित सूत्रों में थोड़ा-सा ही अन्तर है—

वाजसनेयि-प्रातिशाख्य	पाणिनि
अन्त्याद्वर्णात् पूर्वं उपधा	अलोऽन्त्यात्पूर्वं उपधा
समानस्थानकरणास्यप्रयत्नः सवर्णः	तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्
अनन्तर संयोगः	हलोऽनन्तरा संयोगः
मुख नासिकाकरणोऽनुनासिकः	मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः
तस्मादि युत्तरस्यादे	तस्मादित्युत्तरस्य
वर्णस्यादर्शनं लोप	अदर्शनं लोपः
सख्यातानामनुदेशो यथासख्यम्	यथासख्यमनुदेशःसमानानाम्
विप्रतिषेध उत्तर बलवदलोप	विप्रतिषेधे परं कार्यम्

इससे स्पष्ट है कि वाजसनेयि-संहिता पाणिनि के अधिक समीप पहुच रही थी।

4 वाजसनेयि-प्रातिशाख्य में माध्यन्दिन शाखा का उल्लेख हुआ है। वहां ल, लह्, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय तथा नासिक्य ध्वनियों का प्रयोग नहीं होता है—
तस्मिन् ल, लह जिह्वामूलीयोपध्मानीय
नासिक्या न सन्ति माध्यन्दिनानाम्। (8 45)

इससे इस प्रातिशाख्य का माध्यन्दिन शाखा से सम्बन्धित होने का भ्रम होता है परन्तु वेबर ने बड़े युक्तियुक्त ढंग से प्रमाणित किया है कि इस शाखा का सम्बन्ध वाजसनेयि शाखा से है।[17]

वाजसनेयि प्रातिशाख्य का काल

वा० प्रा० कात्यायन की रचना है। कात्यायन का काल विवादास्पद है। यह कात्यायन निश्चित रूप से पाणिनि से पूर्ववर्ती है।[18]

टीकाएं

वा० प्रा० पर दो टीकाएं उपलब्ध हैं—उव्वट भाष्य तथा अनन्तभट्ट भाष्य। उव्वट भाष्य अधिक प्रचलित है तथा अनेक स्थानों से प्रकाशित हुआ है। अनन्तभट्ट का भाष्य मद्रास विश्वविद्यालय की ग्रन्थमाला से प्रकाशित हुआ है।

ऋक्तन्त्र

ऋक्तन्त्र सामवेद की कौथुम शाखा से सम्बन्धित प्रातिशाख्य है। यह प्रातिशाख्य ऋक्तन्त्रव्याकरण नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रातिशाख्य का सम्बन्ध सामवेद से है, इसके पक्ष म डॉ० सूर्यकान्त[19] ने निम्नलिखित प्रमाण दिए है।

1 इस प्रातिशाख्य म अनेक बार सामवेद से सम्बन्धित शब्दो का प्रयोग हुआ है, जैसे साम, स्तोभ, राजन्, गति आदि।
2 इस प्रातिशाख्य मे जो पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, वे सामवेद से सम्बन्धित साहित्य मे उपलब्ध हैं।
3 सामवेद के आचार्य नैगि तथा औदव्रजि का उल्लेख हुआ है।
4 जो मन्त्र इस प्रातिशाख्य मे दिए हैं वे ऋग्वेद मे नही अपितु सामवेद मे मिलते हैं।

ऋक्तन्त्र—एक प्रातिशाख्य

यद्यपि इसका नाम ऋक्तन्त्र है परन्तु सभी विद्वानो का मत है कि विषय की दृष्टि से यह प्रातिशाख्य है। केवल इसम क्रमपाठ के नियम नही दिए गए है, क्योंकि सामवेद म क्रमपाठ नही होता है।

सामवेद की शाखाए और ऋक्तन्त्र

सामवेद की कुल 5 शाखाए हैं—1. कौथुम, 2. जैमिनीय, 3 राणायनीय, 4 गौतमी तथा 5 नैगेय। इनमे से कौन सी शाखा से ऋक्तन्त्र का सम्बन्ध है, इस विषय पर डॉ० सूर्यकान्त ने गहराई मे विचार किया है और इसी निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि इस प्रातिशाख्य का सम्बन्ध कौथुमी शाखा से ही है। इसके समर्थन मे उनका मुख्य तर्क यह है कि जिस भी मन्त्र का सन्दर्भ ऋक्तन्त्र मे दिया गया है, वह बिना किसी अपवाद के कौथुमीय शाखा के सामवेद मे मिलता है। ऋक्तन्त्र का सम्बन्ध अन्य शाखाओ से नही हो सकता, इसके पक्ष मे उनका प्रबल तर्क यह है कि ऋक्तन्त्र म जो नियम दिए गए हैं वे दूसरी शाखाओं पर लागू नही होते। इसके अतिरिक्त जो नियम दूसरी शाखाओ पर लागू होते हैं वे ऋक्तन्त्र मे वर्णित नही हैं। यथा ऋक्तन्त्र म 'वृधे इस्मात्' मे स्वरित का विधान किया गया है, परन्तु जैमिनीय

शाखा मे स्वरित का प्रयोग नहीं होता है। इसी प्रकार जैमिनीय शाखा मे ळ के स्थान पर सर्वत्र ल हो जाता है। परन्तु ऋक्तन्त्र में इस प्रकार का कोई नियम नही दिया गया है। इसलिए ऋक्तन्त्र का सम्बन्ध जैमिनीय शाखा से नही हो सकता। इसी प्रकार अन्य शाखाओं से भी इसका सम्बन्ध सिद्ध नही है।

ऋक्तन्त्र का रचियता

ऋक्तन्त्र का रचियता परम्परा मे शाकटायन माना जाता है। ऋक्तन्त्र की समाप्ति पर शाकटायन ही इसका कर्ता बताया गया है—'इति शाकटायनोक्त-मृक्तन्त्रव्याकरण सम्पूर्णम्'। सामसर्वानुक्रमणी मे भी ऋक्तन्त्र का रचियता शाकटायन ही बताया गया है—

ऋचान्तन्त्रव्याकरणे पच सख्या प्रपाठकम्।
शाकटायनदेवेन द्वात्रिंशत खण्डकाम्मृता॥

परन्तु भट्टोजिदीक्षित ने यम के सम्बन्ध मे ऋक्तन्त्र का रचियता औदव्रजि बताया है—

तथा च ऋक्तन्त्र व्याकरणाख्यस्य छान्दोग्यलक्षणस्य प्रणेता औदव्रजिरप्यसूत्रयत।'[20]

पाणिनीय शिक्षा मे भी औदव्रजि का मत यम के सम्बन्ध मे दिया है। इस समस्या का समाधान करने का प्रयास डॉ० सूर्यकान्त ने किया है। उनका विचार है कि ऋक्तन्त्र की रचना तीन सस्करणो मे हुई। सर्वप्रथम औदव्रजि ने ऋक्तन्त्र की रचना की। दूसरा सस्करण शाकटायन ने किया। ये दोनों सस्करण पाणिनि से पूर्व तैयार हो चुके थे। तीसरा सस्करण पाणिनि और कात्यायन के बाद हुआ।[21]

ऋक्तन्त्र का कलेवर एवं वर्णित विषय

ऋक्तन्त्र मे कुल 287 सूत्र हैं जो पाच प्रपाठकों में विभक्त हैं। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पचम प्रपाठक, दशको मे विभाजित है। द्वितीय प्रपाठक मे छः दशक, तृतीय मे आठ दशक, चतुर्थ मे सात दशक तथा पंचम मे सात दशक। प्रत्येक दशक मे प्राय दस सूत्र हैं।

प्रथम प्रपाठक मे अक्षर समाम्नाय का वर्णन है। इसके साथ-साथ वर्णों की उच्चारण प्रक्रिया भी वर्णित है। द्वितीय प्रपाठक मे वर्णों के उच्चारण स्थान बताए गए हैं। इस प्रपाठक म ही वर्णों की स्पर्श, घोष, अनुनासिक, अन्तस्थ आदि सज्ञाए वर्णित हैं। इस प्रपाठक के तृतीय दशक म स्वरों के अभिनिधान आदि नियम वर्णित है। चतुर्थ तथा पंचम दशक मे मात्रा ज्ञान कराया गया है। षष्ठ दशक में उदात्तादि स्वर-नियम बताए गए हैं। तृतीय प्रपाठक मे उच्चश्रुति तथा

सन्धि के नियम वर्णित हैं। चतुर्थ प्रपाठक में भी सन्धि के विकार जैसे विसर्जनीय का सकार, यकार, वकार, दकार आदि वर्णों का लोप वर्णित है। पंचम प्रपाठक में दीर्घीभाव, द्वित्व, मूर्धन्य आदि के नियम वर्णित हैं।

ऋक्तन्त्र की विशेषताएं

ऋक्तन्त्र की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. ऋक्तन्त्र कलेवर में बहुत छोटा है। इसमें प्रातिशाख्य के सभी विषयों को यथोचित स्थान नहीं मिला है। पारिभाषिक शब्दों के लक्षण बहुत कम बताए गए हैं। वर्णों के उच्चारण से सम्बन्धित नियम अधिक नहीं हैं। स्वरभक्ति, यम जैसे महत्त्वपूर्ण विषय भी वर्णित नहीं है।
2. इसमें कुछ कृत्रिम पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, यथा—पादादि के लिए णि, संयोग के लिए सण्।
3. कुछ पारिभाषिक शब्दों के लिए उस शब्द का केवल कुछ ही अंश रखा गया है, यथा—उदात्त के लिए उत्, दीर्घ के लिए घ, लघु के लिए घु, गति के लिए ति, ह्रस्व के लिए स्व। रेफ का उच्चारण दन्त से या दन्तमूल से बताया है।

ऋक्तन्त्र का काल

ऋक्तन्त्र का उल्लेख गोभिलगृह्यकर्म प्रकाशिका, पुष्पसूत्र के टीकाकार कैयट, चरणव्यूह आदि ने किया है। इसके रचयिता शाकटायन पाणिनि से निश्चित रूप से पूर्ववर्ती हुए हैं क्योंकि पाणिनि ने स्वयं शाकटायन के मत अष्टाध्यायी में दिए हैं। डॉ० सूर्यकान्त ऋक्तन्त्र को अन्य प्रातिशाख्यों से भी पूर्व का मानते हैं। शाकटायन के मत अन्य प्रातिशाख्यों में उद्धृत हैं।

शौनकीया चतुरध्यायिका

शौनकीया चतुरध्यायिका अथर्ववेद से सम्बन्धित प्रातिशाख्य है। यह अथर्ववेद की किस शाखा से सम्बन्धित है, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। गोल्डा का मत है कि यह किसी लुप्त शाखा का प्रातिशाख्य है।

रचयिता

इसके लेखक के विषय में विवाद है। परम्परा से इसका नाम शौनकीया चला आ रहा है। परन्तु जिस प्रकार से ग्रन्थ में शौनक का मत दिया गया है, उससे प्रतीत होता है कि यह स्वयं शौनक की रचना नहीं है। अंतिम व्यंजनों के विषय में शौनक का मत दिया है कि पद के अन्त में प्रथम वर्ण हों, वे तृतीय में बदल जाते हैं। परन्तु साथ में यह भी कहा है कि ऐसा व्यवहार में नहीं होता—

प्रथमान्तानि तृतीयान्तानीति शौनकस्य प्रतिज्ञानं न वृत्ति ।[22]

स्वय लेखक अपने मन को इस प्रकार खण्डनात्मक ढंग मे नही दे सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि शौनक सम्प्रदाय के किसी शिष्य ने इस ग्रन्थ की रचना की है। मैक्समूलर का भी यही मत है कि चतुरध्यायिका का रचयिता शौनकीय चरण का सदस्य था—

and it is most likly that the author of the Caturadhyayika was a member of Saunakiya Carana Founded by the author of the S'akal Pratis'akhya [23]

मैक्समूलर का मत है कि इस प्रातिशाख्य का ऋग्वेद की शाकल शाखा से अवश्य कोई सम्बन्ध रहा है क्योंकि पाणिनि ने शाकल्य के नाम से जो मत दिए हैं, वे चतुरध्यायिका में मिलते हैं। जे० गाडा ने सूचित किया है कि एक हस्तलेख में, जो अधिक परिष्कृत है, ग्रन्थ के अन्त में लेखक का नाम कौत्स दिया हुआ है— 'अथर्ववेदे कौत्सव्याकरणे चतुरध्यायिका ।' सम्भव है कौत्स शौनकीय सम्प्रदाय का व्यक्ति हो तथा इस ग्रन्थ का वास्तविक रचयिता हो ।

चतुरध्यायिका का कलेवर तथा वर्ण्य विषय

चतुरध्यायिका में कुल चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में सूत्रों की संख्या 105, द्वितीय में 107, तृतीय में 96 तथा चतुर्थ में 126 सूत्र हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कुल 434 सूत्र हैं। प्रथम अध्याय में वर्णों का वर्गीकरण, विसर्जनीय, अभिनिधान, अक्षर मात्रा, विकार, आगम, उपधा का विवेचन है। द्वितीय अध्याय में सन्धि, तृतीय अध्याय में संहिता पाठ में होने वाले परिवर्तन, यथा—दीर्घत्व, द्वित्व, स्वरों का अन्तस्थ, स्वरित स्वर तथा णत्व का विधान है। चतुर्थ अध्याय में अवग्रह, प्रगृह्य तथा क्रम पाठ के नियम हैं।

चतुरध्यायिका की विशेषताएं

1 इसमें परिभाषाओं के लिए बहुत कम स्थान दिया गया है, जबकि दूसरे प्रातिशाख्यों में परिभाषाओं का विवरण अधिक विस्तार से दिया है।[24]

2. इसमें लगभग वे ही विषय लिये गए हैं जो दूसरे प्रातिशाख्यों में वर्णित हैं।

3 पदों को अन्य प्रातिशाख्यों की भांति चार भागों में ही विभाजित किया गया है—

चतुर्णां पदजातानां नामाख्यातोपसर्गनिपातानां सन्ध्यपद्यौ गुणौ प्रातिज्ञम् ।

4 उदात्त को उच्च, अनुदात्त को नीच तथा स्वरित को आक्षिप्त बताया है जबकि अन्य प्रातिशाख्यों तथा पाणिनि ने स्वरित को समाहार बताया है।

5. रेफ का स्थान दन्तमूल बताया है।
6 कुछ सूत्र पाणिनि के निकट हैं, यथा—

चतु०	पाणिनि
कृपे रेफस्य लकार	कृपो रो लः
वर्णादन्त्यात्पूर्व उपधा	अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा

रचनाकाल

इसके रचनाकाल के विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सूत्रों की रचना से प्रतीत होता है कि यह प्रातिशाख्य पाणिनि से पूर्ववर्ती तथा ऋक्प्रातिशाख्य से उत्तरवर्ती है।

अथर्ववेद प्रातिशाख्य

यह प्रातिशाख्य अथर्ववेद का दूसरा प्रातिशाख्य है। अथर्ववेद प्रातिशाख्य के अनेक हस्तलेख मिले हैं परन्तु हस्तलेखों में अनेक असमानताएं हैं, जिससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि इस प्रातिशाख्य में समय-समय पर परिवर्धन और परिवर्तन होते रहे हैं। अथर्ववेद प्रातिशाख्य के दो सस्करण मिलते हैं एक लघु सस्करण तथा दूसरा बृहद् सस्करण। बृहद सस्करण को ही पूर्ण प्रातिशाख्य माना जाता है। छोटे आकार वाले प्रातिशाख्य को केवल एक हस्तलेख में लघु कहा गया है—'इति लघु प्रातिशाख्य समाप्त'। अन्य किसी हस्तलेख में इस प्रातिशाख्य को लघु नहीं कहा गया है, अपितु पूर्ण अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य होने का आभास दिया गया है— 'इति श्री अथर्ववेदीयप्रातिशाख्ये प्रथमपाद. समाप्त।'

लघु सस्करण तथा बृहत् सस्करण में परस्पर क्या भेद तथा सम्बन्ध है, यह बात विचारणीय है। लघु सस्करण में केवल मूलसूत्र दिए गए हैं। कहीं-कहीं बृहत् संस्करण में उपलब्ध सूत्रों की तुलना में लघु सस्करण के सूत्र भी छोटे हैं, यथा—

लघु सस्करण	बृहत् सस्करण
प्रत्यञ्चा द्वे उपोत्तमे	प्लुतानामादितस्त्रीणि प्रत्यञ्चा द्वे उपोत्तमे
उपसर्गपूर्वमाख्यातम्	उपसर्गपूर्वमाख्यातमनुदात्त विगृह्यते।

बृहत् सस्करण में मूल सूत्र का बढा हुआ रूप मिलता है तथा उसके बाद में सूत्र के व्याख्यापरक वाक्य मिलते हैं, यथा—

लघु संस्करण	बृहत् संस्करण
1.1 13 वचने वचन पूर्व	वचने वचने पूर्वं पूर्वेण तु विगृह्यते । उत्तरेण समम्पन उभाभ्यां तु पर पदम् । उपसर्गपूर्वमाख्यात यत्रोभाभ्या समस्यते । सामर्थ्यमुभयोरन्त्रासामर्थ्येषु विग्रह । अनर्थककर्मप्रवचनीया-न्युक्तैर्विग्रहोऽपि विनतु आदिषु
1 1 15 द्विनतिकानि वा	द्विनतिकानि वाचकयोगे द्वयोर्द्वयो पूर्वलुप्तकारणानि लुप्तपराणि साकाङ्क्षाणीत्याहु ॥

बृहत् संस्करण मे अथर्ववेद से उदाहरण भी दिए गए हैं।

दोनों संस्करणों की तुलना से प्रतीत होता है कि बृहत् संस्करण लघु संस्करण का परिवर्धित रूप है। लघु संस्करण ही मूल प्रातिशाख्य है। इसके कुछ मुख्य कारण अवलोकनीय हैं, यथा—

1. बृहत् संस्करण में मूल सूत्रों को व्याख्यापरक बना कर उनके स्वरूप मे परिवर्तन किया गया है, यथा—लघु संस्करण में मूल सूत्र का स्वरूप है—'आमन्त्रितानादुयुदात्तान्' बृहत् संस्करण मे इसका परिवर्धित रूप है—'आमन्त्रितादादुपुदात्तादाख्यात न निहन्यते।' परिवर्धित सूत्र में 'आख्यात न निहन्यते।' केवल सूत्र को समझाने की दृष्टि से ही जोडा गया है, अन्यथा सूत्र मे इन पदों की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि 'आख्यात' पद की अनुवृत्ति 'उपसर्गपूर्वमाख्यातम्' से तथा 'न निहन्यते' की अनुवृत्ति पूर्वसूत्र 'वायोगादनिघात' से प्राप्त है। सूत्र शैली मे विस्तार और व्याख्या की अपेक्षा नहीं होती है।

2. कहीं-कहीं सूत्र के स्वरूप में परिवर्तन सम्भवत: अन्य ग्रन्थों के प्रभाव मे किया गया है। यथा—मूल सूत्र है—'पदविधिरिति' (1 1 3) इसका बृहत् संस्करण में स्वरूप है—'समर्थ पदविधिरिति।' पाणिनीय अष्टाध्यायी म सूत्र का स्वरूप ठीक वही है जो बृहत् संस्करण म है, यथा समर्थ. पदविधि (पा० 2 1.1)

सम्भव है कि सूत्र के स्वरूप मे परिवर्तन पाणिनि के प्रभाव स किया गया हो।

3 बृहत् सस्करण मे व्याख्यापरक वाक्यो मे इस प्रातिशाख्य के अन्य सूत्र उद्धृत किए गए हैं जो सूत्रात्मक शैली मे अवाछित हैं।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि लघु सस्करण पूर्ववर्ती तथा बृहत् सस्करण उत्तरवर्ती है। परन्तु डॉ० सूर्यकान्त का मत भिन्न है। उनकी दृष्टि मे बृहत् सस्करण पूर्ववर्ती है जिसे देखकर लघु सस्करण तैयार किया गया। उनकी दृष्टि मे ये दोनो ही सस्करण किसी पूर्ववर्ती अथर्वप्रातिशाख्य का अनुकरण करते हैं (देखे डॉ० सूर्यकान्त, अथर्वप्रातिशाख्य, 1-21)

अथर्वप्रातिशाख्य का कलेवर तथा वर्ण्य विषय

अथर्व प्रातिशाख्य आकार मे बहुत छोटा है। इसमे कुल तीन प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक पादों म विभक्त है। प्रथम प्रपाठक म तीन पाद, द्वितीय म चार तथा तृतीय म भी चार पाद है। इस प्रातिशाख्य म (श्री डॉ० सूर्यकान्त द्वारा सम्पादित) कुल 223 सूत्र हैं।

इस प्रातिशाख्य का विषय उचित रूप से व्यवस्थित नही है। परस्पर असम्बद्ध विषय बीच-बीच मे जोडे हुए से प्रतीत होते हैं।

प्रथम प्रपाठक मे कुल 57 सूत्र हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे लिखा हुआ है 'ॐ नमो ब्रह्मवेदाय' प्रथम सूत्र से पूर्व ब्रह्मा की स्तुति इन शब्दो मे की गई है—

'ॐ नमस्कृत्य ब्रह्मणे शकराय। ऋषिभ्य पूर्वेभ्य। शमु वाचास्तु मे गी[illegible]। प्रज्ञा ब्रह्ममेधा तपश्चादिश्याद्ब्रह्मा यशस मा कृणोतु।'

प्रथम सूत्र मे इस प्रातिशाख्य को पार्षद कहा गया है। इस अध्ययन की विधि को न्याय कहा गया है—'अथातो न्यायाध्ययनस्य पार्षद व्याख्यास्याम।' (अथर्व प्रा० शा० 1.1.1) न्याय शब्द का अर्थ डॉ० सूर्यकान्त ने उव्वट के वाजसनेयि-प्रातिशाख्य के भाष्य (4 8) के आधार पर व्याकरण लिया है। प्रथम सूत्र के तुरन्त बाद सधि के नियम दिए गए है। तत्पश्चात् स्वर और सधि के सम्बन्ध को बताया गया है। उपसर्ग और क्रिया पदो के विग्रह तथा क्रियापदा के स्वराकन के नियम दिए गए हैं।

द्वितीय प्रपाठक म कन्यला पद के स्वर-नियम, लोप, प्रगृह्य, विसर्जनीयान्त पद, विभिन्न पदो क स्वरांकन तथा विभिन्न पदो की सन्धि तथा उनम होने वाले विकार वर्णित है। तृतीय प्रपाठक मे रेफप्रकृति, आमन्त्रित आदि का प्रकृतिभाव, षत्व, णत्व, दीर्घत्व आदि के अपवाद, दीर्घविधि, लोप, ह्रस्वीकरण, प्रसारण, द्वित्व (क्रम) आगम, सयोग, अवग्रह आदि के नियम दिए गए हैं।

अथर्वप्रातिशाख्य की विशेषताएं

1 अथर्वप्रातिशाख्य में विषय बहुत सीमित है। अधिकांश नियम सन्धि तथा स्वराङ्कन से सम्बन्धित है।
2 इस प्रातिशाख्य में बहुत स्पष्ट रूप से पदों की प्रकृति संहिता माना है—'पदानां संहिता विद्वान्' जिसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—'सन्धिशास्त्राणि पदप्रधानार्थं' विद्यात अर्थात सन्धिशास्त्रों का निर्माण केवल पद विच्छेद करने के लिए ही होता है।
3 इस प्रातिशाख्य में ध्वनि का महत्त्वपूर्ण अध्याय पूर्णरूप से छोड़ दिया है। उच्चारण प्रक्रिया पर कोई विचार नहीं किया गया है।
4 विषय अव्यवस्थित है। प्रकरण क्रम में विषयों का निरूपण नहीं हुआ है।
5 कुछ संज्ञाएं ऐसी हैं जो पाणिनि की अष्टाध्यायी में प्रयुक्त हुई हैं, यथा—गति, उपसर्ग, धातु, आमन्त्रित, सार्वधातुक, अव्यय, विसर्जनीय, निपात आदि। पाणिनि के आत्मनेपद तथा परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेभाषा तथा परस्मैभाषा पदों का प्रयोग हुआ है।
6 'छन्दस्' कहकर भाषा के दो विभाग किए गए हैं। कुछ नियम ऐसे हैं जो केवल—'छन्दस्' में लागू होते हैं, सर्वत्र नहीं, यथा—
'वर्णलिङ्गस्वरवियोक्तिवाक्यव्यत्ययश्छन्दसि।'
छन्दसि से तात्पर्य सम्भवतः संहिताओं से है।
7 अथर्वप्रातिशाख्य में एक सूत्र द्वितीय के सम्बन्ध में किसी पूर्वशास्त्र की ओर संकेत करता है—'यथाशास्त्रं क्रमः संयोग (3 2 8)'। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई व्याकरण जैसा ग्रन्थ विद्यमान था। इसीलिए सम्भवतः अथर्वप्रातिशाख्य में अधिक नियमों का वर्णन नहीं है।

अथर्वप्रातिशाख्य का काल

अथर्वप्रातिशाख्य अन्य सब प्रातिशाख्यों से बाद का प्रतीत होता है। डॉ० सूर्यकान्त द्वारा सम्पादित अथर्वप्रातिशाख्य (बृहत् संस्करण) निश्चित रूप से पाणिनि के बाद का प्रतीत होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इसके व्याख्यापरक वाक्य पाणिनि के सूत्रों का ध्यान में रखकर लिखे गए लगते हैं। परन्तु मूलसूत्रों के विषय में कोई निर्णय देना कठिन है। सूत्रों की रचना से प्रतीत होता है कि मूलसूत्र पाणिनि से पूर्व के हैं क्योंकि बृहत् संस्करण में कुछ सूत्रों को पाणिनि के समान बनाया गया है। उदाहरणतया मूलसूत्र है 'पदविधिरिति' (1 1 3) परन्तु बृहत् संस्करण में इसका संशोधित रूप है—'समर्थः पदविधिरिति' जो पाणिनि के सूत्र 'समर्थः पदविधिः' के समान है।

बृहत् संस्करण में अनेक स्थानों पर पूर्वशास्त्र का संकेत दिया है। उदाहरणतया (मूल सूत्र) 'वर्णलिङ्गस्वरविभक्तिवाक्यव्यत्यय श्छन्दसि' का परिवर्धित रूप दिया गया है—'शास्त्रेपुराणे कविभिर्दृष्टमेतत् वर्णलिङ्गस्वरविभक्तिवाक्यव्यत्ययश्छन्दसीति।' इसी प्रकार आत्मनेभाषा तथा परस्मैभाषा के सम्बन्ध में बृहत्संस्करण में कहा गया है कि नियमों का परिवर्तन पूर्वशास्त्र में बताया गया है। इस प्रकार के प्रयोगों के विषय में न तो तर्कबुद्धि से और न ही शास्त्र की दृष्टि से अन्यथा सिद्ध कर सकते हैं—

न तर्कबुद्ध्या न च शास्त्रदृष्ट्या
यथाम्नातमन्यथा नैव कुर्यात्।
आम्नात परिपत् तस्य शास्त्रम्
दृष्टो विधिव्यत्यय पूर्वशास्त्रे।

इस पद्य से प्रतीत होता है कि वैदिक प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अमान्य हो गए थे। 'पूर्वशास्त्र' से क्या तात्पर्य है, यह एक शोध का विषय है।

शिक्षा

शिक्षा वेदांग का दूसरा अंग 'शिक्षा' नामक ग्रन्थों के रूप में विद्यमान है। इन ग्रन्थों का वर्ण्य विषय लगभग वही है जो प्रातिशाख्यों का है। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश शिक्षा ग्रन्थ प्रातिशाख्यों का अनुकरण करते हैं। शिक्षा ग्रन्थों में मुख्य सिद्धान्त लगभग एक जैसे ही हैं, परन्तु क्षेत्रीय प्रभाव से होने वाले ध्वनि परिवर्तनों को पृथक् पृथक् रूप से बताया गया है।

इन सभी शिक्षा ग्रन्थों के उपजीव्य ग्रन्थ प्रातिशाख्यों के अतिरिक्त कोई प्राचीन शिक्षा ग्रन्थ भी रहा होगा जो आज उपलब्ध नहीं है। कुछ शिक्षाओं का आकार बहुत छोटा तो कुछ का बड़ा है। कुछ में केवल ध्वनि के नियम ही वर्णित हैं तो कुछ में स्वर प्रक्रिया तथा छन्द आदि का भी विधान है।

इन शिक्षाओं के काल के विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अधिकांश शिक्षाओं का विषय तो प्राचीन है परन्तु उनमें समय के परिवर्तन के अनुसार संशोधन और परिवर्धन होते रहे हैं। प्राकृत और अपभ्रंश के प्रभाव से भाषा में जो परिवर्तन हुए हैं वे भी समाविष्ट होते रहे हैं।

इन शिक्षाओं को दो वर्गों में बांटा जा सकता है—1 सामान्य शिक्षा तथा 2 वेद विशेष से सम्बन्धित शिक्षा। सामान्य शिक्षा के नियम सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। इस कोटि में पाणिनीय शिक्षा महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा ग्रन्थों का वर्णन इस प्रकार है—

पाणिनीय शिक्षा

वेदाग साहित्य में पाणिनीय शिक्षा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा पाणिनि सम्प्रदाय के लोग पाणिनीय शिक्षा को बहुत सम्मान देते हैं। पाणिनीय शिक्षा के प्राचीन होने और उसे वेदाग मान जाने में विद्वानों में मतभेद है। पाणिनीय परम्परा के सायणादि प्राचीन विद्वान् इसे वास्तविक वेदाग मानते हैं, परन्तु आधुनिक विद्वान् इसकी प्राचीनता के विषय में सन्देह करते हैं। इस विषय पर विस्तार से विचार आगे किया जाएगा।

पाणिनीय शिक्षा के सस्करण

पाणिनीय शिक्षा के कई सस्करण उपलब्ध हुए हैं। श्री मनमोहन घोष ने पाच सस्करणों को एकत्रित किया है। इन सस्करणों का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1 अग्निपुराण संस्करण

अग्निपुराण मे पाणिनीय शिक्षा का जो अश मिलता है उसे अग्निपुराण सस्करण कहते हैं। इस सस्करण मे 21 श्लोक हैं।

2 पजिका सस्करण

पाणिनीय शिक्षा पर 'वेदाग शिक्षा पजिका' नाम की टीका मिलती है। परन्तु इस टीका के साथ मूल शिक्षा नहीं है। श्री मनमोहन घोष ने टीका के आधार पर पाणिनीय शिक्षा का मूल पाठ तैयार किया है जिसे उन्होंने पजिका सस्करण नाम दिया है। इस सस्करण में कुल 23 श्लोक हैं।

3 प्रकाश सस्करण

पाणिनीय शिक्षा पर शिक्षा प्रकाश नाम की एक दूसरी टीका मिलती है। इस टीका के साथ भी मूलपाठ नहीं दिया गया है। श्री मनमोहन घोष न इस टीका के आधार पर मूल पाठ का सस्करण तैयार किया है, जिसे प्रकाश सस्करण कहा है। इस सस्करण मे 32 श्लोक हैं।

4 यजु सस्करण

दो हस्तलेखो के आधार पर डॉ॰ वेबर न इस सस्करण का सम्पादन किया था। यह यजु सस्करण के नाम से प्रसिद्ध है। इस सस्करण म 35 श्लोक हैं।

5 ऋक् सस्करण

तीन हस्तलेखो के आधार पर डॉ० वेबर ने ही इस सस्करण का सम्पादन किया है। इस सस्करण मे साठ श्लोक हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पाणिनीय शिक्षा एक छोटा सा ग्रन्थ रहा है, परन्तु समय-समय पर इसमे परिवर्धन होते रहे हैं। किसी भी सस्करण को प्रामाणिक कहना पक्षपातपूर्ण होगा। सभी सस्करणो मे कुछ न कुछ प्रक्षिप्त अश अवश्य हैं। डॉ० मनमोहन घोष का मत है कि सभी सस्करणो का तुलनात्मक अध्ययन करने स प्रतीत होता है कि मूल पाणिनीय शिक्षा मे कुल अठारह श्लोक रहे हैं। यद्यपि केवल चौदह श्लोक ऐसे हैं जो सभी सस्करणो मे समान रूप से विद्यमान हैं, परन्तु अन्य चार श्लोक भी मूल शिक्षा मे विद्यमान रहे होंगे क्योकि उनका सम्बन्ध मूल चौदह श्लोको से है। डॉ० मनमोहन घोष ने इन अठारह श्लोको का एक पृथक् सस्करण तैयार किया है।[24]

पाणिनीय शिक्षा का रचयिता

यद्यपि यह शिक्षा पाणिनि' के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु इसका मूल रचयिता पाणिनि ही था, इस विषय म सन्देह है। यद्यपि पाणिनीय शिक्षा से अनेक आचार्यों ने उद्धरण लिये हैं तो भी प्राचीन ग्रन्थो म पाणिनि शिक्षा का कोई उल्लेख नहीं है। पतञ्जलि पाणिनि का बहुतश्रद्धालु शिष्य था, परन्तु उसने पाणिनीय शिक्षा का कही भी उल्लेख नही किया है। इस विषय मे डॉ० पॉल थिमे की धारणा है कि यदि पतञ्जलि को पाणिनि की शिक्षा का ज्ञान होता तो वह बहुत ही स्पष्ट शब्दो म इसका उल्लेख करता और इसे उतना ही सम्मान देता जितना उसने अष्टाध्यायी को दिया है।[25]

पाणिनि शिक्षा का सर्वप्रथम ज्ञान अग्निपुराण से मिलता है। अग्निपुराण मे सम्पूर्ण शिक्षा उल्लिखित है, परन्तु वहा इसके रचयिता के विषय मे कुछ नही कहा गया है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि अग्निपुराण के रचयिता को इस शिक्षा के रचयिता का ज्ञान नही था, अन्यथा, उसका उल्लेख अवश्य होता। क्योकि अग्निपुराण मे जहाँ छन्द शास्त्र का उल्लेख हुआ है वहा उसके रचयिता पिंगल का भी उल्लेख हुआ है। अग्निपुराण का समय विल्सन के अनुसार भारत पर मुस्लिम आक्रमण से थोडा-सा पहले का है।[26] डॉ० मनमोहन घोष अग्निपुराण का काल 800 ई० मानते हैं। यदि यह समय अग्निपुराण का रचनाकाल मान लिया जाए तो हम एक बात पर तो एकमत हो ही सकते हैं कि 800 ई० से पूर्व पाणिनीय शिक्षा लिखी जा चुकी थी, परन्तु इसका रचयिता अधिक प्रसिद्ध नहीं हुआ था। यदि इसका रचयिता स्वय पाणिनि होता तो उसका नामोल्लेख अवश्य

होता क्योंकि पतञ्जलि के पश्चात् तो पाणिनि व्याकरण जगत् का एक छत्र शासक हो गया था।

डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा का भी मत यह है कि इस शिक्षा का रचयिता पाणिनि नहीं था। उन्होंने अपने मत के समर्थन में एक बहुत महत्त्वपूर्ण तर्क दिया है। कैयट, जिसने महाभाष्य पर प्रदीप नाम्नी टीका लिखी है, ने 11 प्रकार के बाह्य प्रयत्न बताए हैं—'विवार, संवार, श्वासा, नादो, घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्त स्वरितश्चेति' अर्थात् विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित। ग्यारह प्रकार के बाह्य प्रयत्न आपिशलि शिक्षा में बताए गये हैं। पाणिनि शिक्षा में केवल 5 प्रकार के अनुप्रदानों का उल्लेख है, यथा—1 अनुनासिक, 2. नाद, 3 ईषन्नाद 4 श्वास तथा 5. ईषच्छ्वास।

> यमोऽनुनासिका नह्रौ नादिनः हझषः स्मृताः।
> ईषन्नादा यणजशश्च श्वासिनस्तु खफादयः॥
> ईषच्छ्वासांश्चरो विद्यात् गोर्धामैतत् प्रचक्षते।[27]

यदि पाणिनि की शिक्षा बहुत प्राचीन होती तो कैयट पाणिनि-शिक्षा से ही ग्रहण करता। परन्तु उनके आपिशलि से ग्रहण करने का अर्थ है कि पाणिनीय-शिक्षा, पाणिनि के नाम से कैयट के काल तक प्रसिद्धि नहीं हुई थी। आपिशलि पाणिनि से प्राचीन वैयाकरण है, इसलिए सम्भवतः कैयट के मस्तिष्क में आपिशलि-शिक्षा ही थी न कि पाणिनीया।[28]

परम्परा से भी पाणिनीय शिक्षा को एकमत से पाणिनि की रचना नहीं माना जाता है। पाणिनि-शिक्षा की शिक्षा प्रकाश नामक वृत्ति में वृत्तिकार ने यह स्पष्ट कहा है कि यह शिक्षा पिंगलाचार्य की है जो पाणिनि के अनुसार लिखी गई है—

> व्याख्याय पिंगलाचार्यसूत्राण्यादौ यथायथम्।
> शिक्षा तदीया व्याख्यास्ये पाणिनीयानुसारिणीम्॥[29]

इस बात को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए टीकाकार ने बताया है कि 'बड़े भाई ने व्याकरण की रचना की। उसके छोटे भाई पिंगलाचार्य ने उसके मत को ग्रहण करके शिक्षा ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा की—

'ज्येष्ठभ्रातृभिर्विहिते व्याकरणेऽनुजस्तत्र भगवान् पिंगलाचार्यस्तन्मतमनुभाव्य शिक्षां वक्तुं प्रतिजानीते।।'[30]

परन्तु मनमोहन घोष का मत है कि शिक्षा के रचयिता पाणिनि ही हैं। उन्होंने अपने मत के समर्थन में जो प्रमुख तर्क दिए हैं, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं[31]—

1. पाणिनीय शिक्षा में प्रयुक्त प्रत्याहार वही हैं जो उनके प्रमुख ग्रन्थ अष्टाध्यायी में हैं, यथा अच्, चर्, झष्, यञ्, जश्, शर्, हल् आदि।
2. क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, तथा प वर्ग के लिए क्रमशः कु, चु, टु, तु तथा

पु का प्रयोग किया गया है जो ठीक पाणिनि-शैली के अनुसार है।[32]

3 पाणिनीय-शिक्षा म अनुनासिक का वर्ण समाम्नाय म गिनाया गया है, जिसकी परिभाषा अष्टाध्यायी म भी दी गई है—मुखनासिका वचनोऽनुनासिक (पा 1 1. 9)

4 ह्रस्व दीर्घ तथा प्लुत जैसे पारिभाषिक शब्दो की परिभाषा अष्टाध्यायी म दी गई है—ऊकालोऽज्ह्रस्वदीर्घ प्लुत (पा 1 2 27)

5 पाणिनि ने र तथा ष् के पश्चात् आने वाले न् को ण् म परिवर्तित होने का नियम बताया है (पा 8 4 1 रषाभ्या नो ण समानपदे) इससे सिद्ध होता है कि र को पाणिनि ने मूर्धन्य माना था। पाणिनीय शिक्षा म भी र् को मूर्धन्य माना गया है, जबकि प्रातिशाख्यो म र् को दन्त्य या दन्तमूलीय माना गया है।

पाणिनीय शिक्षा को पाणिनि की कृति सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त तर्क बहुत दुर्बल है। उपर्युक्त तीन तर्कों मे केवल एक बात सिद्ध होती है कि पाणिनीय शिक्षा पाणिनीय सिद्धान्तो का अनुसरण करके लिखी गई है। इनसे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि इस शिक्षा का रचयिता स्वय पाणिनि है। चतुर्थ तर्क मे ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत की परिभाषा अष्टाध्यायी मे देने स पाणिनीय-शिक्षा का पाणिनि कृत सिद्ध होना असगत है। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत पाणिनि कृत सज्ञाए नही हैं। लगभग सभी प्रातिशाख्यो म इन सज्ञाओ का प्रयोग हुआ है। पाचवें तर्क म यह निष्कर्ष निकालना कि पाणिनि र का मूर्धन्य मानत थे, निराधार है। ऋकार रेफ और षकार के बाद न का ण् म परिवर्तन होना प्रातिशाख्यो म भी वर्णित है, यथा—

ऋकाररेफषकारा नकार समानपदेऽवगृह्यो नमन्ति। अन्तपदस्थमकारपूर्वा अपि सध्या।[33]

परन्तु प्रातिशाख्यो म रेफ और ऋकार को मूर्धन्य नही माना गया है। अत पाणिनीय शिक्षा का स्वय पाणिनिकृत सिद्ध करने के लिए ठोस प्रमाणो का अभाव है। पाणिनीय-शिक्षा को पाणिनि कृत न मानना ही अधिक सगत लगता है। वर्तमान पाणिनीय-शिक्षा म पाणिनीय अष्टाध्यायी से कुछ भिन्नताए भी हैं, यथा पाणिनि ने विसर्ग के लिए 'विसर्जनीय' सज्ञा का प्रयोग किया है, परन्तु पा शि म विसर्ग का प्रयोग हुआ है—अनुस्वारो विसर्गश्च ''। 'पाणिनीय शिक्षा म एकार और ओकार की अर्ध मात्रा मानी है—'अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य एकारोकारयोर्भवेत्।[34] परन्तु अष्टाध्यायी म पाणिनि ने 'अर्धमात्रा' का कहीं उल्लेख नही किया है। यहा एक बात और अवलोकनीय है कि पा शि म क वर्ग को जिह्वामूलीय माना है—जिह्वामूले तु कु प्रोक्ता दन्त्योष्ठ्या व स्मृतो बुधै।' परन्तु पाणिनि सम्प्रदाय क उत्तरवर्ती वैयाकरणो ने क वर्ग का कण्ठ्य ध्वनि माना है—'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठ।'

चान्द्र के वर्णसूत्र में भी कवर्ग को कण्ठ्य ध्वनि माना गया है—कण्ठ अकुहविसर्जनीयानाम् ।

अतः यह तो प्रायः निश्चित ही है कि वर्तमान पाणिनीय शिक्षा पाणिनि कृत नहीं है। सम्भव है पाणिनिय सम्प्रदाय के किसी व्यक्ति ने बाद में यह ग्रन्थ लिखा हो।

पाणिनि ने कोई शिक्षा ग्रन्थ लिखा था ?

यदि वर्तमान पाणिनीय शिक्षा पाणिनि द्वारा रचित नहीं है तो प्रश्न उठता है कि क्या पाणिनि ने कोई शिक्षा ग्रन्थ लिखा था ?

पाणिनि के व्याकरण में हम कई विषयों का अभाव देखते हैं। उन्होंने उच्चारण अवयव, उच्चारण स्थान, उच्चारण प्रक्रिया आदि विषयों को छुआ ही नहीं है। उनके व्याकरण में प्रतिशाख्यों के अनेक विषय वर्णित हैं, यथा संहिता नियम, वर्णविकार, उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों की प्रक्रिया। वर्णोच्चारण मुख्यतः शिक्षाओं का विषय है जो पाणिनि के व्याकरण ग्रन्थ में नहीं है। पाणिनि जैसे वैयाकरण के लिए जिसने भाषा की सूक्ष्मताओं को समग्र रूप में सूत्रबद्ध किया, भाषा के इस महत्त्वपूर्ण विषय को छोड़ देना अविश्वसनीय-सा लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्णोच्चारण के विषय को पाणिनि पृथक्रूप में लिखना चाहते थे क्योंकि यह विषय व्याकरण का न होकर शिक्षा का है। अतः पाणिनि द्वारा किसी शिक्षा ग्रन्थ का निर्माण किया जाना अपेक्षित ही था। परन्तु यदि पाणिनि ने कोई शिक्षा ग्रन्थ लिखा होता तो कात्यायन या पतंजलि ने उसका उल्लेख अवश्य किया होता। पाणिनि ने जिन विषयों को छोड़ दिया था, पतंजलि ने उन पर विचार किया है। पतंजलि ने स्वर और व्यंजन के स्वरूप पर प्रकाश डाला है और उनकी परिभाषा भी दी है। इसी प्रकार अयोगवाह ध्वनियों को जिन्हें पाणिनि ने छोड़ दिया था पतंजलि ने परिभाषित किया है। परन्तु इन विषयों के सन्दर्भ में पतंजलि ने पाणिनि का कोई उल्लेख नहीं किया है। अतः यह प्रतीत होता है कि पाणिनि ने कोई शिक्षा ग्रन्थ नहीं लिखा था। सम्भवतः उनकी अकाल मृत्यु ने (जैसा कि परम्परा मानती है) उन्हें शिक्षा ग्रन्थ लिखने का अवसर नहीं दिया।

वर्तमान पाणिनीय शिक्षा पाणिनि के अनुयायी की कृति

वर्तमान पाणिनीय शिक्षा यद्यपि बहुत अर्वाचीन नहीं है, परन्तु इसे पाणिनि के किसी अनुयायी ने पाणिनि से बहुत बाद में लिखा है। निश्चित रूप से यह कृति पतंजलि के बाद की है। इस शिक्षा का पाणिनि सम्प्रदाय के साथ सम्बन्ध इसलिए प्रतीत होता है कि अग्निपुराण के संस्करण को छोड़कर शेष सभी संस्करणों में पाणिनि का स्मरण किया गया है—[1]

शङ्कर: शाङ्करी प्रादात् दाक्षीपुत्राय धीमते ।
दाक्षीपुत्र पाणिनेयो येनेद व्याहृत भुवि ।
रत्नभूतमिद शास्त्रं पृथिव्या सम्प्रकाशितम् ॥
येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्न व्याकरणं प्रोक्त तस्मै पाणिनये नम. ॥

परन्तु ये सब पद्य बाद मे जोडे गए हैं। यह भी सम्भव है कि यह कोई प्राचीन शिक्षा हो जो सामान्य रूप से प्रचलित हो। बाद मे जब पाणिनीय व्याकरण का सर्वग्रासी प्रभाव बढने लगा तो पाणिनि के अनुयायियो ने इसे अपना लिया हो।

पाणिनीय शिक्षा मे वर्णित विषय

मूल पणिनीय शिक्षा मे निम्नलिखित विषय वर्णित हैं—

प्रथम दो श्लोको मे वर्ण-समाम्नाय वर्णित है। इसमे स्वरों की सख्या 21, स्पर्शों की 25 तथा यकारादि शेष व्यंजनो की सख्या 8 बताई है। इसके अतिरिक्त अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय आदि ध्वनियों को भी गिनाया है। तत्पश्चात् ध्वनि उत्पत्ति की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। वर्ण विभाजन के पाच आधार बताए हैं—

1 स्वर 2. काल, 3 स्थान, 4 प्रयत्न तथा 5. अनुप्रदान। सभी वर्णों के उच्चारण स्थान बताए गए हैं। आठ उच्चारण स्थान बताए हैं—उरस्, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नासिका ओठ तथा तालु। हकार का उच्चारण दो प्रकार से बताया गया है। जब हकार पचम वर्ण तथा अन्तस्थों के साथ मिलकर प्रयुक्त होता है तो वह औरस्य तथा जब अकेला प्रयुक्त हो तो कण्ठ्य होता है। अनुस्वार, अयोगवाह, प्रयत्न तथा अनुप्रदान आदि विषयो का भी सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

अन्य शिक्षाए

पाणिनि शिक्षा के अतिरिक्त अन्य शिक्षाए भी हैं। लगभग 65 शिक्षाए इस समय विद्यमान हैं। 31 शिक्षाए बनारस से प्रकाशित शिक्षा सग्रह मे प्रकाशित हैं। अन्य शिक्षाओं के हस्तलेख उपलब्ध हैं जो अभी अप्रकाशित हैं। परन्तु इन सब शिक्षाओं का वर्ण्य विषय लगभग समान है। कुछ शिक्षाओं का आकार बहुत छोटा है। वे केवल ध्वनियों की सख्यामात्र की गणना करती हैं।[35] डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने इन शिक्षा ग्रन्थों को छह वर्गों मे बांटा है—1. सामान्य शिक्षा, 2. ऋग्वेदीय शिक्षा, 3. शुक्लयजुर्वेदीय शिक्षा, 4 कृष्ण यजुर्वेदीय शिक्षा, 5. सामवेदीय शिक्षा तथा 6 अथर्ववेदीय शिक्षा। सामान्य शिक्षाओं मे पाणिनीय शिक्षा का ही सबसे

महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्य सभी सामान्य कोटि की शिक्षाएं वा० शि० की ऋणी हैं।

ऋग्वेदीय शिक्षा

स्वर व्यंजन शिक्षा

ऋग्वेदीय शिक्षाओं में स्वर-व्यंजन शिक्षा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार इसका हस्तलेख भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान पूना में विद्यमान है। यह छह खण्डों में विभाजित है।[14]

शुक्ल यजुर्वेदीय शिक्षा

याज्ञवल्क्य शिक्षा

शुक्ल यजुर्वेदीय शिक्षाओं में याज्ञवल्क्य शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। विषय की दृष्टि से यह शिक्षा पूर्ण है। इसके अन्तर्गत तीन बार याज्ञवल्क्य का नाम उल्लिखित है, यथा—

वर्णो जातिश्च मात्रा च गोत्र छन्दश्च दैवतम्।
एतत् सर्वं समाख्यात याज्ञवल्क्येन धीमता॥

अत: ऐसा प्रतीत होता है कि वाजसनेयी सम्प्रदाय के प्रवर्तक याज्ञवल्क्य की परम्परा से सम्बन्धित किसी व्यक्ति ने इस शिक्षा को लिखा है। इसमें मात्रा सम्बन्धी नियमों के सन्दर्भ में सोम शर्मा का नाम उल्लिखित है। सोमशर्मा का नाम विष्णुपुराण या पंचतन्त्र से पूर्व नहीं मिलता है। अत: इसका काल इन ग्रन्थों के रचनाकाल से बाद का ही होना चाहिए। इस शिक्षा का काल, उव्वट से पूर्व का होना चाहिए क्योंकि वाजसनेयि प्रातिशाख्य के भाष्य में उव्वट ने याज्ञवल्क्य शिक्षा का उल्लेख किया है। उव्वट भोजराज के आश्रित थे। राजा भोजराज का काल 1018 ईस्वी माना जाता है। अत: इस समय से पूर्व यह शिक्षा लिखी जा चुकी थी।

इस शिक्षा का वाजसनेयी प्रातिशाख्य से सम्बन्ध है क्योंकि कई स्थानों पर इसमें वाजसनेयि-प्रातिशाख्य का उल्लेख किया गया है।

इस शिक्षा में कुछ अर्वाचीन अन्धविश्वासों का भी समावेश है जैसे स्पर्शों का सम्बन्ध शनि देवता से माना है—पंचविंशति स्पर्शा कृष्णा व्याख्याता शनैश्चरदैवत्या।'

वासिष्ठी शिक्षा

यह शिक्षा तैत्तिरीय संहिता की वासिष्ठी शिक्षा से भिन्न है। इसका नाम अवश्य शिक्षा है परन्तु इसमे शिक्षा का विषय वर्णित नही है। इसमे ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्रो तथा याज्ञिक-विधियो को उल्लिखित किया गया है।

कात्यायनी शिक्षा

इसमे कुल 13 पद्य हैं। इसम वाजसनेयी प्रातिशाख्य मे दिए गये नियमो को ही पद्यबद्ध किया गया है।

पाराशरी शिक्षा

चरणव्यूह म पाराशरी शिक्षा का बहुत महत्त्व बताया है—'यथा देवेषु विश्वा मा यथा तीर्थेषु पुष्करम्, तथा पाराशरी शिक्षा सर्वशास्त्रेषु गीयते।' परन्तु इस शिक्षा का वर्तमान स्वरूप बहुत बाद का प्रतीत होता है। इसमे वैदिक मन्त्रों के अपपाठ के परिणाम स्वरूप कुम्भीपाक नरक मे पडने जैसी बातें भी दी गई हैं, जो इसे बाद की रचना सिद्ध करती है।

माण्डवी शिक्षा

इस शिक्षा का मूल प्रवचनकर्त्ता माण्डव्य माना गया है—'अर्थात सम्प्रवक्ष्यामि शिष्याणा हितकाम्यया। मण्डव्येन यथा प्रोक्ता आष्ठसख्या समाहृता।' माण्डव्य का नाम शतपथ ब्राह्मण मे आता है।[37] इस दिशा म ब और व के उच्चारण को स्पष्ट किया गया है ताकि उनम मिश्रण न हो।

अमोघनन्दिनी शिक्षा

इस शिक्षा की रचना याज्ञवल्क्य और पाराशरी शिक्षा के समान है। इसमे वकार और बकार स प्रारम्भ होने वाले शब्दो की सूची दी गई है।

माध्यन्दिनी शिक्षा

इसका रचयिता माध्यन्दिन माना जाता है। इसका एक छोटा सस्करण 'लघु माध्यन्दिन शिक्षा' नाम से भी है। इसम प और ख के उच्चारण भेद को स्पष्ट किया गया है।

वर्णरत्न दीपिका शिक्षा

यह याज्ञवल्क्य शिक्षा क समान और पूर्ण है। इसम रचयिता का नाम अमरेश

दिया गया है, जिसका गोत्र भारद्वाज है।

केशवी शिक्षा

इसका रचयिता दैवज्ञ केशव बताया गया है। इसका सम्बन्ध माध्यन्दिन शाखा से है। इसमें अर्वाचीन ध्वनि परिवर्तनों का भी समावेश है। प का ख उच्चारण भी वर्णित है।

कृष्ण यजुर्वेद की शिक्षाएं

चारायणीय शिक्षा

यह कृष्ण यजुर्वेद की चारायणी शाखा से सम्बन्धित है। यह अप्रकाशित है। यह शिक्षा विषय की दृष्टि से पूर्ण है। इसमें सन्धि, अभिनिधान आदि विषय भी वर्णित हैं। इसमें उच्चारण स्थान दस बताए गए हैं। इसमें सृक्व (मुंह का कोना) तथा दन्तमूल अतिरिक्त उच्चारण स्थान बताए गए हैं। इसमें 'इ' और 'उ' स्वर भक्तियों का निषेध किया गया है।

तैत्तिरीय संहिता की शिक्षाएं

तैत्तिरीय संहिता की अनेक शिक्षाएं हैं परन्तु अधिकांशतः अप्रकाशित हैं। प्रमुख शिक्षाएं इस प्रकार हैं—

भारद्वाज शिक्षा

भारद्वाज शिक्षा में तैत्तिरीय संहिता के कुछ शब्दों के उच्चारण पर विचार किया गया है, क्योंकि उनके उच्चारण में दोष हो सकता था। यह शिक्षा तुलनात्मक दृष्टि से प्राचीन है।

व्यास शिक्षा

व्यास शिक्षा की समीक्षा ल्यूडर्स ने की है। इसकी अन्तिम सीमा 13वीं शताब्दी मानी है। यह पाणिनीय शिक्षा से कई स्थानों पर भिन्न है। पाणिनि-शिक्षा के शिरस् तथा उरस् के स्थान पर इसने मुखमार्ग के तीन भाग बताए हैं। इसमें 'र' को मूर्धन्य न बनाकर जिह्वामूलीय बनाया गया है।

शम्भु शिक्षा

यह अप्रकाशित है। इसमें मात्रा और स्वर के सिद्धान्तों पर विशेष रूप से विचार किया गया है। इसके उद्धरण त्रिभाष्यरत्न तथा वैदिकाभरण में भी मिलते

हैं। इसमें कालिका, लक्ष्मी तथा सरस्वती को नमस्कार किया गया है। इसमें स्वर, मात्रा, विवृति, द्वित्व, स्वरभक्ति आदि के नियम वर्णित हैं। इसे व्यास शिक्षा के समकालीन मानते हैं।

कोहलीय शिक्षा

यह अप्रकाशित है। इसमे 79 पद्य है। जिनमे से पहले 41 पद्य स्वर से सम्बन्धित हैं। यह शिक्षा 'कोहली' के मत का अनुकरण करती है। इसमें मन्त्रोचारण के समय हाथ उठाने के नियम भी वर्णित है।

वसिष्ठ शिक्षा

यह व्यास शिक्षा से प्राचीन मानी जाती है। वैदिकाभरण मे इसके उद्धरण है। इसम 13 पद्य है जो द्वित्व से सम्बन्धित है।

सर्वसम्मत शिक्षा

इसके दो सस्करण उपलब्ध है। एक सस्करण तो ओटो फ्रैंके द्वारा 1886 मे सम्पादित है, दूसरा सस्करण सिद्धेश्वर वर्मा द्वारा प्राप्त किया गया है। सिद्धेश्वर वर्मा की प्रति मे 170 पद्य है जो फ्रैंके द्वारा सम्पादित प्रति में प्राप्त पद्यो से तिगुनी है।

आरण्य शिक्षा

यह अप्रकाशित है। इसमें तैत्तिरीय आरण्यक के स्वरो का विवेचन है।

आपिशलि शिक्षा

यह प्रकाशित है। यह मुख्य रूप से वर्णों के उच्चारण स सम्बन्धित है। आपिशलि बहुत प्राचीन वैयाकरण है, जिसका उल्लेख पाणिनि ने भी किया है (वा सुप्यापिशले)। आपिशलि शिक्षा से वैदिकाभरण मे भी उद्धरण दिए गए हैं। इसम 11 बाह्य प्रयत्न वर्णित हैं। सम्भवत जिसके आधार पर नागेश ने 11 बाह्य प्रयत्न गिनाए हैं। राजशेखर की काव्य मीमासा म भी इस शिक्षा का उल्लेख है। यह ग्रन्थ निश्चित रूप से 9वीं शताब्दी से पूर्व का है। परन्तु प्रारम्भिक सीमा के विषय मे निश्चित रूप से नही कहा जा सकता।

कालनिर्णय शिक्षा

यह अप्रकाशित है। इसम मुख्यरूप स मात्राओं पर विचार किया गया है। बर्नेल इसका काल 14वी शताब्दी मानते हैं। वे इस सायण की रचना मानते

हैं।[39] इस शिक्षा के उद्धरण त्रिभाष्यरत्न तथा वैदिकाभरण में प्राप्य हैं।

पारिशिक्षा

यह अप्रकाशित है। यह विषय की दृष्टि से पूर्ण है। इस पर सरल टीका भी उपलब्ध है। इसमें स्वर, द्वित्व, मात्रा आदि के नियम वर्णित हैं।

सामवेद के शिक्षा ग्रन्थ

सामवेद के निम्नलिखित शिक्षा ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

नारद शिक्षा

नारद शिक्षा बहुत प्राचीन है। इसमें विषय का प्रतिपादन बहुत गम्भीर है। इस शिक्षा में सामवेद के स्वरों के गहनार्थ को थोड़े से शब्दों में समझाने का लक्ष्य घोषित किया गया है—

सामवेद तु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा।
अल्पग्रन्थं प्रभूतार्थं श्रव्यं वेदाङ्गमुत्तमम्॥[39]

इस ग्रन्थ में स्वरों को अन्य विषयों के बीच-बीच में कई स्थानों पर वर्णित किया गया है। इसमें कुछ अंश बाद में जोड़े गए प्रतीत होते हैं। इसमें स्वरों का सामगान के साथ सम्बन्ध प्रतिपादित किया गया है। स्वरों के अतिरिक्त अन्य विषय जैसे उच्चारण, द्वित्व आदि भी वर्णित हैं। इस शिक्षा का रचयिता नारद बताया गया है—

शिक्षामाहुर्द्विजातीनां ऋग्यजुःसामलक्षणम्।
नारदीयं शिरेण निरुक्तमनुपूर्वशः॥[40]

इस ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में इस शिक्षा के अन्दर से कोई सहायता नहीं मिलती। परन्तु बाह्य साक्ष्यों के आधार पर यह शिक्षा बहुत प्राचीन सिद्ध होती है। इसमें प्रतिपादित संगीत के नियम त्रिभाष्यरत्न, संगीतरत्नाकर तथा भरत नाट्यम् में मिलते हैं। संगीतरत्नाकर के अनुसार ये नियम केवल नारद के ग्रन्थ में ही मिलते हैं, अन्यत्र नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि भरतनाट्यम् में भी नारद शिक्षा से ही ग्रहण किया गया है। इसमें तुम्बुरु तथा विश्वावसु के मत दिए गए हैं जिनका उल्लेख सबसे पहले महाभारत में है। डॉ॰ सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार इस शिक्षा का काल प्रातिशाख्यों से पूर्व का नहीं हो सकता। इसका काल वंश ब्राह्मण तथा सामविधान ब्राह्मण के बाद का होना चाहिए।[41] क्योंकि इसमें औदव्रजि का नामोल्लेख हुआ है जो वंश ब्राह्मण में भी है। इसमें संगीत नियमों का वर्णन सामविधान ब्राह्मण से मिलता जुलता है। परन्तु इन सब बातों से इस शिक्षा की पूर्वावधि निर्धारित नहीं होती। इसमें उल्लिखित नाम उपर्युक्त

ग्रन्थो स है यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है। सम्भवत ये कही और भी उल्लिखित हो जो हमे उपलब्ध नही हैं।

लोमशी शिक्षा

यह शिक्षा लोमशी शिक्षा क नाम से प्रसिद्ध है परन्तु इस शिक्षा का मूल विचारक गर्गाचार्य बताया गया है—

लामशन्या प्रवक्ष्यामि गर्गाचार्येण चिन्तिताम्।[42]

सम्भव है गर्गाचार्य के द्वारा इसका प्रारम्भिक प्रारूप तैयार किया गया हो जिस बाद मे लोमश ने शब्दबद्ध किया हो। उसी की मूल शिक्षा के आधार पर वर्तमान ग्रन्थकर्त्ता ने उसका नवीन सस्करण तैयार किया है। उल्लेखनीय है कि गर्गाचार्य सामवेद के पद-पाठ कर्त्ता बताए गए है। ज्योतिष के एक ग्रन्थ जातकपद्धति म गर्ग और रोमश दोना को एक साथ गिनाया गया है।[43]

गौतमी शिक्षा

गौतमी शिक्षा गौतम के नाम पर है। गौतम सामवेद के आदि ऋषियो म मान गए हैं। यह रचना स्वयं गौतम की न होकर उसके किसी अनुयायी की है। इसम गौतम के नाम स सयुक्त व्यजना के विषय मे एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि सात व्यजनो से अधिक एक साथ नही आ सकते। इसमे किसी प्रातिशाख्य का भी उल्लख है जिसम सात व्यजन एक साथ आए हैं, युङ् ड् क्ष्व। परन्तु किसी भी प्रातिशाख्य म यह सिद्धान्त नही मिलता है।

अथर्ववेद की शिक्षा

अथर्ववेद की केवल एक ही शिक्षा उपलब्ध है—

माण्डुकी शिक्षा

यह शिक्षा अथर्ववदीया शिक्षा के रूप म प्रसिद्ध है। परन्तु इसमे केवल अथर्ववेद से सम्बन्धित ही नियम नही दिए गए हैं। इसमे अन्य वेदो से सम्बन्धित स्वरादि के नियम वर्णित हैं। उदाहरणतया इसम सामवेद के सात स्वरों पर विस्तार से विचार किया है—'सप्तस्वरास्तु गीयन्त सामभि सामगैर्बुधै।'[44] यह शिक्षा कुल 16 खण्डा म विभाजित है। इसम मुख्य रूप से स्वरो के नियम वर्णित हैं। अथर्ववेद स अनक उदाहरण दिए गए हैं, इसीलिए इसे अथर्ववेदीया शिक्षा कहते हैं।

यह शिक्षा मण्डूक के मत का अनुसरण करती है, जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण स स्पष्ट है—

प्रथमावन्तिमौ चैव वर्त्तन्ते छन्दसि स्वरा ।
त्रयो मध्या निवर्त्तन्ते मण्डूकस्य मत यथा ॥[15]

इसीलिए इसे माण्डुकी शिक्षा कहते हैं।

मण्डूक बहुत प्राचीन ऋषि है। इसका प्रमाण हमें पाणिनि की अष्टाध्यायी में मिल जाता है क्योंकि उसके एक सूत्र 'ढक् च मण्डूकात् (पा० 4 1 119) से माण्डूकेय शब्द बनाने का विधान है। इसका अर्थ है कि पाणिनि के काल में मण्डूक का वश प्रसिद्ध हो गया था। ऋक्प्रातिशाख्य अथर्वपरिशिष्ट तथा ऐतरेय आरण्यक मे भी माण्डूकेय शब्द का प्रयोग हुआ है।[16]

इससे सिद्ध होता है कि यह शिक्षा किसी प्राचीन मत का अनुसरण करती है। वर्तमान मा० शि० (16 7) मे मनुस्मृति (2 118) का भी एक श्लोक थोडे से अन्तर के साथ मिलता है। नारद शिक्षा तथा याज्ञवल्क्य शिक्षाओं म भी यही श्लोक मिलता है। नारदशिक्षा में माण्डूकी शिक्षा वाला पाठ है, जबकि या० शि० म मनुस्मृति वाला पाठ है।

भगवद्दत्त का मत है कि इन शिक्षाओं ने मनुस्मृति म उधार लिया है क्योंकि मनुस्मृति उनकी दृष्टि मे अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है।[17] सिद्धेश्वर वर्मा इस शिक्षा को दसवीं शताब्दी के आस-पास की मानते हैं।[18]

इन शिक्षाओं की सभी तिथियां अनुमान पर आधारित हैं। अधिक तथ्य प्रकाशित होने पर इनकी तिथियो म परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

सन्दर्भ

1. पा० 7. 4. 54—सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्
2 ऋग्वेद, 7. 103. 5
3 पा०, 6. 4. 34—शास इदङ्हलोः
4 पा०, 8. 3. 60 शासि वसिघसीना च
5 पा०, 8 2. 41 षढो : क : सि०
6. ऋग्वेद, 7. 103. 5
7. ऐ० ब्रा०, 9. 2
8. ऐ० ब्रा०, 13 21
9 गोपथ ब्राह्मण, 1. 24
10 गो० ब्रा० 1. 27
11. डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, फोनेटिक आब्जर्वेशन आफ इण्डियन ग्रैमरियन् भूमिका, पृ० 3-4
12 वही, पृष्ठ 21
13. सर्वानुक्रमणी, 1. 1. पर वेदार्थदीपिका

14 द्रष्टव्य वीरेन्द्र कुमार वर्मा, ऋग्वेद प्रातिशाख्य (एक परिशीलन) भूमिका, पृ० 19
15. सर्वानुक्रमणी पर षड्गुरुशिष्य ।
16. डॉ० वीरेन्द्र कुमार, वही, भूमिका, पृ० 23
17. वेबर, वा० प्रा० की भूमिका का अंग्रेजी अनुवाद (घोशाल द्वारा) पृ० 1-11
18 विस्तार के लिए देखें कात्यायन श्रौतसूत्र
19 सूर्यकान्त, ऋक्तन्त्रम्, भूमिका, पृ० 1
20. शब्दकौस्तुभ 1. 1 4
21 सूर्यकान्त, सम्पादक ऋक्तन्त्र, भूमिका, पृ० 33-66
22 शौ० च. 1. 8
23. मैक्समूलर, एंशियेंट संस्कृत लिट्रेचर, पृ० 124
24. डॉ० मनमोहन घोष, पाणिनीय शिक्षा, पृ० 1-3
25. डॉ० पॉल थिमे, पाणिनि एण्ड वेद, पृ० 86
26 विल्सन, जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 6. 483, सिद्धेश्वर वर्मा, द फोनेटिक आब्जर्वेशन ऑफ इण्डियन ग्रैमेरियनस्, पृ० 9
27. पाणिनीय शिक्षा, यजु० संस्करण, श्लोक स० 31. 1/2
28 डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, वही, पृ० 9-10
29. पा० शि० 1 पर शिक्षा प्रकाश टीका
30 वही
31. डॉ० मनमोहन घोष, पाणिनीय शिक्षा, भूमिका, पृ० 49 50
32 पा०, 1. 1. 69 अणुदित सवर्णस्य चाप्रत्ययः ।
33. ऋग्वेद प्रातिशाख्य, 5. 40
34 पा० शि०, यजु० संस्करण, श्लोक 25. 1/2
35 डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, वही, भूमिका, पृ० 29
36. इसके विस्तृत विवरण के लिए देखें डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, वही, पृ० 58 60
37. शतपथ ब्राह्मण, 10 6 5. 9
38 बर्नेल, ऐन्द्र स्कूल ऑफ ग्रैमेरियस्, पृ० 49
39. शिक्षा संग्रह, पृ० 398
40 वही
41. डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, वही, भूमिका, पृ० 49-50
42 शिक्षा संग्रह, पृ० 456
43. डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, वही, पृ० 50
44. माण्डूकी शिक्षा 1 7
45. वही, 2. 3.
46. देखें, भगवद्दत्त, अ० मा० शि० भूमिका, पृ० 14-15
47. भगवद्दत्त, वही, पृ० 17 तथा बार्हस्पत्यसूत्रम् की भूमिका ।
48. डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, वही, पृ० 32

अध्याय-3

कल्पसूत्र

वेदांगो मे कल्पसूत्र सबसे अधिक विस्तृत और पूर्ण वेदांग है। यद्यपि प्राचीन काल में सभी वेदांगो का अध्ययन होता था और सैद्धान्तिक रूप मे सबका समान महत्त्व दिया जाता था परन्तु जितना अधिक साहित्य कल्प वेदांग से सबंधित उपलब्ध हुआ है उतना और किसी वेदांग से सबंधित नहीं। यद्यपि क्रम की दृष्टि से शिक्षा का स्थान प्रथम है परन्तु प्रयोग की दृष्टि मे 'कल्प' वेदांग ने अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है।

कल्पसूत्रों की आवश्यकता

कल्पसूत्रों का सीधा संबंध यज्ञ प्रक्रिया से है। प्राचीन काल मे वेद मन्त्रो की रचना चाहे किसी पृष्ठभूमि मे हुई हो अथवा मूल उद्देश्य कुछ भी रहा हो परन्तु आगे चलकर उनके मन्त्रो का प्रयोग यज्ञ मे होने लगा और समस्त वैदिक साहित्य और समाज यज्ञो से अभिभूत हो गया। जीवन की प्रत्येक क्रिया यज्ञ से अनुशासित होने लगी। इसीलिए वेदों की व्याख्या यज्ञपरक हो गई। ब्राह्मण ग्रन्थो मे यज्ञों का जटिल स्वरूप प्रकट होने लगा। उसे समझना और स्मरण रखना कठिन हो गया। इसलिए ऐसे ग्रन्थो की आवश्यकता पडी जो यज्ञो के विषय मे पूर्ण सूचना थोडे से

थोड़े शब्दो मे दे सकें। इसी आवश्यकता के फलस्वरूप कल्पसूत्रो का जन्म हुआ।

बौधायन कल्पसूत्र की रचना के विषय में बौधायनसूत्रभाष्य में सायणाचार्य ने स्पष्ट कहा है कि 'विधि, अर्थवाद तथा मन्त्र वेद के ये तीन भाग है। विधि के द्वारा निर्दिष्ट अर्थवाद के द्वारा ज्ञात तथा मन्त्र द्वारा स्मरण किया हुआ कार्य कल्याणकारी होता है। ब्राह्मण के बहुत विस्तृत होने के कारण इन कार्यों का ज्ञान बहुत कठिनता से होता है। अत: इन कर्मो का ज्ञान सुगमता से हो सके, इस उद्देश्य से बौधायन ने कल्पसूत्र की रचना की—

'तत्र तावद्विध्यर्थवादमन्त्रात्मना त्रिधा व्यवस्थितो वेदराशि । विधिविहित-मर्थवादप्ररोचित मन्त्रेण स्मृतमभ्युदयकारि भवतीति। ततश्च चोदितानां कर्मणा सुखावबोधाय भगवान् बौधायन कल्पमकल्पयत् ।'

कल्पसूत्र और ब्राह्मण ग्रन्थ

कल्पसूत्रो ने मुख्यत ब्राह्मण ग्रन्थो का अनुकरण किया है। परन्तु विषय प्रतिपादन की शैली उनसे सर्वथा भिन्न है। ब्राह्मण ग्रन्थो मे यज्ञ प्रक्रिया की विस्तृत व्याख्या दी गई है। विषय भी व्यवस्थित और परस्पर सम्बद्ध नही हैं। परन्तु कल्पसूत्रो मे सूत्रात्मक शैली मे सक्षिप्त से सक्षिप्त रूप मे विषय को दिया गया है। एक विषय से सम्बन्धित जो भी बातें इधर उधर बिखरी पडी थी उन सबको समेट कर एक स्थान पर लाने का प्रयत्न किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थो की दुरूहता और विस्तार तथा कल्पसूत्रो की विशदता, लघुता तथा सम्पूर्णता के विषय मे सायण ने स्पष्ट कहा है—

यतो ब्राह्मणानामानन्त्य दुखबोधतया अतो न तै. सुखं कर्मावबोध इति कल्पसूत्राणीमानि प्रतिनियतशाखान्तरानङ्गी चैत्र पूर्वाचार्या ॥ कल्पस्य वैशद्यलाघवकात्स्र्न्यप्रकरणशुद्धयादिभि प्रकर्षैर्युक्तस्य...[1]

तन्त्रवार्तिक मे कुमारिल ने भी इसी प्रकार स्पष्ट कहा है कि कल्पसूत्रों मे उन विधियो को एकत्रित किया गया है जो भिन्न-भिन्न शाखाओ के अर्थवाद मे मिश्रित होकर बिखरी पडी थी। यह प्रयास सुगमता की दृष्टि से ही याज्ञिक आचार्यों ने किया है—

'एव कल्पसूत्रेष्वर्थवादादिभिश्रशाखान्तरविप्रकीर्णन्यायलभ्यविध्युपसहार-फलमर्थनिरुपण तत्तत्प्रमाणमङ्गीकृत्य कृतम्। लोकव्यवहारपूर्वकाश्च केचिदुक्तिगादिव्यवहारा सुखार्थहेतुत्वेनाश्रिता:।''[2]

यही कारण है कि कल्पसूत्रों की लोकप्रियता बढने लगी। धीरे-धीरे ब्राह्मण ग्रन्थों की आवश्यकता कम होने लगी और कल्पसूत्र एक प्रकार से अपरिहार्य होने लगे। कुमारिल ने कल्पसूत्र के महत्त्व के विषय में कहा है—

वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पैं कर्माणि याज्ञिकाः ।
न तु कल्पैर्विना केचिन्मन्त्रब्राह्मणमात्रकात् ॥

अर्थात् 'याज्ञिक लोग वेद की सहायता के बिना केवल कल्पसूत्रों की सहायता से यज्ञ कर्म सम्पन्न कर लेते हैं परन्तु ऐसा कोई नहीं है जो कल्पसूत्रों के बिना केवल मन्त्र या ब्राह्मणों से यज्ञ करता हो।'

कुमारिल के इस कथन से कल्पसूत्रों की अपरिहार्यता सिद्ध होती है। ब्राह्मण ग्रन्थों को लोग लगभग भूल ही गए क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों का कार्य कल्पसूत्रों से ही चल जाता था। कल्पसूत्रों के महत्त्व के विषय में मैक्समूलर ने कहा है—'The Kalpasutras are important in the history of Vedic literature for more than one reason They not only mark a new period of literature and a new purpose in the literary and religions life of India, but they contributed to the gradual extinction of the numerous Brahmanas which to us are therefore only known by name.'[13]

अर्थात् वैदिक साहित्य के इतिहास में कल्पसूत्रों का अनेक कारणों से महत्त्व है। वे केवल साहित्य के नये काल का तथा भारत के साहित्यिक तथा धार्मिक जीवन में नये उद्देश्य का ही सूत्रपात नहीं करते अपितु इनके कारण अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ धीरे-धीरे लुप्त हो गए जिन्हें हम आज केवल नाम मात्र से ही जानते हैं।'

कल्प शब्द का अर्थ

इन सूत्रों को कल्प सूत्र क्यों कहा गया, यह एक विचारणीय विषय है। कल्प शब्द की व्युत्पत्ति कृपू सामर्थ्ये से है। कल्प्यते अनेन इति 'कल्प'। अर्थात् जिसमें किसी कार्य को सम्पन्न कराने की क्षमता हो उसे कल्प कहते हैं। इसी व्युत्पत्ति के अनुसार 'कल्प' शब्द का अर्थ 'नियम', 'प्रथा', 'व्यवस्था' आदि अर्थों में होने लगा। इस प्रकार 'कल्प' ग्रन्थ ऐसे ग्रन्थ है जिनमें यज्ञ आदि के नियम तथा विभिन्न व्यक्तियों के सामाजिक एवं धार्मिक नियम वर्णित हों। विष्णु मिश्र ने ऋग्वेद-प्रातिशाख्य की वर्गद्वयवृत्ति (पृ० 13) में कल्पसूत्रों के विषय में कहा है—"कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्"। अर्थात् कल्प वे शास्त्र हैं जिनमें वेदविहित कर्मों का यथाक्रम वर्णन हो।

कल्पसूत्र के अंग

कल्पसूत्र के मुख्य तीन अंग हैं—1 श्रौतसूत्र, 2. गृह्यसूत्र तथा 3 धर्मसूत्र। इसके अतिरिक्त दो गौण अंग और हैं—1. शुल्वसूत्र तथा 2. पितृमेधसूत्र। श्रौतसूत्र में वैदिक यज्ञों का वर्णन है। गृह्यसूत्र में गृहस्थ के द्वारा किए जाने वाले

यज्ञों तथा संस्कारों का वर्णन है। धर्मसूत्र में सामाजिक व्यवस्था तथा वर्णाश्रम धर्म राजा के कार्य आदि विषयों का वर्णन है। शुल्बसूत्रों में यज्ञ की वेदी तथा यज्ञशाला की निर्माण विधि वर्णित है। पितृमेधसूत्र में मृतक कर्म वर्णित हैं। इनका विस्तृत विवेचन आगे किया जाएगा।

प्रत्येक कल्पसूत्र के सभी अंग उपलब्ध नहीं हैं। केवल यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता के बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि तथा वैखानस कल्पसूत्र ही अपने सभी अंगों में विद्यमान हैं। शेष कल्पसूत्रों में किसी न किसी अंग की न्यूनता है।

कल्पसूत्रों की प्राचीनता

कल्पसूत्रों की रचना बहुत प्राचीन काल में होनी प्रारम्भ हो गई थी। कल्पसूत्रों की रचना ब्राह्मण काल से ही प्रारम्भ हो गई थी। कुछ ब्राह्मणों में इस प्रकार के वाक्य मिलते हैं जिन्हें सूत्र कहा जा सकता है। कुमारिल ने आरुण और पराशर शाखा के ब्राह्मणों को कल्पसूत्रों के रूप वाला ही स्वीकार किया है—'आरुण-पराशरशाखाब्राह्मणस्य कल्परूपत्वम्।' कल्पसूत्रों के टीकाकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों के अनेक वाक्यों को सूत्र कहकर उद्धृत किया है।

अनेक प्राचीन सूत्र ब्राह्मण शैली से अधिक दूर नहीं हैं। उनके अनेक सूत्र ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्य जैसे ही प्रतीत होते हैं। शौनक द्वारा रचित सूत्रों को ब्राह्मण-सन्निभ (ब्राह्मणों के समान) कहा गया है।[1] शांखायन, आश्वलायन, बौधायन आपस्तम्ब, भारद्वाज आदि आचार्यों के कल्पसूत्र अनेक स्थानों पर ब्राह्मणों से मिलते-जुलते हैं। इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सूत्र ग्रन्थों की रचना ब्राह्मण काल में ही प्रारम्भ हो गई थी क्योंकि प्राचीन कल्पसूत्र और ब्राह्मण ग्रन्थ भाषा और शैली की दृष्टि से अधिक दूर प्रतीत नहीं होते हैं।

इस बात की पुष्टि एक अन्य प्रमाण से भी होती है। उपलब्ध कल्पसूत्रों में अनेक आचार्यों के मत दिए गए हैं। उदाहरणतया 'आश्मरथ्य' तथा 'आलेखन' दो ऐसे आचार्य हैं जिनके मत अनेक कल्पसूत्रों में दिए गए हैं। परन्तु उनके कोई ग्रंथ हमें उपलब्ध नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कल्पसूत्रों की रचना बहुत प्राचीन काल से होने लग गई थी। पाणिनि का सूत्र 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' (पा० 4.3 105) प्राचीन कल्पों की सूचना देता है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी कल्प सूत्र प्राचीन हैं। अनेक कल्पसूत्र ऐसे हैं जो बहुत बाद के काल के हैं जैसे वैखानस कल्प, वैतान कल्प सूत्र आदि। इन कल्पसूत्रों में बहुत बाद के काल की पूजा पद्धति जैसे प्रतिमा पूजा, नवग्रह पूजा आदि समाविष्ट हैं। इससे सिद्ध होता है कि कल्पसूत्रों की रचना बहुत प्राचीन काल से प्रारम्भ होकर बहुत अर्वाचीन समय (स्मृति काल तक) होती रही। यह भी आवश्यक नहीं है कि एक कल्प के सभी अंगों की रचना एक ही काल

में अथवा एक ही व्यक्ति के द्वारा हुई हो। अनेक कल्पों के भिन्न-भिन्न अंगों की रचना भिन्न-भिन्न काल तथा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा हुई है।

कल्पसूत्रों की शाखाएं तथा उनके उपजीव्य ग्रन्थ

ब्राह्मण ग्रन्थों के रचना काल की समाप्ति तक वेदों का अध्ययन अनेक शाखाओं में होने लगा था। शाखाएं भी चरणों में बंट गई थीं। प्रत्येक शाखा की एक पृथक् संहिता हो गई थी। शाखा विभाजन के फलस्वरूप यज्ञ प्रक्रिया में भी अन्तर आने लगा था। इसलिए प्रत्येक शाखा के अपने ब्राह्मण हो गए थे। उसी शाखा के ब्राह्मण पर आश्रित रहकर ही कल्पसूत्रों की रचना प्रारम्भ हुई थी। इस प्रकार कल्पसूत्र अपनी शाखा के ब्राह्मण और मन्त्रों के लिए उसी शाखा से सम्बन्धित संहिता पर निर्भर था।

परन्तु यह आवश्यक नहीं कि कल्पसूत्रों ने अपनी शाखा का अन्धानुकरण किया है। यद्यपि सम्बन्धित संहिता के मन्त्रों और ब्राह्मण ग्रन्थों को सर्वाधिक महत्त्व दिया है परन्तु दूसरी शाखाओं से सम्बन्धित संहिताओं और ब्राह्मणों से लेने में भी संकोच नहीं किया गया है। कल्पसूत्रों में अनेक ऐसे आचार्यों के मत ग्रहण किए गए हैं जो उनकी शाखाओं से सम्बन्धित नहीं थे। तन्त्रवार्तिक के रचयिता कुमारिल के अनुसार कल्पसूत्रों में उन सभी विधियों को तो लिया ही गया है जो उनकी शाखा में सम्बन्धित थे, परन्तु अन्य शाखाओं में विहित नियमों को भी ग्रहण किया गया है। सभी शाखाओं के नियमों को एकत्रित करके रखना जैमिनि को भी स्वीकार्य था—

स्वशाखाविहितैश्चापि शाखान्तरगतान्विधीन्।
कल्पकारा निबध्नन्ति सर्व एव विकल्पितान्॥
सर्वशाखोपसंहारो जैमिनेश्चापि सम्मतः॥[3]

कुमारिल के अनुसार कोई भी सूत्रकार केवल अपनी शाखा के नियमों से ही सन्तुष्ट नहीं था—

न च सूत्रकाराणामपि कश्चित् स्वशाखोपसंहारमात्रेणावस्थितः॥[4]

हिरण्यकेशि-सूत्र के भाष्यकार महादेव ने दूसरी शाखाओं से ग्रहण करना आवश्यक बताया है, क्योंकि किसी भी एक शाखा में श्रौत और स्मार्त कर्म सम्पूर्णता में वर्णित नहीं है—

अवश्यञ्च शाखान्तरोपसंहारोऽभिहितः। न ह्येकस्यां शाखायां श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानं साकल्येन विहितं तन्मन्त्रा वा पठिताः किन्तु किञ्चित् क्वचित्।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि कल्पसूत्रों के अध्ययन से हो जाती है। न केवल अपने वेद की भिन्न शाखाओं से अपितु दूसरे वेद की शाखाओं से भी उद्धरण लिये गए हैं।

यज्ञ कार्यों मे विनियोज्य मन्त्र अधिकाशत सम्बन्धित वेद से ही लिये गए है। परन्तु अन्य वेदो से भी ग्रहण किया गया है। कोई कल्पविशेष किस वेद की किस शाखा से सम्बन्धित है, इसका ज्ञान इस बात से होता है कि वेद की जिस शाखा मे कोई कल्प विशेष सम्बन्धित है, उस शाखा के मन्त्रो को पूर्ण रूप मे न देकर केवल आदि के कुछ शब्दो को देकर प्रतीको द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। अन्य सहिताओ के मन्त्रो को पूर्ण रूप मे दिया गया है। परन्तु कुछ सूत्रो मे इस नियम के अपवाद भी हैं (देखें आगे व्यक्तिगत सूत्रो के विवरण मे।)

कल्पसूत्रो का काल

कल्पसूत्रो का काल निर्धारण उसी प्रकार जटिल है जिस प्रकार पूर्ववर्ती वैदिक साहित्य का। मैक्समूलर ने सभी सूत्रों के लिए 600 ई॰ पूर्व से 200 ई॰ पू॰ तक की सामान्य अवधि निर्धारित की है।[7] मैकडानल सूत्रो का काल 500 ई॰ पू॰ से 200 ई॰ पू॰ तक मानते हैं।[8] परन्तु उपर्युक्त काल निर्धारण किसी भी तर्क द्वारा प्रमाणित नही है। सूत्रो का काल निर्धारण वैदिक सहिताओ तथा अन्य वैदिक साहित्य के काल निर्णय से जुड़ा हुआ है। परन्तु वैदिक सहिताओं का काल ही अभी निर्धारित नही हो सका है। मैक्समूलर ने ऋग्वेद के प्रारम्भ का काल 1500 या 1200 ई॰ पू॰ माना है।

मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य के प्रत्येक काल के लिए 200 वर्ष की कल्पना करके इस काल का निर्धारण किया है। यह कल्पना सर्वथा मिथ्या, भ्रामक और अविश्वसनीय है। स्वय विन्तरनित्ज ने मैक्समूलर के इस सिद्धान्त को थोथा माना है।[9] उन्होने ऋग्वेद के काल को 2000 से लेकर 2500 तक बढ़ाया है।[10] इनके अतिरिक्त जैकोबी ने वेद के काल को 4500 ई॰ पू॰ तो तिलक ने 6000 ई॰ पू॰ सिद्ध किया है। यदि ऋग्वेद के इस काल को स्वीकार किया जाए तो सूत्रो का काल भी बहुत प्राचीन सिद्ध होता है। सी॰ वी॰ वैद्य का कथन है कि सूत्रो का काल 1000 ई॰ पू॰ से बाद का नही हो सकता। वे समस्त सूत्र साहित्य को 1900 ई॰ पू॰ से 1000 ई॰ पू॰ के मध्य मानते हैं।[11]

इस अवस्था म सूत्रों के काल के विषय मे कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। अन्त साक्ष्यो के आधार पर कुछ सूत्रो का पौर्वापर्य जाना जा सकता है। कौन सा सूत्र किस सूत्र मे पहले या बाद का है इस सबध मे व्यक्तिगत सूत्रो के सन्दर्भ मे विचार किया गया है।

'कल्प' के अगो का विवेचन

जैसा कि कहा जा चुका है समस्त 'कल्प' तीन मुख्य और दो गौण अगो मे विभाजित है। यहा सबका पृथक् पृथक् विवरण दिया जा रहा है।

1 श्रौतसूत्र

श्रौतसूत्र 'कल्प' वेदांग के सबसे महत्त्वपूर्ण भाग हैं। श्रौत शब्द 'श्रुति' से निकला है। इस प्रकार श्रौत शब्द का अर्थ है—श्रुति पर आधारित। श्रुति से तात्पर्य वेदों से है। वेदों में यज्ञों का विधान है। इसलिए श्रौतसूत्र मुख्य रूप से वैदिक यज्ञों की विधि निर्धारित करते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों का पूर्ण स्वरूप विकसित हो चुका था। स्वयं संहिताओं में भी यज्ञ के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। अथर्ववेद में यज्ञ को जगत् की उत्पत्ति का स्थान माना गया—'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि'[12] (अथर्ववेद 10 9 8)

'यज्ञपरिभाषासूत्र' में वैदिक यज्ञों को दो भागों में विभाजित किया गया है—श्रौत और गृह्य। श्रौतयज्ञों का विवरण श्रौतसूत्रों में दिया गया है। श्रौतयज्ञ दो भागों में विभाजित हैं—1 सोमसंस्था तथा 2 हवि संस्था। सोमसंस्था यज्ञ के सात भेद हैं—1. अग्निष्टोम, 2 अत्यग्निष्टोम, 3 उक्थ्य, 4 षोडशी, 5 वाजपेय, 6 अतिरात्र तथा 7. आप्तोर्याम। हवि संस्था के भी सात भेद हैं। 1. अग्न्याधेय, 2 अग्निहोत्र, 3 दर्श, 4 पौर्णमास, 5 आग्रहायण 6 चातुर्मास्य तथा 7. पशुबन्ध। इनमें से कुछ यज्ञ प्रकृति तथा कुछ यज्ञ उनकी विकृति माने जाते हैं।

श्रौतसूत्रों में उपर्युक्त सभी यज्ञों का उनकी विकृति सहित विवरण और विधि निर्धारित है।

श्रौतसूत्रों में याज्ञिकों की संख्या सोलह तक हो गई है। परन्तु मुख्य याज्ञिक चार वेदों से सम्बन्धित चार ही हैं अर्थात् ऋग्वेद का होता, सामवेद का उद्गाता, यजुर्वेद का अध्वर्यु एवं अथर्ववेद का ब्रह्मा।

प्रत्येक वेद से सम्बन्धित श्रौत साहित्य विद्यमान है जिसका विवरण आगे विस्तार से दिया जा रहा है।

1 ऋग्वेदीय श्रौतसूत्र

ऋग्वेद से सम्बन्धित दो श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं—1 शाङ्खायन श्रौतसूत्र तथा 2. आश्वलायन श्रौतसूत्र।

शाङ्खायन श्रौतसूत्र

शाङ्खायन श्रौतसूत्र ऋग्वेद की शाङ्खायन शाखा से सम्बन्धित है। गृह्यसूत्र सहित शाङ्खायन श्रौतसूत्र का रचयिता एक ही व्यक्ति सुयज्ञ शाङ्खायन माना जाता है। यद्यपि श्रौतसूत्र के मूलपाठ में इसके रचयिता का कहीं उल्लेख नहीं है परन्तु

परम्परा से इसे शाङ्खायन की रचना माना जाता रहा है। प्रो० ओल्डनबर्ग ने शाङ्खायन गृह्यसूत्र के सम्बन्ध में कहा है कि शाङ्खायन वश का नाम है और वास्तविक रचयिता सुयज्ञ है। इस सन्दर्भ में वे शाङ्खायन गृह्यसूत्र 1.1.10 पर नारायण कृत भाष्य में उद्धृत एक कारिका का उल्लेख करते हैं जो इस प्रकार है—

अन्वारणिप्रदान यदध्वर्यु कुरुते क्वचित् ।
मत तन्न सुयज्ञस्य मथित सोऽग्नि नेच्छति ॥[13]

इससे स्पष्ट होता है कि भाष्यकार नारायण के मत मे शाङ्खायन गृह्यसूत्र तथा तदनुसार शाङ्खायन श्रौतसूत्र के रचियता सुयज्ञ शाङ्खायन ही हैं। डॉ० टी० आर० चिन्तामणि[14] तथा डॉ० रामगोपाल[15] भी इसी मत के समर्थक हैं।

शाङ्खायन शाखा का प्रचलन पश्चिम मे उत्तरी गुजरात मे था। इसके प्रमाण म महार्णव का यह श्लोक महत्त्वपूर्ण है—

उत्तरे गुर्जरे देशे बह्वृच परिकीर्तित ।
कौषीतकि ब्राह्मण च शाखा शाङ्खायनी स्थिता ॥

शाङ्खायन श्रौतसूत्र कौषीतकि ब्राह्मण पर आश्रित है। शाङ्खायन श्रौतसूत्र के अनेक सूत्र कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार हैं। कुछ सूत्र ज्यो की त्यो कौषीतकि ब्राह्मण मे उपलब्ध हैं।[16] निम्नलिखित उदाहरण अवलोकनीय हैं—

शा० श्रौ०	कौ० ब्रा०
II 5 12	1.4
III 8 20	5 2 1-7

शाङ्खायन श्रौतसूत्र के अनेक स्थल जैमिनीय ब्राह्मण और जैमिनीय गृह्यसूत्र के समान हैं।[17] ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य सहिताओ तथा वैदिक साहित्य से भी शा० श्रौ० सू० म उद्धरण ग्रहण किए गय हैं या किसी न किसी रूप मे उनसे सबध प्रकट होता है। मैत्रायणी सहिता, काठक सहिता, शतपथ ब्राह्मण, वाराह श्रौतसूत्र, लाटयायन श्रौतसूत्र, बौधायन श्रौतसूत्र आदि ग्रन्थो मे शाङ्खायन श्रौतसूत्र के सूत्रों के समानान्तर वाक्य उपलब्ध हैं।

शाङ्खायन श्रौतसूत्र मे कुल अठारह अध्याय हैं। कुछ विद्वान् पिछले दो अध्यायों को बाद म जोडे गए मानते हैं। इसके लिए मुख्य तर्क यह दिया गया है कि इन अध्यायो की शैली उतनी गठी हुई और सुव्यवस्थित नही है जितनी पूर्व के अध्यायो की है। पिछले तीन अध्याओ की भाषा और विषय ब्राह्मण ग्रन्थो स मिलते हैं।[18]

इस श्रौतसूत्र का वर्ण्य विषय सभी श्रौतसूत्रो की भाति यज्ञ-प्रक्रिया ही है। परन्तु कुछ विषय ऐस भी हैं जो अन्यत्र गृह्यसूत्रो म वर्णित हैं जैसे शूलगव, अर्घ्य

आदि। यज्ञ आदि कार्य तीन वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिए निर्धारित किए गए हैं, यथा—

यज्ञं व्याख्यास्यामः। स त्रयाणाम् वर्णानाम्। ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यस्य च। (1 1 1-3)

इस सूत्र के मुख्य वर्ण्य विषय हैं—यज्ञ सम्बन्धी सामान्य नियम, दर्शपूर्णमास, इष्टियों के नियम, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, अभ्युदितेष्टि, चातुर्मास्य, मरणोपरान्त कर्म, शूलगव, अर्घ्य, अग्निष्टोम (सोम यज्ञ) वाजपेय, वृहस्पतिसव, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, महाव्रत आदि।

शाङ्खायन श्रौतसूत्र प्रथम बार अल्फ्रेड हिल्लेब्राट द्वारा सम्पादित किया गया और सन् 1885-99 में एशियाटिक सोसाइटी बंगाल द्वारा प्रकाशित किया गया। सन् 1981 में पुनः मेहरचन्द लछमनदास दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया। इस श्रौ० सू० की वरदत्तसुत आनर्तीय तथा गोविन्द द्वारा विहित सम्कृत टीका भी हिल्लेब्राट द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित हैं। शा० श्रौ० सू० का अंग्रेजी अनुवाद प्रो० डब्ल्यू कैलेंड द्वारा किया गया है जिसे डॉ० लोकेशचन्द्र ने 24 पृष्ठ की भूमिका सहित सम्पादित किया है जिसे मोतीलाल बनारसी दास ने 1953 तथा पुनः 1980 में प्रकाशित किया है।

आश्वलायन श्रौतसूत्र

आश्वलायन श्रौतसूत्र ऋग्वेद की शाकल शाखा से सम्बन्धित माना जाता है। आश्वलायन श्रौतसूत्र के भाष्यकार गार्ग्य नारायण के अनुसार इस श्रौ० सू० का सम्बन्ध ऋग्वेद की शाकल और बाष्कल दोनों शाखाओं से है।[19] परन्तु अधिकांश विद्वान इसे शाकल शाखा से ही सम्बन्धित मानते हैं।

इस सूत्र के रचयिता के विषय में भी मतभेद हैं। आश्वलायन के नाम से गृह्यसूत्र भी उपलब्ध होता है। आश्वलायन श्रौतसूत्र के प्राचीनतम भाष्यकार देवस्वामी के अनुसार आश्वलायन श्रौतसूत्र का रचयिता उसका गुरु शौनक था तथा आश्वलायन गृह्यसूत्र का रचयिता स्वयं आश्वलायन ही था।[20] षड्गुरुशिष्य द्वारा उल्लिखित परम्परा के अनुसार शौनक ने स्वयं एक कल्पसूत्र की रचना की थी जिसमें एक हजार खण्ड थे। परन्तु उनके शिष्य आश्वलायन ने जब अपने सूत्र-ग्रन्थ को शौनक को दिखाया तो शौनक ने अपने शिष्य की प्रसन्नता के लिए अपने ग्रन्थ को नष्ट कर दिया।[21]

दोनों ही ग्रन्थों में शौनक के मत उद्धृत किए गए हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र के अन्त में शौनक को नमस्कार किया गया है। अतः दोनों ही ग्रन्थों का कर्त्ता एक ही व्यक्ति प्रतीत होता है। इस बात का कोई भी ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि दोनों ग्रन्थों के रचयिता अलग-अलग

व्यक्ति हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र का प्रथम सूत्र इस प्रकार है—'उक्तानि वैतानिकानि गृह्याणि वक्ष्याम।' इस सूत्र मे यह स्पष्ट हो जाता है कि आश्वलायन श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र एक ही ग्रन्थ के भाग हैं अत इनका रचयिता एक ही व्यक्ति होना चाहिए।[22] डॉ० रागोपालन ने भी सभी पक्षो पर विचार करके यही निष्कर्ष निकाला है कि ये दोनो सूत्र आश्वलायन की ही कृति है।[23]

आश्वलायन श्रौतसूत्र का वर्ण्य विषय

आश्वलायन श्रौतसूत्र म कुल बारह अध्याय हैं जो छह-छह अध्यायो के दो भागो मे बटा हुआ है। प्रथम भाग को पूर्व षट्क तथा द्वितीय भाग को उत्तर षट्क नामो स जाना जाता है। इस सूत्र मे मुख्य रूप से 'होतृ' के कार्यो पर प्रकाश डाला गया हैं परन्तु अध्वर्यु आदि अन्य याज्ञिको के कार्यो का भी उल्लेख है। अग्निहोत्र, पिण्डपितृयज्ञ आदि यज्ञो म होतृ का कोई कार्य नही होता तो भी इन विषयो को लिया गया है। प्रथम छह अध्यायो मे दर्श-पूर्णमास यज्ञो मे होतृ के कार्यों का विवरण है।[24] सप्तम तथा अष्टम अध्यायो मे प्रायश्चित्त, सत्र, गवा आयन आदि यज्ञो का वर्णन है। नौ से बारह अध्याय तक 'अहीन' तथा सत्र यज्ञो का वणन है।

आश्वलायन श्रौतसूत्र तथा अन्य ग्रन्थों का सबध

आश्वलायन श्रौतसूत्र का सबध किसी एक ब्राह्मण से नही है। यद्यपि आ० श्रौ० सू० म ऐतरेय ब्राह्मण के अनुयायियों के मत उद्धृत हैं तथा ऐतरेय ब्राह्मण से बहुत कुछ ग्रहण भी किया गया है। परन्तु इस आधार पर यह कहना कठिन है कि इस सूत्र का सबध ऐतरेय ब्राह्मण से है। आश्वलायन ऐतरेय शाखा का अनुयायी नही था, इस पक्ष म अनक तर्क दिए जाते हैं[25] जिनम से कुछ प्रमुख तर्क इस प्रकार हैं—

1 ऐतरेय शाखा के मत का खण्डन करने के लिए एक स्थान पर (III, 6 3 8) गाणगारि का मत दिया गया है।
2 ऐतरेय ब्राह्मण म ऋग्वेद से भिन्न जिन मन्त्रो को प्रतीको से दिया गया है, आ० श्रौ० सू० मे उन्हे सम्पूर्ण रूप मे दिया गया है।
3 आ० श्रौ० सू० मे अनक ऐसे नाम आए हैं जो ऐतरेय ब्राह्मण मे नहीं है।
4 आ० श्रौ० सू० मे ऐसे अनक यज्ञों का वर्णन किया गया है जो ऐतरेय ब्राह्मण म नही हैं। उदाहरणतया आ० श्रौ० सू० के अध्याय 9-12 म जिन अहीन तथा सत्र यज्ञो का वर्णन किया गया है, उनका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण म नही है। परन्तु आ० श्रौ० सूत्र के कुछ विषय ऐसे हैं जो ऐतरेय ब्राह्मण मे वर्णित

विषयों में ज्यों की त्यों मिलते हैं। उदाहरणतया ऐतरेय ब्राह्मण के पशु-यज्ञ (7 1) संबंधी तथ्य आश्वलायन श्रौतसूत्र के (12.9) तथ्यों से मिलते हैं। आ० श्रौ० सू० में वर्णित शुनःशेप की कथा (आ० श्रौ० सू० 9 3 9 14) ऐतरेय ब्राह्मण (7 18) से ज्यों की त्यों मिलती है। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित प्रायश्चित्त (7 2 12) आ० श्रौ० सू० में वर्णित प्रायश्चित्तों से मिलते हैं। कीथ ऐतरेय ब्राह्मण को आश्वलायन श्रौ० सू० से बाद का मानते हैं और उनके अनुसार आ० श्रौ० सू० से ही ऐतरेय ब्राह्मण ने उधार लिया है।[23] परन्तु किसी ठोस प्रमाण के अभाव में यह तथ्य मान्य नहीं है। सम्भव है दोनों ही ग्रन्थों ने किसी अन्य स्रोत से ग्रहण किया हो।

आ० श्रौ० सू० में अनेक ऐसे स्थल हैं जो कौषीतकी ब्राह्मण से उधार लिये प्रतीत होते हैं। इस सूत्र में अनेक आचार्यों जैसे आलेखन आश्मरथ्य कौत्स, गाणगारि गौतम, शाट्यायन, शौनक, तौल्वलि आदि के मत दिए गए हैं।

आश्वलायन श्रौतसूत्र तथा शाखायन श्रौ० सू० का सम्बन्ध

दोनों सूत्र ऋग्वेद से सम्बन्धित होने के कारण परस्पर सम्बद्ध हैं परन्तु दोनों पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र शाखाओं का अनुकरण करते हैं। आ० श्रौ० सू० का सम्बन्ध शाकल शाखा से तथा शा० श्रौ० सू० का संबंध शाखायन शाखा से माना जाता है। परन्तु जे० गोंडा का मत है कि शाखायन श्रौ० सू० का संबंध बाष्कल शाखा से है। जैसा कि ऊपर कहा गया है आ०श्रौ० सूत्र भी शाकल शाखा के अतिरिक्त बाष्कल शाखा से ग्रहण करता है।

दोनों सूत्रों में से पहला कौन-सा है यह कहना बहुत कठिन है। परन्तु रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से आश्वलायन श्रौ० सू० पूर्व का प्रतीत होता है क्योंकि इसमें विषय-वस्तु उतनी व्यवस्थित नहीं है जितनी शा० श्रौ० सूत्र में। भाषा भी आश्वलायन श्रौ० सू० की प्राचीन प्रतीत होती है और ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा के समान है।

आश्वलायन का काल

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, षड्गुरुशिष्य के अनुसार आश्वलायन शौनक का शिष्य था। आ० श्रौ० तथा आ० गृ० सू० में शौनक के मत भी अनेक बार उद्धृत किए गए हैं और आ० गृ० सू० में शौनक को नमस्कार किया गया है। शौनक को परम्परा से 'बृहद्देवता' नामक ग्रन्थ का रचयिता माना जाता है। परन्तु विद्वानों का मत है कि बृहद्देवता शौनक की परम्परा के किसी शिष्य द्वारा रचित है जो शौनक से बहुत बाद का नहीं था।

बृहद्देवता में यास्क तथा उसके निरुक्त का नामोल्लेख है परन्तु कात्यायन तथा उसके ग्रन्थ सर्वानुक्रमणी का उल्लेख नहीं है। मैक्डोनल के अनुसार यह कात्यायन पाणिनि से पूर्ववर्ती था क्योंकि सर्वानुक्रमणी में अनेक अपाणिनीय शब्द रूप मिलते हैं।[26] इसलिए बृहद्देवता का काल यास्क और पाणिनि के बीच कहीं होना चाहिए। बृहद्देवता में आश्वलायन के नाम का भी उल्लेख है। इसलिए *आश्वलायन इससे पूर्व ही माना जाना चाहिए। अतः आश्वलायन* निश्चित रूप से 500 या 600 शताब्दी पूर्व ही होना चाहिए।

2 शुक्ल यजुर्वेदीय श्रौतसूत्र

शुक्ल यजुर्वेद का केवल एक ही श्रौतसूत्र उपलब्ध है—कात्यायन श्रौतसूत्र।

कात्यायन श्रौतसूत्र

कात्यायन श्रौतसूत्र शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा से सम्बन्धित है क्योंकि इस शाखा के मन्त्रों को प्रतीकों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है जब कि शुक्ल यजुर्वेद की काण्व शाखा सहित अन्य वेदों के मन्त्रों को पूर्ण रूप में दिया गया है। इस श्रौतसूत्र में वर्णित यज्ञों का क्रम भी माध्यन्दिनी शाखा के अनुरूप है। कात्यायन श्रौतसूत्र में प्रतीक द्वारा निर्दिष्ट केवल एक मन्त्र (9.11 20) ऐसा है जो तैत्तिरीय संहिता (3.2 51) (कृष्ण यजुर्वेद) से सम्बन्धित है। इसका अर्थ यह नहीं कि इस मन्त्र के द्वारा इस सूत्र का सम्बन्ध तैत्तिरीय संहिता से जोड़ा जा सकता है। सम्भवतः यह मन्त्र उस काल में बहुत लोकप्रिय और प्रचलित हो। यह भी सम्भव है कि शुक्ल यजुर्वेदीय शाखा में भी यह मन्त्र प्रचलन में रहा हो।

इस श्रौतसूत्र के रचयिता परम्परा द्वारा कात्यायन माने जाते हैं। श्रीदेवकृत व्याख्या में अध्याय के अन्त में कात्यायन ही इस सूत्र का रचयिता कहा गया है—'इति श्रीयाज्ञिकदेवकृताया कात्यायनसूत्रपद्धतौ आदिमोऽध्यायः समाप्त।' श्रौतसूत्र के अध्याय की समाप्ति में इसे कातीय श्रौतसूत्र कहा गया है—'इति कातीये श्रौतसूत्रे प्रथमोऽध्यायः।' 'कात' शब्द कात्यायन का ही संक्षिप्त रूप प्रतीत होता है।

ये कात्यायन कौन थे, यह एक जटिल प्रश्न बना हुआ है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में कात्यायन का नाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। कात्यायन के नाम से अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं। कात्यायन के नाम से श्रौतसूत्र के अतिरिक्त, सर्वानुक्रमणी, वाजसनेयी प्रातिशाख्य, पाणिनि की अष्टाध्यायी पर वार्तिक तथा स्वर्गारोहण काव्य प्रचलित हैं। क्या इन सभी ग्रन्थों के रचयिता एक ही कात्यायन थे अथवा पृथक्-

पृथक् यह एक विवाद का विषय बना हुआ है।

कात्यायन के अनेक पर्यायवाची नाम भी प्रचलित रहे हैं। पतंजलि ने कात्य, कात्यायन तथा वररुचि नामों को एक ही व्यक्ति के लिए प्रयोग किया है।[27] पुरुषोत्तम देव ने कात्यायन के पांच नाम बताए हैं—मेधाजित, कात्य, कात्यायन, पुनर्वसु तथा वररुचि।[23] हेमचन्द्र ने भी कात्यायन के पर्यायवाची शब्द वररुचि मेधाजित तथा पुनर्वसु गिनाए हैं।[23]

कात्यायन के विषय में भारतीय परम्परा से जो सूचनाएं प्राप्त होती हैं उसमें कात्यायन के काल तथा उनके एक या अनेक होने के विषय में अनेक भ्रान्तियां व्याप्त हैं। सोमदेव ने कथासरित्सागर में कात्यायन को पाणिनि का समकालीन तथा व्याकरण विषय में उनका प्रतिद्वन्द्वी माना है। उन्हें पाटलिपुत्र के राजा नन्द का बाद में योगानन्द नाम से मन्त्रित्व स्वीकार किया यह भी बताया गया है।

स्कन्द पुराण में वेद सूत्र के रचयिता कात्यायन को याज्ञवल्क्य का पुत्र बताया गया है।[30] कात्यायन यज्ञविद्या में निपुण था। वररुचि उसका ज्येष्ठ पुत्र था।[31]

प्रतिज्ञा-परिशिष्ट के भाष्यकार अनन्तदेव याज्ञिक के अनुसार कात्यायन ने कल्पसूत्रों के साथ-साथ अठारह परिशिष्टों की रचना की जो इस प्रकार हैं—

1 यूपलक्षण 2 छागलक्षण 3 प्रतिज्ञा, 4 अनुवाकसंख्या, 5 चरणव्यूह, 6 श्राद्धकल्प, 7 शुल्ब, 8 ऋग्यजुष, 9 पार्षद, 10 इष्टकापूरण, 11 प्रवराध्याय, 12 मूलाध्याय 13 उक्थशास्त्र, 14 निगम, 15 यज्ञपार्श्व, 16 होत्रिक, 17 प्रसवोत्थान, 18 कूर्मलक्षण।[32]

सर्वानुक्रमणी के भाष्यकार षड्गुरुशिष्य के अनुसार कात्यायन शौनक तथा आश्वलायन की शिष्य परम्परा में थे। शौनक के शिष्य आश्वलायन ने ज्ञान प्राप्त करके कात्यायन ने सूत्र की रचना की।[33] शौनक ने दस ग्रन्थों की रचना की तथा आश्वलायन ने तीन ग्रन्थों की रचना की। इस तरह ग्रन्थों को पढ़कर कात्यायन ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जैसे—वाजसनेयि-सूत्र, सामवेद के उपग्रन्थ स्मृति, भ्राज श्लोक, अथर्ववेद की ब्राह्मकारिकाएं, पाणिनीय व्याकरण पर वार्तिक तथा सर्वानुक्रमणी।[34]

समुद्रगुप्त द्वारा रचित माने गए 'कृष्णचरित' में कात्यायन को न केवल *पाणिनीय व्याकरण पर वार्तिकों का रचयिता अपितु 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य का* रचयिता भी माना गया है। यह काव्य बहुत ही सुन्दर बताया गया है तथा कात्यायन को कविकर्मदक्ष कहा गया है।[35]

उपर्युक्त विवरण से इतना स्पष्ट है कि कात्यायन नाम से अनेक ग्रन्थ प्रचलित रहे हैं। परन्तु इन सब ग्रन्थों के रचयिता एक ही कात्यायन हैं, यह एक

विवाद का विषय है। परम्परागत विवरणो स इन सब ग्रन्थो के रचयिता एक ही कात्यायन हैं। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से परम्परा पर इतना विश्वास नही किया जा सकता क्योकि विभिन्न कालो मे लिखे गए अनेक ग्रन्थो को किसी एक ही व्यक्ति का मानना भारतीय परम्परा म प्राय प्रचलित रहा है, जैस भिन्न कालो म लिखे गए पुराण और महाभारत का रचयिता एक व्यक्ति व्यास ही माना गया है। यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि एक ही वश परम्परा के अनेक व्यक्तियों को एक ही वश-नाम से पुकारा जाता रहा है, इसी कारण भ्रम वश भिन्न व्यक्तियो को एक ही व्यक्ति मान लिया जाता है। कात्यायन के विषय मे भी ऐसा ही प्रतीत होता है।

मैक्समूलर न एक ही कात्यायन माना है। उसने सोमदेव कृत कथा-सरित्सागर पर विश्वास करके कात्यायन को पाणिनि का समकालीन मानकर उसका काल 350 ई० पूव माना है। वेबर[36] और मैक्डानल[37] दो कात्यायन मानत है। उनक अनुसार वाजसनेयि प्रातिशाख्य, सर्वानुक्रमणी तथा श्रौतसूत्र के रचयिता वार्त्तिककार कात्यायन स भिन्न तथा पूर्ववर्ती है तथा प्रथम कात्यायन का काल चतुर्थ शताब्दी ई० पूर्व का अर्ध भाग है। उनके कालनिर्णय का आधार उनकी यह धारणा है कि वाजसनेयि प्रातिशाख्य तथा अन्य सभी प्रातिशाख्य पाणिनि से पूर्ववर्ती हैं। परन्तु गोल्डुस्टकर का मत इनसे भिन्न है। उसके अनुसार वाजसनेयि प्रातिशाख्य तथा वार्त्तिको के रचयिता एक ही कात्यायन थे और पाणिनि से उत्तरवर्ती थे। डॉ० कमला प्रसाद सिंह न सभी विद्वानो के मत का समाहार करके यह निष्कर्ष निकाला है कि परिशिष्टो, प्रातिशाख्य, श्रौतसूत्र, सर्वानुक्रमणी तथा वार्त्तिको के रचयिता एक ही कात्यायन थे और उसका काल चतुर्थ शताब्दी का अर्ध भाग है।

परन्तु सभी ग्रन्थो क रचयिता एक ही कात्यायन मानना उचित प्रतीत नही होता। पाणिनि के व्याकरण पर वार्त्तिक लिखकर प्रातिशाख्य लिखना और पाणिनि का उल्लेख न करना असगत लगता है। वाजसनयि प्रातिशाख्य म व्याडि, गार्ग्य, शाकटायन, शाकल्य आदि आचार्यों के मत दिए गए है परन्तु पाणिनि का उल्लेख कहीं भी नही है। अपरञ्च वाजसनयि प्रातिशाख्य म गुण आदि नियमो के लिए कई सूत्र दिए गए हैं जिनके लिए पाणिनि का केवल एक ही सूत्र मिलता है। पाणिनि के व्याकरण से इतना सुपरिचित होकर उसके नियमो का उल्लेख न करना अथवा उनका ध्यान न रखना उचित प्रतीत नही होता।

अधिक सगत यह बात प्रतीत होती है कि याज्ञिक कात्यायन वार्तिककार कात्यायन से भिन्न थ। याज्ञिक कात्यायन न वैदिक साहित्य यथा श्रौतसूत्र, परिशिष्ट, सर्वानुक्रमणी, वाजसनयि प्रातिशाख्य ग्रन्थो की रचना की जबकि दूसरा कात्यायन पूर्ववर्ती कात्यायन का वशज था तथा उसने पाणिनि के व्याकरण पर

वार्तिक लिखे।

पूर्ववर्ती कात्यायन का काल पाणिनि से कुछ पूर्व का ही रहा होगा।

कात्यायन श्रौतसूत्र में कुल 26 अध्याय हैं जिनमें 230 कण्डिकाएं हैं। यह श्रौतसूत्र विषय की दृष्टि से व्यापक तथा व्यवस्थित है। इसमें अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास पिण्डपितृ यज्ञ, दाक्षायण, आग्रहायण, अन्वारम्भ, पुनराधेय, चातुर्मास्य, निरूढ, पशुबन्ध अग्निष्टोम, द्वादशाह, गवाम्-अयन, वाजपेय, राजसूय, अग्निचयन, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध, एकाह-यज्ञ, अहीन-यज्ञ, सत्र, प्रवर्ग्य यज्ञों का वर्णन है।

इस श्रौतसूत्र में सबसे पहले यज्ञ के अधिकारी व्यक्तियों का वर्णन किया है। उपर्युक्त श्रौतसूत्रों में इस प्रकार का वर्णन नहीं है। इस श्रौतसूत्र के अनुसार अंगहीन, अश्रोत्रिय नपुंसक तथा शूद्रों को यज्ञ का अधिकार नहीं था।[38] ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के साथ स्त्री को भी यज्ञ का अधिकार था।[39] इस श्रौतसूत्र में अन्य श्रौतसूत्रों की अपेक्षा विषय को अधिक स्पष्टतया समझाने का प्रयत्न किया गया है। यज्ञ और होम में अन्तर बताया है।[40]

कात्यायन श्रौतसूत्र मुख्य रूप से शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के शतपथ ब्राह्मण पर आधारित है। कात्यायन श्रौतसूत्र के अध्याय 2-18 तक शतपथ ब्राह्मण के प्रथम नौ काण्डों पर आधारित हैं। अध्याय 19 तथा 25 बारहवें काण्ड पर तथा 20 तथा 21 तेरहवें काण्ड पर आधारित हैं। 26वां अध्याय 14वें काण्ड पर आधारित है। शतपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त ताण्ड्य महाब्राह्मण से भी कात्यायन श्रौतसूत्र में ग्रहण किया गया है। का० श्रौ० सू० के अध्याय 22-24 ताण्ड्य महाब्राह्मण के अध्याय 16-25 पर आधारित हैं।[41]

कात्यायन श्रौतसूत्र में शतपथ ब्राह्मण का अन्धानुकरण नहीं किया गया है। केवल यज्ञ से सम्बन्धित भाग को ही ग्रहण किया गया है। का० श्रौ० सू० में ऐसे भी अनेक सूत्र हैं जो उपर्युक्त किसी भी ब्राह्मण पर आधारित नहीं हैं। कहीं-कहीं शतपथ ब्राह्मण से मतभेद भी दिखाई देता है। उदाहरणतया परिस्रुत के क्रयण के साथ कात्यायन श्रौ० सू० में द्रव्यों का क्रयण भी बताया गया है जबकि शतपथ ब्राह्मण में द्रव्यों के क्रयण का विधान नहीं है—

कात्यायन श्रौ० सू०	शतपथ ब्राह्मण
सोमात् क्रीयमाणान् महित दक्षिणतः	अथ यत्र राजानं क्रीणाति
सीसेन परिस्रुतः क्रयणं केशवात्।	तद्दक्षिणतः प्रतिवेशतः केशवात्पुरुषात्
तद्द्रव्याणां।[42]	सीसेन परिस्रुतः क्रीणाति।[43]

कात्यायन श्रौतसूत्र में अनेक आचार्यों के मत दिए गए हैं जैसे— कार्ष्णाजिनि, बादरि, काशकृत्स्नि, जातुकर्ण्य, भारद्वाज, लौगाक्षि तथा वात्स्य।

कात्यायन श्रौतसूत्र तथा जैमिनि के पूर्वमीमासा सूत्र म कही कही बहुत अधिक समानता दिखाई देती है। इस कारण से कुछ विद्वान् कात्यायन श्रौतसूत्र को पूर्वमीमासा सूत्र के बाद का मानत हैं।[44] परन्तु अन्य विद्वान् यह मानत हैं कि दोनो ही ग्रन्थो ने किसी पूर्ववर्ती ग्रन्थ स ग्रहण किया है जिसस दोनो मे समानता प्रतीत होती है। कुछ विद्वानो का मत ह कि पूर्वमीमासा सूत्र कात्यायन श्रौतसूत्र स बाद का है क्योकि पूर्वमीमासा सूत्र मे अनेक स्थल ऐसे हैं जो बाद की विचारधारा के परिचायक माने जा सकते हैं। पूर्वमीमासा सूत्र म स्मृति ग्रन्थो से भी उद्धरण दिए गए हैं जो निश्चित रूप से श्रौतसूत्र स बाद के हैं।[45]

कात्यायन श्रौतसूत्र पर कर्काचार्य का भाष्य, श्रीदेवकृत व्याख्या और पद्धति नामक टीकाए है। श्रीदेव के गुरु श्रीपति थे तथा उनके पिता का नाम प्रजापति था। श्रीदेव से पूर्व का० श्रौ० सू० के और भी भाष्य विद्यमान थे, यह बात उनके इस उल्लेख से स्पष्ट है—

> प्रजायतेस्तनूजोऽह कुर्वे व्याख्यामिमा स्फुटम्।
> जयन्ति ते गुरोवन्द्या श्रीपत पादपासव।
> येषा प्रसादादज्ञोऽपि चापल कर्तुमुद्यत।
> आलोच्य सूत्रभाष्यादि क्रियते संग्रहो यत॥

3 कृष्ण यजुर्वेद के श्रौतसूत्र

कृष्ण यजुर्वेद की केवल दो सहिताओ स सम्बन्धित श्रौतसूत्र उपलब्ध हुए है—तैत्तिरीय सहिता तथा मैत्रायणी सहिता। काठक सहिता स सम्बन्धित श्रौतसूत्र का उल्लेख मात्र है परन्तु वह प्राप्त नही हुआ है। प्रत्यक शाखा स सम्बन्धित श्रौतसूत्रो का वर्णन इस प्रकार है।

तैत्तिरीय सहिता के श्रौतसूत्र

तैत्तिरीय सहिता के कल्पसूत्र सख्या मे सबसे अधिक तथा विषय म सबस विस्तृत तथा व्यवस्थित हैं। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के छ कल्पसूत्र उपलब्ध हैं—1 बोधायन, 2 भारद्वाज, 3 आपस्तम्ब, 4. सत्याषाढ हिरण्यकेशी, 5 वैखानस तथा 6 वाधूल। इनमे से बोधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी तथा वैखानस अपने सभी अगो सहित विद्यमान हैं। हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र पर अपनी वैजयन्ती टीका के प्रारम्भ म महादेव न इसी क्रम स इन सूत्रकारो क प्रति सम्मान प्रकट किया है। बोधायन धर्मसूत्र के तर्पण प्रकरण (II 5 9 14) म तीन सूत्रकारो का क्रम इस प्रकार ह काण्व बोधायन, आपस्तम्ब तथा सत्याषाढ हिरण्यकशी।

बौधायन श्रौतसूत्र

तैत्तिरीय संहिता से सम्बन्धित यह श्रौतसूत्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और सम्भवतः सबसे अधिक प्राचीन है। वर्तमान बौधायन श्रौतसूत्र में 30 अध्याय हैं। इसमें क्रमश: दर्शपूर्णमास (अध्याय 1) अग्न्याधेय (2) दशाध्यायिक, (पुनराधेय, अग्निहोत्र आदि—3) पशुबन्ध (4) चातुर्मास्य (5) अग्निष्टोम (6 8) प्रवर्ग्य (9) अग्निचयन (10) वाजपेय (11) राजसूय (12) इष्टिकल्प (13) औपानुवाक्य (14) अश्वमेध (15) द्वादशाह (16) उत्तगतनि (अतिरात्र, एकाह आदि 17-18) काठक सूत्र (19) द्वैध (20 23) कर्मान्त (24-26) प्रायश्चित्त (28-29) शुल्बसूत्र (30) विषयों का विवेचन किया गया है।

विद्वज्जनों का विचार है कि यह सूत्र पूर्ण रूप से एक ही समय और एक ही व्यक्ति द्वारा नहीं लिखा गया है। द्वैधसूत्र (अध्याय 20-23) और कर्मान्तसूत्र (24-26) को तो निश्चित रूप से बाद में जोड़ा गया माना जाता है।[16] इसके पक्ष में मुख्य तर्क यह कि द्वैधसूत्र बौधायन श्रौ० सू० के अन्य अध्यायों से भिन्न रीति से लिखा गया है। द्वैधसूत्र में एक ही विषय पर भिन्न भिन्न आचार्यों के मत प्रकट किए हैं जबकि अन्य अध्यायों में केवल बौधायन का ही मत दिया गया है। कर्मान्तसूत्र एक प्रकार से परिशिष्ट है। इनमें उन विषयों को लिया गया है जिनका पूर्ण विवेचन मुख्य सूत्र में नहीं हो सका है।

यह सूत्र विषय की दृष्टि से सम्यक् व्यवस्थित नहीं है। विषयों का उचित क्रम में नहीं रखा गया है। विषयों को अनेक स्थानों पर इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है जैसे कि उनका उल्लेख हो चुका है, जबकि उनका उल्लेख बाद में हुआ है। विषय क्रम अन्य श्रौतसूत्रों से भिन्न भी है।

यह सूत्र पूर्ण भी प्रतीत नहीं होता है। भाष्यकार भावस्वामी के मतानुसार इस सूत्र में से 'कौकिली सौत्रामणी' यज्ञ का प्रकरण लुप्त हो गया है और बौधायन परम्परा के अनुयायी इस यज्ञ को आपस्तम्बीय परम्परा का अनुकरण करके सम्पन्न करते हैं।[17]

इस सूत्र की एक विशेषता यह है कि इस सूत्र में उपजीव्य संहिता के मन्त्रों को प्रतीकों के द्वारा उद्धृत न करके पूर्ण रूप में उद्धृत किया गया है। इस सूत्र का तैत्तिरीय संहिता के साथ सबंध इस बात से सिद्ध होता है कि इस सूत्र में तैत्तिरीय संहिता का पूर्णरूपेण अनुकरण किया गया है। इस सूत्र में तैत्तिरीय संहिता और तैत्तिरीय ब्राह्मण से मन्त्र और गद्य भाग ज्यों के त्यों उद्धृत किए गए हैं। उद्धृत करते समय 'इति ब्राह्मणम्', 'अथ वै ब्राह्मण भवति', 'यथाम्नातम्' आदि पदों का प्रयोग किया गया है।

बौधायन श्रौतसूत्र में उपर्युक्त संहिता और ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों

स भी उद्धरण लिये गये हैं। छान्दोग्य ब्राह्मण (11 2) छागनेय ब्राह्मण (23 5) पैंगलायनी ब्राह्मण (11 7) मैत्रायणीय ब्राह्मण (30 6) आदि ग्रन्थो का स्पष्ट उल्लेख है। बौ० श्रौ० सू० का उन्नीसवा अध्याय काठक सून नाम से प्रसिद्ध है। इसमे चयन' यज्ञो का विधान काठक शाखा के नियमो के अनुसार है। काण्व शाखा से भी इस सूत्र का सम्ब ध है। बौधायन का सर्वत्र काण्व बौधायन कहा गया है। अन्य वैदिक ग्रन्थो का भी प्रभाव इस सूत्र म परिलक्षित होता है।[48]

इस सूत्र की एक विशेषता यह है कि इसम स्वय बौधायन का नामोल्लेख भी कई स्थानो पर हुआ है (बौ० श्रौ० सू० 4 11, 11 2 आदि)। यह नाम कही-कही बोधायन भी मिलता है। परन्तु कुछ विद्वानो का मत है कि बौधायन नाम ही शुद्ध है। यह भी सम्भव है कि बौधायन किसी बोधायन नाम के आचार्य का शिष्य हो। बौधायन गृह्यसूत्र[49] के तर्पण प्रकरण म प्रवचनकार के रूप म कण्व बोधायन इस नाम स स्मरण किया गया है जबकि आपस्तम्ब का सूत्रकार के रूप म स्मरण किया गया ह। इसस प्रतीत होता है कि 'कण्व बोधायन' और 'काण्व बौधायन' दो भिन्न व्यक्ति हो। बोधायन प्रवचन कर्ता हो और उसका शिष्य बौधायन सूत्रकार हो।[50] डॉ० रामगोपाल दोना ही नामो को एक ही व्यक्ति से सम्बन्धित मानते हैं।[51]

बौधायन श्रौतसूत्र म सक्षिप्तता पर विशेष बल नही दिया गया है। ठीक प्रवचनकार की शैली म ही विषयो की व्याख्या करके उन्हे स्पष्ट किया गया है। अनेक स्थल ब्राह्मण शैली से मिलते जुलते हैं। इस सूत्र न मिथकीय कथाओ जैसे पुरुरवा और उर्वशी की कथा (18,44 45)[52] ऋतुपर्ण की कथा (18 13)[53] का भी समावेश है।

इस श्रौ० सू० म जिन आचार्यों के मतो का उल्लेख किया गया है उनम प्रमुख है—आत्रेय, औपमन्यव, कात्य, कात्यायन, गौतम आदि।

बौधायन श्रौतसूत्र पर भावस्वामी का भाष्य है।

भारद्वाज श्रौतसूत्र

बौधायन के पश्चात् तैत्तिरीय सहिता से सम्बन्धित श्रौतसूत्रो म भारद्वाज श्रौतसूत्र का नाम है। भारद्वाज, आपस्तम्ब तथा सत्याषाढ हिरण्यकेशिन् इन तीनों का एक वर्ग है क्योकि इनके श्रौतसूत्रो में परस्पर समानताए हैं जो इन तीनो के परस्पर सम्बन्ध को प्रकट करती हैं।

भारद्वाज श्रौतसूत्र अपन पूर्णरूप म उपलब्ध नही है। इसक वर्तमान प्रकाशित रूप म 15 प्रश्न हैं। प्रत्यक प्रश्न के उपभाग है जिन्ह कण्डिका या अध्याय कहा जा सकता है। पहल चार प्रश्ना म दर्शपूर्णमास पचम म अग्न्याधेय, छठ म अग्निहोत्र और आग्रयण सप्तम म पशुबन्ध, अष्टम म चातुर्मास्य, नवम म प्रायश्चित्त तथा 10-15 म ज्योतिष्टोम यज्ञो का वर्णन है।

अनेक प्रमाणों से इस बात की पुष्टि होती है कि भारद्वाज श्रौतसूत्र में और भी विषय वर्णित थे जो अभी उपलब्ध नहीं हो पाए हैं। उपलब्ध श्रौतसूत्र में अश्वमेध, राजसूय तथा वाजपेय जैसे महत्त्वपूर्ण यज्ञों का उल्लेख नहीं है। परन्तु राजसूय यज्ञ का वर्णन भारद्वाज श्रौ० सू० में किया गया था, इसका ज्ञान भा० श्रौ० सू० के ही इस सूत्र से होता है—

तथा राजसूय एव कल्पा व्याख्यातोऽन्यत्र
हविर्ग्रहणाद्वेदनाग्मुखविमार्जनादिति ।[14]

भारद्वाज श्रौ० सू० के टीकाकारों ने इस सूत्र के अनेक उद्धरण दिए हैं जो वर्तमान श्रौ० सू० में उपलब्ध नहीं हैं। टीकाकारों के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इसमें वैकल्पिक पशु यज्ञ, प्रायश्चित्त, अश्वमेध तथा सामसत्र विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण यज्ञ—दाशपात्र यज्ञ—जो दक्षिण में प्रचलित था इस श्रौ० सू० में विद्यमान था परन्तु आज उपलब्ध नहीं है।

इस सूत्र का रचयिता भरद्वाज था या भारद्वाज इस विषय में मतभेद हैं। भारद्वाज गृह्यसूत्र (3.11) में भरद्वाज नाम दिया गया है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के टीकाकार धूर्तस्वामी ने भी भरद्वाज नाम दिया है परन्तु अन्य कुछ टीकाओं में भारद्वाज नाम दिया गया है। भरद्वाज या भारद्वाज गोत्र-परम्परा का द्योतक है और इसी परम्परा के किसी व्यक्ति ने यह ग्रन्थ लिखा है।

भारद्वाज श्रौतसूत्र में यज्ञों का विवेचन बौधायन श्रौ० सू० की तुलना में संक्षिप्त है। बौधायन श्रौ० सू० से इस श्रौतसूत्र की एक भिन्नता यह है कि जहां बौधायन श्रौतसूत्र में तै० संहिता के मन्त्र पूर्ण रूप में दिए गए हैं वहां भा० श्रौ० सूत्र में तै० सं० के मन्त्र अन्य सूत्रों की भांति प्रतीकों में दिए गए हैं। अन्य सूत्रों में कार्य निर्देश करके वहां विनियुक्त होने वाला मन्त्र दिया गया है, परन्तु भारद्वाज श्रौ० सू० में मन्त्र पहले है, कार्य निर्देश बाद में।

भारद्वाज श्रौतसूत्र में तैत्तिरीय संहिता के अतिरिक्त यजुर्वेद की अन्य शाखाओं से भी उद्धरण ग्रहण किए गए हैं। मैत्रायणी संहिता से 40 तथा काठकसंहिता से भी लगभग इतने ही तथा वाजसनेयि-संहिता से लगभग 20 मन्त्र ग्रहण किए गए हैं।[15] इनके अतिरिक्त ऋग्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, कौषीतकी ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण आदि ग्रन्थों से भी उद्धरण लिए गए हैं। परन्तु नाम केवल कौषीतकी ब्राह्मण का ही दिया गया है (10 1 8 सदस्य महर्त्विज पंचम कौषीतकिनः समामनन्ति।) भारद्वाज श्रौतसूत्र में आश्मरथ्य तथा आलेखन के मतों को बार-बार दिया गया है। ये दोनों व्यक्ति यज्ञ-विषय के प्रमुख विद्वान् थे, इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि इनका नामोल्लेख सूत्र-साहित्य में बहुत अधिक हुआ है, जैसा कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट है—

भारद्वाज श्रौतसूत्र 28 बार

भारद्वाज परिशेष सूत्र	9 बार
भारद्वाज गृह्य सूत्र	1 बार
आपस्तम्ब श्रौतसूत्र	18 बार
आ० श्रौ० सू० पर रुद्रदत्त की टीका मे	21 बार
आश्वलायन श्रौ० सू०	2 बार
अथर्वप्रायश्चित्तानि	2 बार
सत्याषाढ सूत्र पर महादेव टीका मे	1 बार

इनके अतिरिक्त औडुलोमि तथा बादरायण का नाम भी एक एक बार मिलता है। 'एकम्', 'एके', 'विज्ञायते' आदि निर्देशों से अनेक मत भारद्वाज श्रौतसूत्र तथा बौ० श्रौ० सू० मे दिए गए हैं।[56]

भारद्वाज श्रौतसूत्र तथा बौधायन श्रौतसूत्र

दोनो ही श्रौतसूत्र यद्यपि एक ही संहिता से सम्बन्धित हैं परन्तु दोनो मे कुछ मूलभूत अन्तर हैं। बौ० श्रौ० सू० मे तै० सं० के मन्त्र पूर्णरूप मे दिए हैं परन्तु भा० श्रौ० सू० मे ये मन्त्र प्रतीकों के द्वारा दिए गए हैं। बौ० श्रौ० सू० मे जहा यज्ञों का विस्तार से वर्णन किया गया है, वहा भा० श्रौ० सू० मे संक्षिप्त विवरण है। यज्ञ सम्बन्धी विषयो के विवरण मे भी भिन्नता है। बौधायन श्रौतसूत्र के द्वैधसूत्र मे जिन व्यक्तियो के मत दिए गए हैं उनमे से किसी का भी उल्लेख भारद्वाज श्रौतसूत्र मे नही है। इससे प्रतीत होता है कि भारद्वाज श्रौतसूत्र तथा बौधायन श्रौतसूत्र एक शाखा से सम्बन्धित होते हुए भी एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं।

भारद्वाज श्रौतसूत्र तथा आपस्तम्ब

भा० श्रौ० सू० तथा आ० श्रौ० सू० मे परस्पर अत्यधिक समानता है। यज्ञो के विवरण दोनो म समान है। सूत्र भी परस्पर मिलत-जुलत ह। उनकी सख्या तथा क्रम भी मिलते-जुलते हैं।[57] भारद्वाज श्रौतसूत्र आपस्तम्ब के सूत्र से पूर्ववर्ती प्रतीत होता है और आपस्तम्ब पूर्वसूत्र पर आश्रित ह।

भारद्वाज पितृमेधिक सूत्र तथा परिशेषसूत्र

भारद्वाज श्रौतसूत्र के पूरक ग्रन्थो के रूप मे भारद्वाज पितृमेधिक तथा भारद्वाज परिशेषसूत्र और उपलब्ध होत हैं। पितृमेधिक सूत्र म दो प्रश्न हैं। इसम मृतक क सस्कार जैसे श्मशान म ल जाना, चिता बनाना, अस्थिसचयन, यमयज्ञ आदि क्रियाओ का विवेचन है। परिशेष सूत्र मे कुल 222 सूत्र हैं। इनम से 64 सूत्र तो उन विषयो स सम्बन्धित हैं जिनका उल्लख मुख्य श्रौतसूत्र मे नही हुआ है। शेष सूत्र पूर्व वर्णित यज्ञो से सम्बन्धित अतिरिक्त सूचना देत हैं। परिशेष सूत्र यद्यपि बाद म जोड़ा गया है परन्तु इसे मुख्य श्रौतसूत्र के समान ही प्रामाणिकता मिली है।

सभी टीकाकारों ने परिशेष मंत्र में आए सूत्रों को भारद्वाज श्रौतसूत्र के सूत्र कहकर उद्धृत किया है।

कालक्रम की दृष्टि से भारद्वाज श्रौतसूत्र, बौधायन श्रौ० सू० के बाद का तथा आपस्तम्ब श्रौतसूत्र से पहले का है।

भारद्वाज श्रौतसूत्र का आदि स्थान

भारद्वाज श्रौतसूत्र का आदि स्थान कहां था, इस सम्बन्ध में सी० जी० काशीकर का मत है कि मूल श्रौतसूत्र उत्तर भारत में लिखा गया परन्तु बाद में भारद्वाज परिवार के लोग दक्षिण भारत की ओर चले गए।[55] इस सम्बन्ध में उनके मुख्य तर्क ये हैं—

1 भारद्वाज गृह्य सूत्र (1 2 1) में सीमन्तोन्नयन संस्कार के सबंध में निम्नलिखित श्लोक दिया गया है—

सोम एव नो राजेत्याहुर्ब्राह्मणी प्रजा ।
विवृत्तचक्रा आसीनास्तीरेण यमुने तव ॥

इस सूत्र में आगे यह कहा गया है कि यमुना के स्थान पर उस नदी का नाम दिया जाना चाहिए जिसके किनारे यज्ञ सम्पन्न हो। टीकाकार ने इसे स्पष्ट करते हुए यमुना के स्थान पर वेत्रवती तथा कावेरी नदी का नाम लिया है— यथा तीरेण वेत्रवति तव तीरेण कावेरी तव।' इससे प्रतीत होता है कि टीकाकार, जो भारद्वाज मत का अनुयायी था वेत्रवती तथा कावेरी के निकटवर्ती प्रदेश में रहता था जबकि मूल श्रौत का रचयिता यमुना के निकटवर्ती प्रदेश में रहता था।

2 आश्मरथ्य तथा आलेखन नामक विद्वानों के मत आश्वलायन भारद्वाज तथा आपस्तम्ब के श्रौतसूत्रों में अधिकांशतः मिलते हैं। आश्वलायन श्रौतसूत्र में सरस्वती, प्लाक्षप्रस्रवण, यमुना तथा कारपचव नामों का उल्लेख है जो आश्वलायन को कुरुपांचाल प्रदेश का निवासी सिद्ध करता है। इसी प्रदेश से सम्बन्धित आश्मरथ्य तथा आलेखन रहे होंगे। इसीलिए भारद्वाज तथा आपस्तम्ब का निवास भी कुरुपांचाल प्रदेश रहा होगा।

3 आपस्तम्ब और मानव श्रौतसूत्रों में बहुत समानता है। मानव श्रौतसूत्र मैत्रायणी संहिता से सम्बन्धित है और मैत्रायणी संहिता पंजाब में प्रचलित थी, इसलिए मानव श्रौतसूत्र का स्थान पंजाब में ही कहीं होगा। इसीलिए आपस्तम्ब भी इससे कहीं अधिक दूर नहीं रहा होगा। भारद्वाज श्रौतसूत्र पर मै० सं० का प्रभाव आ० श्रौ० सू० पर पड़े प्रभाव से भी अधिक है। इसलिए भारद्वाज श्रौ० सू० का स्थान पंजाब के अधिक निकट होगा। इससे सिद्ध होता है कि भारद्वाजों का स्थान उत्तर पश्चिम में था तो आपस्तम्बीयों का स्थान उत्तरपूर्व में था।

परन्तु भारद्वाज श्रौतसूत्र के दक्षिण में रचे जाने के प्रमाण भी कम नहीं हैं।

सबसे बडा प्रमाण तो यह है कि आपस्तम्बीय शाखा के लोग इस समय केवल दक्षिण भारत मे ही विद्यमान है। आपस्तम्बीय कल्प तथा भारद्वाज कल्प के हस्तलेख भी दक्षिण से ही मिले हैं। इसी आधार पर ब्यूलर, गार्बे तथा गोंडा आदि विद्वान् आपस्तम्बीय ब्राह्मणो को दक्षिण भारत का ही मानते हैं।[59] आपस्तम्बीय श्रौतसूत्र तथा भारद्वाज श्रौतसूत्र की समानता के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आपस्तम्ब यदि दक्षिण के थे तो भारद्वाज भी उनके निकटवर्ती थे। परन्तु यह विषय विवादास्पद है।[60] डॉ० रामगोपाल आपस्तम्ब को उत्तर भारत का मानते हैं।[61]

भारद्वाज श्रौतसूत्र सी० जी० काशीकर द्वारा सम्पादित वैदिक सशोधन मडल से प्रकाशित है। इसस पूर्व यह डॉ० रघुवीर द्वारा अपूर्ण रूप मे प्रकाशित किया गया था।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र

आपस्तम्ब कल्प अपन सभी चारो अगो सहित विद्यमान है। इस कल्प मे कुल 30 प्रश्न हैं श्रौतसूत्र—प्रश्न 1 से 23 तक, प्रवर एव होत्रक-प्रश्न 24, परिभाषा प्रश्न 25, गृह्यसूत्र के मन्त्र-प्रश्न 26, गृह्यसूत्र-प्रश्न 27, धर्मसूत्र-प्रश्न 28 तथा 29 तथा शुल्वसूत्र-प्रश्न 30।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र तथा इस कल्प के अन्य अग किसी एक ही व्यक्ति की रचना हैं, इस सबध म विद्वानो म मतभेद नही है। परन्तु अपन मूलरूप म यह सूत्र इसी प्रकार लिखा गया था, विद्वानो को इसम सन्देह है। प्रो० गार्बे के अनुसार आपस्तम्ब श्रौतसूत्र म अनक बातें बाद म जोडी गई हैं।[62] उनके मतानुसार समस्त 24वा प्रश्न बाद मे जोडा गया है। समस्त 24वा प्रश्न भी किसी एक व्यक्ति की रचना नही है। उनके अनुसार इस प्रश्न के दो भाग अर्थात् परिभाषा (कण्डिका 1-4) तथा प्रवर प्रकरण (कण्डिका 5-10) किसी एक व्यक्ति की रचना है, तो तृतीय भाग अर्थात् हौत्रक (कण्डिका 11-14) किसी अन्य व्यक्ति द्वारा रचित है। परन्तु डॉ० गार्बे न अपने मत की पुष्टि मे जो तर्क दिए हैं वे अधिक सबल नही हैं। उदाहरणतया उन्होने कहा है कि 'वा' के द्वारा जो सूत्र या सूत्र भाग मिलता है वह बाद म जोडा गया है। परन्तु यह युक्तियुक्त नही है। वैकल्पिक विधान तो सूत्रकार स्वय ही दे सकता था।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के तैत्तिरीय सहिता स सम्बन्धित होन मे कोई सन्देह नही है। इसम तैत्तिरीय सहिता के साथ-साथ तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक म भी ग्रहण किया गया है। प्रो० गार्बे क अनुसार 'इत्युक्तम्' कथन के द्वारा जो उद्धरण दिये गए व तैत्तिरीय सहिता से लिये गए हैं। 'इति विज्ञायत', 'यथा ब्राह्मणम्', 'यथा समाम्नानम्', वदति' आदि कथनो द्वारा जो उद्धरण दिए गए हैं

उनका संबंध तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक से है।

तैत्तिरीय संहिता के अतिरिक्त आपस्तम्ब पर अन्य शाखाओं का भी प्रभाव है। तैत्तिरीय संहिता के बाद आ० श्रौ० सू० में सबसे अधिक प्रभाव मैत्रायणी संहिता का दृष्टिगोचर होता है। लगभग 47 उद्धरण मैत्रायणी संहिता से लिये गए हैं।[63] काठक संहिता से भी कम से कम 10 उद्धरण लिये गए हैं तथा कपिष्ठल संहिता से कम से कम तीन। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा का भी प्रभाव आ० श्रौ० सू० पर स्पष्ट है। अनेक बार 'वाजसनेयकम्, तथा' 'वाजसनेयिन.' कहकर उद्धरण दिए हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के भी अनेक मन्त्र लिये हैं। आ० श्रौ० सू० ने सामवेद से अधिक मन्त्र नहीं लिए हैं परन्तु सामवेद के प्रमुख ब्राह्मण पचविंश ब्राह्मण से अनेक समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणतया, आ० श्रौ० सू 10.1 4.3, पचविंशब्राह्मण 1.1 1-4. अथर्ववेद से भी लगभग 25 उद्धरण लिये गए हैं।

आ० श्रौ० सू० में कौषीतकिन', छन्दोगब्राह्मणम्, ताण्डकम्, तण्डिनः, पालिगायनिका, पैंगायनिब्राह्मण, बह्वृचब्राह्मणम्, शाट्यायनकम्, शट्यायनि ब्राह्मण, शैलालिब्राह्मण, ककति ब्राह्मण नामों का उल्लेख है। इनमें से कई ब्राह्मण जैसे ककति ब्राह्मण, पैंगायनि ब्राह्मण आदि ऐसे हैं जो अब लुप्त हो गए हैं।

याज्ञिक आचार्यों में आश्मरथ्य तथा आलेखन के नाम अनेक बार लिये गए हैं। इन दोनों आचार्यों का नाम अन्य श्रौतसूत्र यथा आश्वलायन श्रौ० सू०, भारद्वाज श्रौतसूत्र, हिरण्यकेशि-श्रौतसूत्र में भी लिया गया है।

आपस्तम्ब श्रौत तथा अन्य श्रौतसूत्र

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र की अन्य कई श्रौतसूत्रों से समानता मिलती है। इस श्रौतसूत्र का सर्वाधिक सम्बन्ध मैत्रायणी संहिता के मानव श्रौतसूत्र से है। प्रो० गार्बे के अनुसार मानव श्रौतसूत्र आपस्तम्ब श्रौ० सू० का मुख्य आधार है।[64] कहीं कहीं तो आ० श्रौ० सू०, मा० श्रौ० सू० का अनुकरण मात्र प्रतीत होता है। इसीलिए प्रो० नौअर (knauer) ने आपस्तम्ब श्रौतसूत्र को मानवश्रौतसूत्र की सर्वोत्तम टीका कहा है।[65] दोनों श्रौतसूत्रों के शब्दों में बहुत समानता है। आश्वलायन श्रौतसूत्र से भी कम से कम 15 स्थानों पर समानता है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र का प्रवर खण्ड (24.5-10) आश्वलायन श्रौतसूत्र के 12.10-5 से मिलता है। शांखायन श्रौतसूत्र से भी कुछ समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणतया आ० श्रौ० सू० 21 5 10 11 = शांखायन श्रौ० सू० 13 14-6 आपस्तम्ब श्रौ० सूत्र तथा भारद्वाज श्रौ० सू० का सबंध पहले ही बताया जा चुका है। आपस्तम्ब के यज्ञ परिभाषा सूत्र (प्रश्न 24) की कात्यायन श्रौतसूत्र तथा जैमिनी के पूर्वमीमांसा सूत्र के साथ अनेक समानताएं हैं।[66]

भाषा की दृष्टि से यह श्रौ० सू० बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें जहां एक ओर प्राचीन वैदिक रूप मिलते हैं, वहां प्राकृत रूप तथा अनेक ऐसे रूप मिलते हैं जो पाणिनीय व्याकरण से सिद्ध नहीं होते।

आपस्तम्ब के मूल स्थान के विषय में पहले ही कहा जा चुका है कि ब्यूलर आदि कुछ विद्वान् आपस्तम्ब को दक्षिण में आन्ध्र प्रदेश का मानते हैं, तो कुछ अन्य विद्वान् उन्हें उत्तर-पूर्वी भारत का मानते हैं।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के प्रथम 15 प्रश्नों पर रुद्रदत्त की टीका 'सूत्रदीपिका वृत्ति' नाम से मिलती है जो रिचर्ड गार्बे द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित है। इस वृत्ति में भारद्वाज, बौधायन, आश्वलायन, ब्राह्मण तथा सत्याषाढ सूत्रों से उद्धरण दिए गए हैं। इस सूत्र पर धूर्तस्वामी का भाष्य भी मिलता है जो नौ प्रश्न तक दो खण्डों में चिन्नस्वामी शास्त्री तथा पट्टाभिरामशास्त्री द्वारा सम्पादित तथा ओरियंटल इन्स्टीट्यूट बड़ोदा द्वारा 1955 तथा 1963 में प्रकाशित है।

सत्याषाढ हिरण्यकेशि-श्रौतसूत्र

हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र सत्याषाढश्रौतसूत्र नाम से दस से भागों में प्रकाशित है। यद्यपि इसका नाम श्रौतसूत्र है परन्तु इसमें श्रौत, गृह्य, धर्म, शुल्व तथा पितृमेध सूत्र सकलित हैं। अत: इसे हिरण्यकेशिकल्पसूत्रम् नाम से प्रकाशित करना अधिक उपयुक्त होता। इसमें कुल 29 प्रश्न हैं तथा एक परिशिष्ट है।

हिरण्यकेशिकल्प के 1 से 18 तथा 21 से 24 प्रश्न को श्रौतसूत्र का भाग माना जा सकता है। 19 तथा 20 प्रश्न गृह्य सूत्र, 25 शुल्बसूत्र, 26-27 धर्मसूत्र तथा 28 तथा 29 पितृमेध सूत्र के भाग हैं। श्रौत के बीच में गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र से पहले शुल्वसूत्र का आना इस बात का संकेत है कि इस सूत्र का क्रम सम्यक् व्यवस्थित नहीं है। प्रारम्भ में इनका प्रयोग अलग-अलग होता रहा होगा परन्तु बाद में उनको एक स्थान पर सकलित कर दिया गया है।

हिरण्यकेशिसूत्र में मौलिकता न के बराबर है। इसके श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र तथा शुल्बसूत्र आपस्तम्ब सूत्रों के समान हैं। पितृमेधसूत्र भारद्वाज के पितृमेधसूत्र के समान है। श्रौतसूत्र के भी कुछ अंश भारद्वाज श्रौतसूत्र के समान हैं, जैसे हिरण्य० श्रौ० सू० 1 4 6 तथा भा० श्रौ० सू० 1 26 26, हिरण्य० श्रौ० सू० 15 1.48-50, भा० श्रौ० सू० 9 4 1 आदि।

भारद्वाज तथा आपस्तम्ब श्रौतसूत्र परस्पर मिलते-जुलते हैं और आपस्तम्ब और हिरण्यकेशि लगभग एक-जैसे हैं, इसलिए हिरण्यकेशी और भारद्वाज का संबंध स्वत: ही सिद्ध हो जाता है। भारद्वाज और हिरण्यकेशी के पितृमेधसूत्र का समान होना उनके परस्पर सम्बन्ध को सिद्ध करता है। क्रम की दृष्टि से हिरण्यकेशि-कल्प दोनों से ही बाद का है।

मन्त्रों को उद्धृत करने में हि० श्रौ० सू० में आपस्तम्ब श्रौ० सू० का अनुकरण किया गया है। इसमें पहले मन्त्रों को दिया गया है तथा बाद में कार्य विधान किया गया है। परन्तु भा० श्रौ० सू० में यह क्रम विपरीत है। आ० श्रौ० सू० के समान ही भा० श्रौ० सू० में तैत्तिरीय संहिता के मन्त्रों को प्रतीकों से दिया गया है।

हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र पर महादेव ने विस्तृत भाष्य लिखा है जो उपर्युक्त रूप में प्रकाशित है।

वैखानस श्रौतसूत्र

वैखानस कल्पसूत्र अपने तीन अंगों यथा—1 श्रौतसूत्र 2. गृह्यसूत्र तथा 3 धर्मसूत्र में विद्यमान है। इस कल्प सूत्र की विशेषता यह है कि इसका क्रम सभी कल्पसूत्रों से भिन्न है। इसमें सबसे पहले गृह्यसूत्र (प्रश्न 1-7) तत्पश्चात् धर्मसूत्र (प्रश्न 8-10) तथा उसके बाद श्रौतसूत्र (प्रश्न 12-32)। बीच के प्रश्न 11 में प्रवरसूत्र है। कैलेंड का मत है कि वैखानस कल्प इसी क्रम में लिखा गया था। वैखानस श्रौतसूत्र इसके गृह्य और धर्मसूत्र के बाद का है।[67] अन्य सभी कल्पसूत्रों में श्रौतसूत्र का स्थान सबसे पहले है। अपने मत की पुष्टि में कैलेंड ने कई तर्क दिए हैं, यथा—

1. गृह्यसूत्र में पिन्डपितृयज्ञ का वर्णन है। यह विषय श्रौतसूत्र का है। परन्तु श्रौतसूत्र (3.6) में इसका केवल उल्लेख मात्र है। इसका तात्पर्य यह है कि पिन्डपितृयज्ञ गृह्यसूत्र में पहले ही लिखा जा चुका था।
2. श्रौतसूत्र में भाषा की अनियमितताएं लगभग नहीं के बराबर हैं।
3. श्रौतसूत्र में गृह्य तथा धर्मसूत्रों की अपेक्षा मौलिकता कम है।

इस प्रकार डॉ० कैलेंड गृह्य और धर्मसूत्रों को एक ही व्यक्ति की रचना मानते हैं जबकि श्रौतसूत्र को वे स्पष्ट रूप से उसी व्यक्ति की रचना नहीं मानते हैं जिसने गृह्य और धर्मसूत्र लिखे। परन्तु डॉ० रामगोपाल इन तीनों सूत्रों का रचयिता एक ही व्यक्ति को मानते हैं।[68]

वैखानस श्रौतसूत्र अधिकांशतः हिरण्यकेशि—श्रौतसूत्र पर आधारित है परन्तु बौधायन और आपस्तम्ब श्रौतसूत्र का भी इस पर प्रभाव है।

वैखानस श्रौतसूत्र उसी तैत्तिरीय संहिता पर आधारित है जिस पर आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी हैं अथवा उनकी कोई अपनी संहिता थी, इस विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यद्यपि अधिकांश मन्त्र और उद्धरण तैत्तिरीय संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में खोजे जा सकते हैं परन्तु कुछ ऐसे मन्त्र हैं जो तैत्तिरीय संहिता और ब्राह्मण में नहीं मिलते हैं। इस सूत्र में किसी ब्राह्मण का नामोल्लेख भी नहीं किया गया है। कैलेंड के अनुसार आनन्दसंहिता में, जो वैखानस शाखा का ही ग्रन्थ है, वैखानस यजुर्वेद का उल्लेख है।[69] अपरच, वैखानस

श्रौतसूत्र मे उन मन्त्रों को जिन्हे आपस्तम्ब और हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र में पूर्ण रूप म दिया गया है, प्रतीको क माध्यम से दिया गया है। केलेंड की सूचना के अनुसार राजकीय प्राच्य पुस्तकालय मैसूर मे एक हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित है जिसका नाम है— 'मन्त्रसहिता वैखानसीया'। वैखानससूत्र के अनेक मन्त्र इस सहिता मे उपलब्ध हैं। इस सहिता का कुछ भाग 'वैखानसमन्त्रप्रश्न सस्वरः प्रश्नचतुष्ट्यात्मक' नाम से प्रकाशित है।[70]

काल की दृष्टि से वैखानसकल्प सूत्र तैत्तिरीय शाखा के अन्य सभी कल्पसूत्रों की तुलना मे अर्वाचीन है। इसके समर्थन मे केलेंड ने सबसे प्रबल तर्क यह दिया है कि वैखानस धर्मसूत्र (9 13) मे ताम्बूल शब्द आया है। पान चबाने की आदत भारत मे चरक और सुश्रुत के मध्य मे प्रारम्भ हुई थी, इसलिए वैखानस कल्प की रचना इस काल से पहले की नही हो सकती। स्पेयर के मत के अनुसार पान चबाने की आदत भारत मे चतुर्थ शताब्दी से पहले नही थी।[71]

परन्तु वैखानस कल्प को इतने बाद की रचना मानना उचित प्रतीत नही होता है। वैखानस गृह्य सूत्र और मनुस्मृति मे अनेक स्थल ऐसे हैं जो पूर्णत समान है। केलेंड स्वय यह स्वीकार करते है कि वैखानस सूत्र मनुस्मृति से पहले का है और मनुस्मृति ने वैखानस सूत्र से ग्रहण किया है।[72] हमारे मत से वैखानस सूत्र प्रथम शताब्दी के बाद की रचना नही हो सकती।

यह ज्ञातव्य है कि वैखानस श्रौतयज्ञो के प्राचीन आचार्य थे क्योंकि उनका उल्लेख बौधायन सूत्र मे मिलता है। वर्तमान कल्पसूत्र किसी प्राचीन कल्पसूत्र, जो सम्भवत नष्ट हो गया है, के आधार पर तैयार किया गया है।

वाधूल श्रौतसूत्र

केलेंड ने राजकीय प्राच्य हस्तलिखित ग्रन्थ पुस्तकालय, मद्रास (Government Oriental Manuscript Library, Madras) से वाधूल श्रौतसूत्र का एक हस्तलिखित ग्रन्थ खोज निकाला है।[73] इस सूत्र मे पन्द्रह प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक अनुवाको म बटा हुआ है। इसके पहले प्रपाठक (अध्याय 1-11) में अग्न्याधेय, पुनराधेय, अग्निहोत्र, अग्न्युपस्थान आदि, द्वितीय प्रपाठक मे पुरोडाशी, तीसरे मे यजमान, आग्रयण, ब्रह्मत्व, चौथे मे चातुर्मास्य, पचम मे पशुबन्ध, षष्ठ तथा सप्तम मे ज्योतिष्टोम, अष्टम मे अग्निचयन, नवम मे वाजपेय, दशम में राजसूय तथा सौत्रामणी, एकादश मे अश्वमेध यज्ञ वर्णित हैं।

द्वादश से पचदश तक एक ब्राह्मण है जिसमे द्वादशाह, औपानुवाक्य अहीन तथा एकाह यज्ञो का वर्णन है।

वाधूल श्रौतसूत्र मे विचित्र बात यह है कि सूत्रो के साथ-साथ उनकी व्याख्या भी हैं जिन्हे अन्वाख्यान कहा गया है। इसकी शैली ब्राह्मण ग्रन्थो से मिलती-

जुलती है। ये अन्वाख्यान तैत्तिरीय संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण से सम्बन्धित हैं।

प्रो० कलैंड वाधूल श्रौतसूत्र को बौधायन श्रौतसूत्र से भी प्राचीन मानते हैं। इसकी बौधायन श्रौ० सू० के साथ सर्वाधिक निकटता है। यद्यपि सत्याषाढ श्रौतसूत्र के भाष्यकार महादेव ने कृष्ण यजुर्वेद के सूत्रकारों का क्रम इस प्रकार रखा है—बौधायन, भारद्वाज, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वाधूल तथा वैखानस परन्तु एक अन्य लेख के अनुसार आपस्तम्ब, वाधूल के शिष्य के शिष्य थे।[71] इसलिए आपस्तम्ब वाधूल से दो पीढ़ी बाद के हैं।

वाधूल श्रौतसूत्र की शैली प्राचीन है। डॉ० कैलैंड इसका समय तैत्तिरीय संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण के बाद का परन्तु उपनिषदों से पहले का मानते हैं। इसमें प्राचीन और मिश्रित संस्कृत का प्रयोग किया गया है।

मैत्रायणी संहिता के श्रौतसूत्र

कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता से सम्बन्धित दो श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं—1 मानव श्रौतसूत्र तथा 2 वाराह श्रौतसूत्र

1. मानव श्रौतसूत्र

मानव श्रौतसूत्र में कुछ ही स्थलों को छोड़कर[72] मैत्रायणी संहिता के मन्त्रों को प्रतीक द्वारा उद्धृत किया गया है। इससे इस श्रौतसूत्र का सम्बन्ध मैत्रायणी संहिता के साथ सुनिश्चित हो है। अनेक स्थलों पर मैत्रायणी संहिता के मत 'आम्नातम्' शब्द द्वारा उद्धृत किए गए हैं।

वर्तमान मानव श्रौतसूत्र में कुल ग्यारह अध्याय हैं—

1 प्राक्सोम, 2. अग्निष्टोम, 3 प्रायश्चित्त, 4 प्रवर्ग्य, 5 इष्टि, 6. अग्निचयन, 7. वाजपेय, 8 अनुग्राहिक, 9. राजसूय, 10. शुल्बसूत्र तथा 11. परिशिष्ट।

मानव श्रौतसूत्र की विषयवस्तु को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यह समस्त रचना किसी एक ही समय या एक ही व्यक्ति की नहीं है। अनेक प्रकीर्ण प्रकरण समय-समय पर जोड़े गए प्रतीत होते हैं। गेल्डनर के अनुसार प्रारम्भिक अवस्था में केवल पांच ही अध्याय रहे होंगे। प्रवर्ग्य, अनुग्राहिक, शुल्ब तथा परिशिष्ट भाग मूल श्रौतसूत्र में नहीं रहे होंगे। शुल्बसूत्र में विष्णु की वेदी, परिशिष्ट में मूलादि जातशान्ति, यमल जातिशान्ति आदि ऐसे प्रकरण हैं जो मूल सूत्रकाल के बाद के हैं। इस सूत्र में अनेक स्थलों पर श्लोक उद्धृत किए गए हैं जो निश्चित रूप से समय-समय पर बाद में जोड़े गये प्रतीत होते हैं।

इस श्रौतसूत्र पर मैत्रायणी संहिता के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों का भी प्रभाव

दृष्टिगत होता है। कठ संहिता का प्रभाव अनेकश प्रतीत होता है। आश्वलायन श्रौतसूत्र के साथ भी कई स्थानो पर समानता दिखाई देती है। इस सूत्र पर शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण, पर्चविश ब्राह्मण आदि ग्रन्थो का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।[76]

इस सूत्र मे अत्रि, आगिरस, आत्रेय, गर्ग, गौतम, जनक, जमदग्नि, भारद्वाज, भार्गव, मनु वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि अनेक प्राचीन आचार्यों के नाम उल्लिखित हैं।[77]

काल की दृष्टि से कुछ भी कहना सभव नही है। केलेड ने एक स्थान पर इस सूत्र को अर्वाचीन सूत्र माना है[78] तो एक अन्य स्थान पर इसे आपस्तम्ब और हिरण्यकेशि श्रौतसूत्रो से भी प्राचीन माना है।[79] गार्बे के अनुसार आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ने मानव श्रौतसूत्र का अनुकरण किया है।[80] डॉ० रामगोपाल भी इसी मत स अपनी सहमति व्यक्त करते हैं।[81] विषय और भाषा की दृष्टि से वर्तमान रूप मे उपलब्ध मानव श्रौतसूत्र आपस्तम्ब श्रौतसूत्र से प्राचीन प्रतीत होता है।

यह सूत्र डॉ० गेल्डनर द्वारा अग्रेजी मे अनूदित एव प्रकाशित है।

वाराह श्रौतसूत्र

वाराह श्रौतसूत्र भी मैत्रायणी संहिता से सम्बन्धित है परन्तु इसम अनेक ऐसे सूत्र भी हैं जो दूसरी संहिताओ से सम्बन्धित हैं। इस श्रौतसूत्र ने मूल रूप मे मानव श्रौतसूत्र का ही अनुकरण किया है इसलिए इस सूत्र को अधिक महत्त्व नही दिया गया है।

इस सूत्र म कुल तीन प्रकरण हैं—1. प्राक्सौमिकम्, 2. अग्निचयनम् तथा 3 वाजपेयादिकम्। इन प्रकरणो का विभाजन अध्यायो और खण्डो मे है। प्रथम प्रकरण मे कुल सात अध्याय, द्वितीय मे दो अध्याय तथा तृतीय मे चार अध्याय हैं। इस सूत्र मे परिभाषाओ के अतिरिक्त दर्शपूर्णमास, आधान, पुनराधेयम् अग्निहोत्र, अग्न्युपस्थान, आग्रायणेष्टि, पशुबन्ध, चातुर्मास्य, वाजपेय, द्वादशाह, गवामयनम्, उत्सर्गिणामयनम्, महाव्रतम्, एकादशिनी, सौत्रामणी, राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों का वर्णन है।

विषय की दृष्टि से यह सूत्र पूर्ण नही है। इसमे अग्निष्टोम, प्रवर्ग्य, इष्टिकल्प तथा प्रायश्चित्तो का अभाव है। जे० गोडा का मत है कि यह सूत्र या तो किसी पूर्व कृति का नवीनीकरण है या यह स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ है।[82]

यह सूत्र केलेंड तथा रघुवीर द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित है।[83]

काठक श्रौतसूत्र

काठक शाखा के अनेक ग्रन्थ नष्ट हो गय हैं। एव ब्राह्मण और आरण्यक को

छोड़कर कोई ग्रन्थ इस शाखा का उपलब्ध नहीं होता है। लौगाक्षिगृह्यसूत्र की भूमिका में देवपाल ने काठक श्रौतसूत्र की सूचना दी है जिसमें 39 अध्याय थे।[84] यह श्रौतसूत्र आज उपलब्ध नहीं है। इसके कुछ अंश सूर्यकान्त[85] तथा रघुवीर[86] ने प्रकाशित किए हैं।

4 सामवेद के श्रौतसूत्र

सामवेद के निम्नलिखित चार श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं—

आर्षेय कल्प

आर्षेय कल्प परम्परा से मशक गार्ग्य की रचना माना जाता है।[87] इसका संबंध सामवेद से है। यह किसी एक शाखा से संबंधित नहीं अपितु सामवेद की सभी शाखाओं पर यह समान रूप से लागू होता है।

इस कल्प का मुख्य विषय सोमयज्ञ से संबंधित है। इस कल्प में केवल ग्यारह अध्याय हैं। इस सूत्र का प्रारम्भ 'गवामयनम्' से होता है। इस कल्प में 'ज्योतिष्टोम' और 'व्यूढ द्वादशाह' ये दो प्रमुख सोम-यज्ञ-सत्र वर्णित नहीं हैं। टीकाकार वरदराज ने इसका कारण यह बताया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ में पढ़े जाने के कारण इस ग्रन्थ में इनकी आवश्यकता नहीं समझी गई है। परन्तु वरदराज ने इन दो यज्ञ संस्थाओं को महत्त्वपूर्ण तथा सभी यज्ञों की मूल प्रकृति मानते हुए उपोद्घात में इन यज्ञों का वर्णन किया है। ऐसा उन्होंने ग्रन्थ को सम्पूर्ण बनाने के लिए किया है—

> अथार्षेयकल्पो व्याख्यातव्य। तत्र च सर्वक्रतुप्रकृतिभूतस्य त्रिपर्वणो ज्योतिष्टोमस्य सर्वाहर्गणप्रकृतिभूतस्य च व्यूढस्य द्वादशाहस्य ब्राह्मणेनैव क्लृप्तिरस्तीति तदुपजीवनेन कल्पान्तराण्येव कल्पितानि। अस्माभिस्त्वस्य प्रबन्धस्य कार्त्स्न्यार्थं तयोस्तावत् प्रयोग. सूत्रब्राह्मणानुसारेण प्रदर्श्यते॥

इस कल्प में विभिन्न यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले सामवेद के मन्त्रों की सूची दी गई है। परन्तु यह कहीं नहीं बताया गया है कि कौन-सा मन्त्र किस विशेष अवसर पर विनियुक्त होना चाहिए। आर्षेय कल्प में इस बात के भी संकेत नहीं दिये गये हैं कि कौन-सी यज्ञ-प्रक्रिया कहाँ प्रारम्भ होनी है तथा कहाँ समाप्त होती है।

इस कल्प में सर्वप्रथम 361 दिन पर्यन्त चलने वाले 'गवाम् अयनम्' नामक यज्ञ का विवरण है। तत्पश्चात् एक दिन चलने वाले यज्ञों का वर्णन है। तदुपरान्त अहीन (जो 2 से 11 दिन तक चलें) यज्ञों का वर्णन है। अन्त में 12 दिन से 1000 वर्ष तक चलने वाले यज्ञों का वर्णन है। इस कल्प में जादू-टोने वाले इन चार यज्ञों का भी उल्लेख है—श्येन, इषु, संदश तथा वज्र।

इस कल्प मे यज्ञो का क्रम ताण्ड्य (पचविश) ब्राह्मण के अनुरूप है परन्तु उपर्युक्त चार जादू-टोन वाले यज्ञो का विवरण, जो ताण्ड्य ब्राह्मण मे नही है, उसके पूरक षड्विंश ब्राह्मण के अनुरूप है।

आर्षेय कल्प का एक पूरक ग्रन्थ भी है—क्षुद्र कल्प। क्षुद्र कल्प को भी मशक गार्ग्य की ही रचना माना जाता है।

आचार्य वरदराज ने, जिसका समय सोलहवी शताब्दी है, आर्षेय कल्प पर एक विस्तृत टीका लिखी है। उन्होंने उपोद्घात मे 'ज्योतिष्टोम' यज्ञ के तीन अग अग्निष्टोम, उक्थ्य तथा अतिरात्र एव 'व्यूढ-द्वादशाह' यज्ञो की, जो आर्षेय कल्प मे नही दिये गये है विस्तृत जानकारी दी है।

आर्षेय कल्प सर्वप्रथम डब्ल्यू केलेड द्वारा लीपजिग से 1908 म रोमन लिपि म प्रकाशित किया गया। 1976 म डॉ० बी० आर० शर्मा द्वारा सम्पादित वरदराज की टीका सहित विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध सस्थान, होशियारपुर स प्रकाशित किया गया।

लाट्यायन श्रौतसूत्र

लाट्यायन श्रौतसूत्र सामवेद की कौथुम शाखा स सम्बन्धित है। इसमे पचविश ब्राह्मण का अनुकरण किया गया है। पचविश ब्राह्मण से अनेक उद्धरण इस सूत्र म दिए गए हैं।

लाट्यायन श्रौतसूत्र दस प्रपाठको मे विभक्त हैं। सप्तम और दशम प्रपाठक को छोडकर सभी प्रपाठको मे 12-12 कण्डिकाए हैं। सप्तम प्रपाठक मे 13 तथा दशम प्रपाठक मे 20 कण्डिकाए हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण लाट्यायन श्रौतसूत्र मे कुल 129 कण्डिकाए हैं।

लाट्यायन श्रौतसूत्र म अनक आचार्यों के मत दिए गए हैं। कुछ आचार्यों के मत उनके नाम से तथा कुछ आचार्यों के मत 'एके' (1 3 5) कहकर दिए गए हैं। जिन आचार्यों के नाम इस श्रौतसूत्र म आए हैं उनमे प्रमुख हैं—गौतम[88], कौत्स[89], धनञ्जय[90], राणायनीपुत्र, शाण्डिल्य[91] शुग, स्थविर गौतम आदि। इन सभी आचार्यों मे गौतम, धनजय तथा शाण्डिल्य के मतो को सर्वाधिक उद्धृत किया गया है।

इस सूत्र मे अनेक ग्रन्थो स उद्धरण दिए गए हैं। पचविश (ताण्ड्य) ब्राह्मण स तो न केवल बहुत बडे उद्धरण लिये गए हैं अपितु अनेक स्थलो पर उन उद्धरणो क अर्थ भी स्पष्ट किए हैं। इसके अतिरिक्त षड्विंश ब्राह्मण से भी अनक उद्धरण लिये गए हैं।[92] एक स्थान पर 'पुराण ताण्डम्' (7 10 17) कहकर धनजय के मत की पुष्टि की गई है। टीकाकार अग्निस्वामी के अनुसार पुराण ताण्ड से तात्पर्य 'ताण्डक ब्राह्मण'[93] से ही है। पुराण ताण्ड, पचविश ब्राह्मण (ताण्ड्य ब्राह्मण) का

ही कहा गया है या कोई अन्य ग्रन्थ है जो आज उपलब्ध नहीं है, यह कहना कठिन है।

लाट्यायन श्रौतसूत्र में दिए गए उद्धरणों से इतना तो स्पष्ट ही है कि लाट्यायन का ज्ञान बहुत विस्तृत था तथा उनसे पूर्ववर्ती अथवा समकालीन बहुत से आचार्य विद्यमान थे जो याज्ञिक व्यवस्था के अधिकारी विद्वान् थे। लाट्यायन श्रौ० सू० में उद्धृत मन्त्रों की संख्या लगभग 2628 है।

इस सूत्र के प्रथम प्रपाठक में सभी यज्ञों पर लागू होने वाली सामान्य याज्ञिक परिभाषाएं दी हैं—अथ त्रिष्वपदेशे सर्वकर्त्त्वधिकार: (1 1 1) तदुपरान्त ऋत्विक् की सामान्य याग्यताएं बताई गई हैं। द्वितीय प्रपाठक में स्तोमयागादि सामान्य यज्ञों की विधि बताई गई है। तृतीय प्रपाठक में षोडशी नामक उद्गाता के गुणों का वर्णन किया गया है। चतुर्थ प्रपाठक में वाण, अनयव आच्छादन द्रव्यादि का वर्णन है। पंचम प्रपाठक में चातुर्मास्य यज्ञों का वर्णन है। षष्ठ और सप्तम प्रपाठक में साम मन्त्रों की गायन विधि दी गई है। अष्टम प्रपाठक में एक दिन वाले तथा अहीन (2 से 11 दिन तक चलने वाले) यज्ञों का वर्णन है। नवम में राजसूय यज्ञ तथा दशम में सवत्सर पर्यन्त चलने वाले यज्ञों का विधान है।

यह श्रौतसूत्र प्रथम बार 1872 में एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता द्वारा अग्नि स्वामी के भाष्य सहित श्री आनन्द चन्द्र वेदान्त वागीश के सम्पादन में प्रकाशित हुआ। इसका पुन प्रकाशन मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स प्रा० लि० दिल्ली द्वारा 1982 ई० में किया गया है।

लाट्यायन श्रौतसूत्र का अग्निस्वामी कृत भाष्य बहुत विस्तृत एवं उपयोगी है। अग्निस्वामी ने बहुत ही सरल भाषा में इस सूत्र की व्याख्या प्रस्तुत की है। अग्निस्वामी ने भाष्य के आदि या अन्त में अपने विषय में कुछ नहीं कहा है।

द्राह्यायण श्रौतसूत्र

द्राह्यायण श्रौतसूत्र सामवेद की राणायणीय शाखा से सबंधित है। यह लाट्यायन श्रौतसूत्र का अनुकरणमात्र है। केवल कुछ परिवर्तन किए गए हैं ताकि यह सूत्र स्वतन्त्र प्रतीत हो सके। लाट्यायन श्रौतसूत्र का विभाजन प्रपाठकों में है, परन्तु द्राह्यायण श्रौतसूत्र पटलों में विभाजित है। इसमें कुल 32 पटल हैं।

सूत्रों में भी यत्र-तत्र परिवर्तन किए हैं। कई छोटे-छोटे सूत्रों को मिलाकर एक सूत्र में परिवर्तित कर दिया गया है। कहीं-कहीं एक बड़े सूत्र को छोटे-छोटे सूत्रों में परिवर्तित किया गया है। कहीं-कहीं अर्थ को स्पष्ट करने के लिए एक-दो शब्द अतिरिक्त जोड़ दिए गए हैं।

जैमिनीय श्रौतसूत्र

जैमिनीय श्रौतसूत्र सामवेद का ही श्रौतसूत्र है क्योकि इसमे सामवेदीय यज्ञो का वर्णन है। परम्परा से इसके रचयिता जैमिनि ऋषि माने जाते हैं।

ये जैमिनि मीमासाशास्त्र के रचयिता जैमिनि हैं या कोई और, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। प्रेमनिधि शास्त्री मीमामाशास्त्र तथा श्रौतसूत्र के रचयिता एक ही जैमिनि को मानते हैं।[15] परम्परानुसार जैमिनी व्यास के शिष्य थे। उन्ही से उन्होंने सामवेद पढा, इसके प्रमाण मे श्री प्रेमनिधि शास्त्री ने निम्नलिखित श्लोक दिए हैं—

सामाखिल सकलवेदगुरोर्मुनीन्द्राद्
व्यासादवाप्य भुवि येन सहस्रशाखम्।
व्यक्त समस्तमपि सुन्दरगीतरागम्
त जैमिनिं तलवकारगुरु नमामि।

तथैव

वेदोक्त कर्म येनासीत् मीमासयित्वा सुनिश्चितम्।
व्यासशिष्याय मुनये तस्मै जैमिनये नम ॥

जैमिनि मुनि को कही-कही तलवकार कहा गया है। उपर्युक्त श्लोक मे जैमिनि का विशेषण 'तलवकारगुरु' है। जैमिनीय श्रौतसूत्र के वृत्तिकार श्री भवत्रात ने वृत्तिकल्प के उपोद्घात म तलवकार को नमस्कार किया है—

ऋक्सामपाठक्रमकृद् द्रष्टा च ब्राह्मणस्य य।
तस्मै तलवकाराय नमो यच्छाखिनो वयम् ॥

इन दोनो नामो का तादात्म्य है। जैमिनीय ब्राह्मण को तलवकार ब्राह्मण कहा जाता है। इसी प्रकार जैमिनीयोपनिषत् के रचयिता तलवकार माने जाते हैं।

क्या ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं, अथवा ये दो भिन्न व्यक्ति हैं? श्री प्रेमनिधि शास्त्री का मत है कि सामवेद की शाखा से सम्बन्धित ये दोनो व्यक्ति भिन्न हैं। गुरु-शिष्य परम्परा से इन दोनो नामो का तादात्म्य हो गया है। सम्भवत तलवकार जैमिनि मुनि के शिष्य थे। उपर्युक्त श्लोक मे आये जैमिनि के विशेषण 'तलवकारगुरु' अर्थात् तलवकारस्य गुरु इस प्रकार विग्रह करके इस बात की पुष्टि की जा सकती है। जैमिनीय गृह्यसूत्र (1.14) में जैमिनि और तलवकार दोनो को एक साथ तर्पण का विधान किया गया है—जैमिनिं-तलवकारं, सात्यमुग्र राणायनिम्। जैमिनि सम्भवत. शाखा के प्रवर्तक थे और तलवकार उनके उपदेशो के संकलनकर्त्ता। प्रपंचहृदय नामक ग्रन्थ मे जिसका समय विक्रम सम्वत् 800 से पहले का माना जाता है, इस प्रकार लिखा हुआ है—तलवकारशाखा-

प्रयुक्तं सामवेदिकविषय जैमिनिना प्रदर्शितम्। इसमें तलवकार के शाखा प्रवर्त्तक होने का भी भ्रम होता है, परन्तु जैमिनि का नाम अधिक प्रसिद्ध है इसलिए जैमिनि ही शाखा के प्रवर्त्तक थे और तलवकार उनके शिष्य थे। संस्कृत साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां गुरु के नाम पर ही शिष्य की रचना प्रसिद्ध होती है, जैसे अग्निवेश कृत चरकसंहिता सायणकृत माधवीया धातुवृत्ति आदि।

उपलब्ध जैमिनीय श्रौतसूत्र बहुत छोटा है। इसमें कुल 26 खण्ड हैं जो केवल अग्निष्टोम प्रकरण से सम्बन्धित हैं। वृत्तिकार ने ग्रन्थ को पूर्ण करने के लिए पांच अध्याय और जोडे हैं यथा—स्तोमकल्पवृत्ति, प्राकृतवृत्ति, संज्ञा, विकृति कल्प तथा पर्यध्याय। इससे प्रतीत होता है कि यह श्रौतसूत्र पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं हुआ है। ग्रन्थ के आदि में प्रारम्भ सम्बन्धी संकेत यथा 'अथ' या 'ज्यात' का प्रयोग नहीं है। अन्य श्रौतसूत्र प्रायः परिभाषा प्रकरण से प्रारम्भ होते हैं जो इस श्रौतसूत्र में नहीं हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में यह वाक्य है—

सोमप्रवाकमागत प्रतिमन्त्रयत महन्मेऽवोचो
भग मेऽवाच पुष्टि मेऽवाचो यशो मेऽवोच इति।

अर्थात् 'सोमयज्ञ में आये हुए के प्रति 'महन्मेऽवोच' इस मन्त्र को बोलें। इस वाक्य से ऐसा प्रतीत होता है कि इससे पूर्व ही श्रौतसूत्र का प्रारम्भ हो चुका है। वह भाग आज लुप्त हो गया है।

प्रपचहृदय नामक ग्रन्थ में जैमिनीय श्रौतसूत्र के 84 पटल बताये गये हैं—

तलवकारशाखाप्रयुक्त सामवेदिकविषय
चतुरशीतिपटलै जैमिनिना प्रदर्शितम् इति।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले खण्डों के स्थान पर इस सूत्र में पटलों का व्यवहार था। यह बात वृत्तिकार के इस वचन से स्पष्ट होती है—

'यदस्मिन् पटले वक्ष्यते तत्सर्वं ब्राह्मण एव विज्ञायते' (6 47)।

यहां पर यद्यपि विभाजन खण्डों में है परन्तु वृत्तिकार खण्ड के लिए पटल शब्द का प्रयोग करता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जैमिनीय श्रौतसूत्र न केवल अग्निष्टोम से सम्बन्धित नियम वर्णित हैं।

जैमिनीय श्रौतसूत्र में जैमिनीय ब्राह्मण से बहुत कुछ ग्रहण किया गया है। इस सूत्र में मौलिकता का अभाव है। जैमिनीय ब्राह्मण न न केवल मन्त्र अपितु गद्यभाग भी ज्यों की त्यों ले लिए गये हैं।[95] उदाहरणतया जै० श्रौ० सू० के छठे खण्ड में आये हुए मन्त्र तथा गद्य-भाग जै० ब्राह्मण के 1 70 72 से लिये गये हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी।

इस श्रौतसूत्र में शाट्यायनि तथा ताण्ड्य के नामोल्लेख से मत दिए गए हैं। सातवें खण्ड में ब्राह्मण तथा पैंगक के नाम से मत दिए गए हैं।[96]

सूत्र शैली की दृष्टि से इस सूत्र की भाषा इतनी कसी हुई नहीं है। भाषा ब्राह्मणों जैसी प्रतीत होती है। इसलिए कुछ विद्वान इसे लाट्यायन श्रौतसूत्र से पूर्व का मानते हैं। परन्तु डॉ० रामगोपाल का कथन है कि यह भ्रान्ति इस कारण है कि जै० श्रौ० सू० में जैमिनीय ब्राह्मण के अंश हैं और इस सूत्र के तथाकथित रचयिता की अपनी कलम से बहुत कम लिखा गया है।[97] उल्लेखनीय है कि विन्तरनित्ज तथा मैक्डोनल इस श्रौतसूत्र का कहीं उल्लेख नहीं करते हैं।

इस श्रौतसूत्र की आचार्य भवत्रात ने एक विस्तृत वृत्ति लिखी है। उनने न केवल इसके 26 खण्डों पर वृत्ति लिखी है अपितु इस सूत्र को विषय की दृष्टि से पूर्णता प्रदान करने के लिए पांच अध्याय और जोड़े हैं। वृत्तिकार ने स्वयं अपना परिचय वृत्ति के प्रारम्भ में दिया है। इनके पिता का नाम मातृदत्त तथा माता का नाम आनर्तीया था। भवत्रात के गुरु और मातामह ब्रह्मदत्त थे। भवत्रात किस प्रदेश के निवासी थे तथा किस काल में हुए, इस सम्बन्ध में उनकी वृत्ति से कुछ ज्ञात नहीं होता है। प्रेमनिधि शास्त्री इन्हें केरल प्रदेशीय तथा सातवीं ईस्वी का मानते हैं। उनका तर्क यह है कि मातृगुप्त अवन्तीसुन्दरी कथा के रचयिता दण्डी के मित्र थे तथा उनसे मिलने के लिए वे केरल प्रदेश से आए थे। इस बात का उल्लेख अवन्ती सुन्दरी कथा में इस प्रकार है—'सर्वजनमातृभूत करुणावृत्ति मातृदत्त केरलेभ्यः त्वद्दर्शनाय '(अवन्तीसुन्दरी कथा)।[98] प्रेमनिधि का यह मत प्रबल प्रतीत होता है क्योंकि दण्डी ने जिस प्रकार मातृगुप्त को माता के समान दयावान् बताया है उसी प्रकार स्वयं वृत्तिकार ने भी मातृगुप्त को माता के तुल्य दयाशील बताया है—मातृतुल्यदयो नाम मातृदत्त इति श्रुतः।

जै० श्रौ० सूत्र सर्वप्रथम डॉ० गास्त्रा द्वारा लेडन से 1906 में डच अनुवाद के साथ प्रकाशित किया गया था। 1966 में प्रेमनिधि शास्त्री द्वारा सम्पादित यह सूत्र भवत्रात की टीका सहित नई दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

5 अथर्ववेद के श्रौतसूत्र

वैतान सूत्र

अथर्ववेद का केवल एक ही श्रौतसूत्र उपलब्ध है जो कि वैतान सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है। वैतान सूत्र और श्रौतसूत्र वस्तुतः पर्यायवाची हैं क्योंकि वितान का अर्थ यज्ञ है। अपनी पृथक् पहचान के लिए सम्भवतः यह नाम दिया गया है।

इस श्रौतसूत्र में आठ अध्याय हैं जो 43 कण्डिकाओं में विभाजित हैं। इस सूत्र में यज्ञ में ब्रह्मा के कार्यों पर मुख्यरूप से बल दिया गया है क्योंकि अथर्ववेद का सम्बन्ध प्रमुखतया ब्रह्मा के कार्यों से ही है। वैतान सूत्र का निर्माण ब्रह्मा के कार्यों के लिए किया गया है। इसकी घोषणा पहले सूत्र में ही की गई है :

'अथ विनानस्य ब्रह्मा कर्मणि ब्रह्मवेदविद्दक्षिणतो विधिवदुपविशति वाग्यत: ।'

अथर्ववेद को यहा ब्रह्मवेद कहा गया है और वितानसूत्र के अध्येता को अथर्ववेद का ज्ञान होना चाहिए।

विनान सूत्र मे उन यज्ञो को बहुत सक्षेप मे दिया गया है जिनमे ब्रह्मा का अधिक कार्य नही है। उदाहरणतया, राजसूय तथा अश्वमेध जैसे यज्ञो का वर्णन केवल 13 तथा 19 सूत्रों म ही कर दिया गया, जबकि अन्य श्रौतसूत्रों मे इन यज्ञो का वर्णन बहुत विस्तार से किया गया है।

वैतानसूत्र का सबध शौनक शाखा से है परन्तु पैप्पलाद शाखा के भी तीन मन्त्र उद्धृत किए गए हैं।[99] शौनकीय शाखा से इसके सबध का प्रमाण यह है कि शौनकीय शाखा के मन्त्रो को प्रतीकों के माध्यम से उद्धृत किया गया है।

वैतानसूत्र अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण पर आश्रित है। कुछ विद्वान् गोपथ ब्राह्मण को वै० सू० से बाद का मानते हैं।[100] परन्तु वैतानसूत्र और गोपथ ब्राह्मण की तुलना से प्रतीत होता है कि वै०सू० ने गोपथ ब्राह्मण से उधार लिया है।[101] गोपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त वैतानसूत्र ने कौशिकसूत्र से भी सहायता ली है। कौशिकसूत्र वैतानसूत्र से पूर्व का माना जाता है।

अनक स्थानो पर 'इत्युक्तम्' कहकर दूसरो के मन्त्र दिए गए हैं। इसमे कौशिक भागलि तथा माठर के नाम स उल्लेख है।

वैतान सूत्र का सबध यद्यपि अथर्ववेद से है परन्तु जादू-टोने की झलक वै०सू० मे नही मिलती है। केवल दो सूत्रों मे अभिचार शब्द का प्रयोग हुआ है.

1 अभिचारेष्वभिचारिकान् 2 10

2. शौनक्यज्ञोऽभिचारकामस्य 43 25

वैतानसूत्र के काल तथा रचयिता के विषय मे कुछ भी ज्ञात नहीं है। वैतानसूत्र कात्यायन सूत्र से कुछ समानता रखता है।

2. गृह्यसूत्र

'गृह्यसूत्र' कल्प वेदाग का दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग है। जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है गृह्यसूत्रों म उन यज्ञो और सस्कारो का वर्णन है जो विद्या समाप्त कर लेने के पश्चात् गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट हुए व्यक्ति का करने चाहिए। समस्त वैदिक कर्मों को दो भागों मे बाटा जाता है। 1 श्रौत कर्म तथा 2 स्मार्त कर्म। श्रौत कर्म की कोटि मे वे कर्म आते हैं जिनका आधार सीधा वेद हो। स्मार्त कर्म की कोटि में वे कर्म आते हैं जो वैदिक परम्परा से सम्बन्धित तो हों परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उनमे केवल वे ही बाते वर्णित हो जो वैदिक सहिता मे हैं। शिष्ट व्यक्तियो का आचार और व्यवहार भी इस विषय मे प्रमाण माने जा

सकते है। विशिष्ट व्यक्तियो द्वारा प्रतिपादित नियमो को 'स्मृति' कहा जाता है। श्रौत कर्म केवल श्रुति अर्थात् वेद द्वारा नियन्त्रित होते हैं जबकि स्मार्त कर्म श्रुति और स्मृति दोनो के द्वारा ही नियन्त्रित होते हैं। स्मार्त कर्मों को दो भागों मे बाटा जाता है—गृह्यकर्म तथा सामयाचारिक कर्म। गृह्यकर्मों का वर्णन गृह्यसूत्रो मे तथा सामयाचारिक कर्मों का वर्णन धर्मसूत्रो मे निहित है।

गृह्यसूत्रो का वर्ण्य-विषय

गृह्य यज्ञो को पाकसस्था कहा गया है जिसके सात प्रकार हैं—साय होत्र, प्रातर्होत्र, स्थाली पाक, नवयज्ञ, वैश्वदेव, पितृयज्ञ एव अष्टका।[102] यद्यपि सभी गृह्यसूत्रो मे वर्णित विषय सामान्यत समान है परन्तु प्रत्येक गृह्यसूत्र मे कुछ भिन्न कर्मों का भी वणन है जो दूसरे गृह्यसूत्रो मे उपलब्ध नही होते हैं।

लगभग सभी गृह्यसूत्रो ने गृह्यकर्मों को पाकयज्ञ या स्थालीपाक यज्ञ कहकर पुकारा है। परन्तु अनेक ऐसे कर्म भी हैं जो पाकयज्ञ या स्थालीपाक यज्ञ के अन्तर्गत नही आते हैं। पाकयज्ञ के किसी गृह्यसूत्र मे चार प्रकार बताए हैं तो किसी मे सात। शाखायन (1 5 1) तथा पारस्कर (1 4 1) गृह्यसूत्रो मे चार प्रकार बताए गए हैं। यथा—हुत, अहुत, प्रहुत तथा प्राशित। बौधायन गृह्यसूत्र (1 1 1) मे सात पाकयज्ञ गिनाए हैं—हुत, प्रहुत, आहुत, शूलगव, बलिहरण, प्रत्यवरोहण तथा अष्टका होम।

गृह्यसूत्रो मे वर्णित कर्मों का एक विशेप क्रम है। सभी यज्ञों के लिए अग्न्याधान आवश्यक है, इसलिए वह सभी प्रमुख गृह्यसूत्रो मे वर्णित है। प्राय गृहस्थ मे प्रवेश ही विवाह के साथ होता है, अत सभी गृह्यसूत्रो मे विवाह सस्कार, का विस्तृत वर्णन है। उसके पश्चात् गर्भाधान सस्कार, पुसवन सस्कार, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, सूर्यदर्शन तथा चन्द्रदर्शन, अन्नप्राशन, चूडाकरण व उपनयन सस्कारो का वर्णन है। उपर्युक्त सभी सस्कार बालक से सबधित हैं। उपनयन के पश्चात् विद्यारम्भ होता है जिसे उपाकर्म कहते हैं। उपाकर्म के पश्चात विद्या की समाप्ति पर उत्सर्ग या समावर्तन सस्कार होता है।

इन सस्कारो के अतिरिक्त कुछ अन्य कर्मों का भी वर्णन है जैसे स्नातक के व्रत लागलयोजन, श्रवणाकर्म, इन्द्रयज्ञ, आश्वयुजीकर्म, नवान्नप्राशन, आग्रहायणी कर्म, अष्टका, शालाकर्म (भवन निर्माण) शुलगव, प्रायश्चित्त आदि। श्राद्ध और मृतक सस्कार भी गृह्यसूत्रो म वर्णित हैं।

अथर्ववेद के गृह्यसूत्र 'कौशिकसूत्र' म गृह्यकर्मों के साथ आभिचारिक कर्मों का भी वर्णन है। कुछ बाद के गृह्यसूत्रो म विष्णु की प्रतिमा पूजा, ग्रहपूजा, शान्ति प्रकरण आदि भी जोड दिए गए हैं।

गृह्यसूत्रों का उद्गम और विकास

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गृह्यसूत्र स्मार्त कर्मों का निर्देश करते हैं। इनका अर्थ है कि इन पर वेदों का सीधा नियन्त्रण नहीं है। यद्यपि गृह्य यज्ञों में भी वेदमन्त्रों का प्रयोग होता है परन्तु वेद के मन्त्र गृह्य यज्ञों के उद्देश्य से लिखे गए, ऐसा नहीं कहा जा सकता। गृह्य सूत्रों ने गृह्यकार्य के अनुकूल अर्थ वाले मन्त्रों को ग्रहण किया। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे नए मन्त्रों का भी निर्माण करना पड़ा जो वेदों में नहीं मिलते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में जहां स्पष्ट रूप से श्रौतयज्ञों के विधान हैं वहां गृह्ययज्ञों से सम्बन्धित विधान उपलब्ध नहीं होते हैं। इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गृह्यसूत्रों का शास्त्र के रूप में विकास ब्राह्मण काल के बाद ही हुआ है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्राचीन वैदिक काल में गृह्य कार्य सम्पन्न ही नहीं होते थे। गृह्य कर्म और रीति-रिवाज तो बहुत प्राचीन काल से चले आ रहे थे परन्तु इनको नियमबद्ध सूत्र काल में ही किया गया। ऋग्वेद (10 85) में विवाह से सम्बन्धित मन्त्र हैं। बाद की संहिताओं में अनेक ऐसे शब्द मिलते हैं जिनका प्रयोग गृह्ययज्ञों के संबंध में हुआ। उदाहरणतया कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में पाकयज्ञ शब्द का प्रयोग हुआ है—

सर्वेण वै यज्ञेन देवा सुवर्गं लोकमायन्।
पाकयज्ञेन मनुरश्राम्यत् (1 7 1 3)

इसी प्रकार पाकयज्ञ शब्द का प्रयोग 4 2 5 4 में भी हुआ है।

अथर्ववेद के मन्त्र अधिकांशतः गृह्य यज्ञों में विनियुक्त हुए हैं। सम्भवतः गृहस्थ कर्म के उद्देश्य से इन मन्त्रों की रचना हुई हो। ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर पाकयज्ञ शब्द का प्रयोग हुआ है। (यथा ऐतरेय ब्राह्मण 3 40 2, शतपथ ब्राह्मण 1 4 2 10, 1 8 1 6), ऐतरेय आरण्यक (8 10 9) में गृह्य अग्नि का उल्लेख हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में पांच महायज्ञ (11 5 6 1), उपनयन (11 5 4 1) तथा अन्य गृह्यकर्म जैसे गर्भाधान, सोष्यन्ती कर्म, आयुष्यकर्म, मेधाजनन, नामकरण आदि का उल्लेख मिलता है।[103]

इस प्रकार स्पष्ट है कि गृह्ययज्ञों का प्रचलन प्राचीन काल से ही था। परन्तु इनको शास्त्र का रूप सूत्रकाल में ही दिया गया।

गृह्यसूत्रों के उपजीव्य ग्रन्थ

गृह्यसूत्रों के उपजीव्य ग्रन्थ उस शाखा के श्रौतसूत्र, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा मन्त्र संहिता हैं। इनके अतिरिक्त देश, काल और समाज के आचार भी महत्त्वपूर्ण थे। दूसरे गृह्यसूत्रों से भी यत्र-तत्र ग्रहण करके उन्हें वैकल्पिक नियमों के रूप में दिया गया है।

गृह्यसूत्र और श्रौतसूत्रो का सम्बन्ध

गृह्यसूत्र और श्रौतसूत्र परस्पर बहुत निकटता से जुडे हुए हैं। गृह्यसूत्रो की रचना उस शाखा से सम्बन्धित श्रौतसूत्र को ध्यान मे रखकर हुई है। जिस शाखा से सम्बन्धित श्रौतसूत्र है, उसी से सम्बन्धित गृह्यसूत्र भी है। एक ही शाखा के श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र की सामान्य विधि प्राय एक ही होती है। परम्परा के अनुसार कुछ शाखाओ के श्रौतसूत्र और सम्बन्धित गृह्यसूत्र एक ही व्यक्ति द्वारा रचे गए हैं, जैसे आश्वलायन, शाखायन, बौधायन, भारद्वाज, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वैखानस, वाराह तथा मानव श्रौतसूत्र हैं तथा इन्ही नामो से गृह्यसूत्र भी। कुछ गृह्यसूत्र ऐसे हैं जिनके रचयिता उससे सबधित श्रौतसूत्र के रचयिता से भिन्न हैं। परन्तु शाखा धर्म के अनुसार दोनो मे यथोचित तारतम्य स्थापित किया गया है। ये गृह्यसूत्र हैं—

श्रौतसूत्र	*सम्बन्धित गृह्यसूत्र*
कात्यायन	पारस्कर
लाट्यायन	गोभिल
द्राह्यायण	खादिर

लगभग सभी श्रौतसूत्र उमसे सम्बन्धित गृह्यसूत्र से पहले की रचना है। परन्तु कुछ विद्वानो के अनुसार अथर्ववेद का वैतान सूत्र उसके गृह्यसूत्र कौशिक सूत्र से बाद का माना जाता है।

प्रत्येक वेद से सम्बन्धित गृह्यसूत्रो का व्यक्तिश विवरण निम्न प्रकार है।

(1) ऋग्वेद के गृह्यसूत्र

ऋग्वेद के तीन गृह्यसूत्र प्रकाशित हैं—1 शाखायन गृह्यसूत्र, 2 कौपीतक गृह्यसत्र तथा 3 आश्वलायन गृह्यसूत्र

1. शाखायन गृह्यसूत्र

शाखायन गृह्यसूत्र का सबध ऋग्वेद की बाष्कलशाखा से है।[104] इस गृह्यसूत्र के कुल 6 अध्याय हैं जिनमें से पांचवें और छठे अध्याय बाद मे जोडे गए माने जाते हैं क्योंकि भाष्यकार नारायण ने पाचवे अध्याय के प्रारम्भ और अन्त मे इसे परिशिष्ट कहा है—अथ परिशिष्टाख्य पचमोऽध्याय आरभ्यते। पचमोऽध्याय परिशिष्टरूप समाप्त। वासुदव के शाखायन गृह्यसग्रह में केवल चतुर्थ अध्याय तक ही व्याख्या की गई है। कौपीतक गृह्यसूत्र शांखायन गृह्यसूत्र पर ही आश्रित है। इसके पाचवें

और छठे अध्याय शा० गृ० सू० के पचम और छठे अध्याय के समानान्तर नही है। इसस सिद्ध होता है कि आरम्भ मे शा० गृ० सू० मे केवल चार ही अध्याय थे।[105]

शा० गृ० सू० के प्रथम अध्याय का 26वा खण्ड भी भाष्यकार नारायण ने क्षेपक खण्ड अर्थात् बाद मे जोडा हुआ खण्ड माना है—अनय इत्यादिक क्षेपकमपि खण्ड दवनाज्ञानाय व्याख्यायत।

शाखायन गृह्यसूत्र सुयज्ञ शाखायन की रचना मानी जाती है। सुयज्ञ व्यक्तिगत नाम और शाखायन पारिवारिक नाम है।[106] भाष्यकार नारायण 1 1 10 के भाष्य मे भी सुयज्ञ नाम दिया गया है—

अत्रारणिप्रदान यदध्वर्युः कुरुते क्वचित्।
मत तन्न सुयज्ञस्य मथित सोऽत्रनच्छति।

कौषीतक आरण्यक के पन्द्रहवे अध्याय मे आचार्यों के वश गिनाए गए हैं वहा 'गुणाख्य शाखायन' कहा गया है परन्तु प्रसिद्ध नाम सुयज्ञ ही है।

शाखायन गृह्यसूत्र शाखायन श्रौतसूत्र से जुडा हुआ है। परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि दोनों का रचयिता एक ही व्यक्ति हैं।

यह गृह्यसूत्र एम० आर० सहगल द्वारा सम्पादित, दिल्ली (1966) से नारायण भाष्य तथा रामचन्द्र पद्धति के अशो सहित प्रकाशित है। सर्वप्रथम ओल्डनबर्ग न 1878 म जर्मन अनुवाद के साथ प्रकाशित किया था। ओल्डनबर्ग द्वारा अग्रेजी अनुवाद भी सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट खण्ड 29 मे प्रकाशित है।

2. कौषीतक गृह्यसूत्र

कौषीतक गृह्यसूत्र को शाम्बव्य की रचना माना है। टी० आर० चिन्तामणि के अनुसार इस गृह्यसूत्र को शाम्बव्य गृह्यसूत्र के नाम स भी जाना जाता था।[107] शाम्बव्य के अन्य नाम भी थे यथा—शाम्भव्य, सम्बाव्य, साम्बाव्य, शवाव्य शावव्य आदि।

महाभारत के अनुसार शाम्बव्य कुरु प्रदेश के निवासी थ।[108]

कौषीतक-गृह्य सूत्र मे पाच अध्याय हैं। पहले चार अध्याय शाखायन गृह्यसूत्र के पहले चार अध्यायो के समान ही हैं। सूत्रो की भाषा और कही-कही क्रम भी ज्यो के त्यो मिलते हैं।[109] शाखायन गृह्यसूत्र के पचम और षष्ठ अध्यायो को कौषीतक गृह्य म नही लिया गया है। जैसा कि पहले कहा गया है, शाखायन गृह्य के पाचवें और छठे अध्याय बाद के जोडे गए हैं। कौषीतक के पचम अध्याय म पितृमेध को लिया गया है जबकि शाखायन ने यह विषय, श्रौतसूत्र मे लिया है (चतुर्थ अध्याय के 14, 15 तथा 16 खण्ड)। वस्तुत पितृमेध गृह्यसूत्र का ही विषय है। इसीलिए कौषीतक न उसे श्रौत मे निकालकर गृह्य मे लिया है।

कौषीतक गृह्यसूत्र के काल के विषय मे निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता।

टी० आर० चिन्तामणि इस गृह्यसूत्र को मनुस्मृति के बाद का मानते हैं क्योंकि कौषीतक गृह्य में उद्धृत कई श्लोक मनुस्मृति में मिलते हैं, यथा—

कौषीतक गृह्य	मनुस्मृति
2.3 19	2 246
3 7 13	4 119
3 10 35	5 41
3 10 35	3 103
3 10 35	3 100

मनुस्मृति का काल 200 ई० पू० से 200 ई० के मध्य मे माना जाता है। इसलिए इस गृह्यसूत्र का काल 200 ई० के कुछ बाद का ही होना चाहिए। परन्तु चिन्तामणि इस विषय मे निश्चित नहीं हैं।[110] यह सभव है कि दोनो ने किसी प्राचीन ग्रन्थ से लिया हो।

इस गृह्यसूत्र पर भवत्रात की टीका उपलब्ध है। भवत्रात नामक व्यक्ति ने जैमिनीय श्रौतसूत्र पर भी टीका लिखी है। सम्भव है दोनो के टीकाकार एक ही व्यक्ति हो। यह भवत्रात मातृदत्त का पुत्र तथा ब्रह्मदत्त का शिष्य था। वासुदेव ने शाखायन गृह्य सग्रह मे ब्रह्मदत्त को शाखायन गृह्यसूत्र का व्याख्याकार बताया है।

कौषीतक गृह्यसूत्र भवत्रात की टीका सहित टी० आर० चिन्तामणि द्वारा प्रकाशित है।

3 आश्वलायन गृह्यसूत्र

आश्वलायन गृह्यसूत्र आश्वलायन श्रौतसूत्र की निरन्तरता मे आगे लिखा गया है क्योंकि इस गृह्यसूत्र का पहला मन्त्र श्रौतसूत्र की ओर सकेत करता है—

उक्तानि वैतानिकानि। गृह्याणि वक्ष्याम। दोनो ही सूत्रों का रचयिता एक ही व्यक्ति है, इस बात पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है।[111] यह सूत्र ऋग्वेद की शाकल शाखा से सबधित है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के दो सस्करण उपलब्ध हैं—एक उत्तरी सस्करण तथा दूसरा दक्षिणी (मालाबार) सस्करण। दोनों सस्करणो मे अनेकश परस्पर भिन्नताए हैं। दक्षिणी सस्करण का प्रारम्भ श्लोको से होता है जिसमे सप्त सरस्वती, शौनक तथा अन्य गुरुओं का अभिवादन किया गया है। इस सस्करण पर देवस्वामी का भाष्य उपलब्ध है। उत्तरी सस्करण पर नारायण का भाष्य है। परन्तु नारायण देवस्वामी के भाष्य से परिचित हैं और प्रारम्भ म ही आश्वलायन के साथ देवस्वामी को अभिवादन करते हैं—

आश्वलायनमाचार्यं प्रणिपत्य जगद्गुरुम्।
देवस्वामिप्रसादेन क्रियते वृत्तिरीदृशी॥

इस गृह्यसूत्र में चार अध्याय हैं जो खण्डों में विभाजित हैं।

आश्वलायन गृह्यसूत्र पर अन्य वैदिक शाखाओं का भी प्रभाव है। उदाहरण-तया पंचमहायज्ञों का वर्णन वृत्तिकार नारायण के अनुसार तैत्तिरीयारण्यक के आधार पर किया गया है—"पंचयज्ञानां हि तैत्तिरीयारण्यकमूलम्।"[112]

आश्वलायन की तिथि आदि पर पीछे विचार किया जा चुका है।

ऋग्वेद के अन्य गृह्यसूत्र

ऋग्वेद के दो गृह्यसूत्रों के हस्तलेखों की सूचना मिलती है। ये गृह्यसूत्र हैं—1 शौनक गृह्यसूत्र तथा 2 पाराशर गृह्यसूत्र। इनके अतिरिक्त भारवीय गृह्यसूत्र, शाकल्य गृह्यसूत्र तथा पैंगी गृह्यसूत्र के उल्लेख यत्र तत्र मिलते हैं।[113]

(2) शुक्ल यजुर्वेदीय गृह्यसूत्र

इस शाखा का निम्नलिखित एक ही गृह्यसूत्र प्राप्त है।

पारस्कर गृह्यसूत्र

शुक्ल यजुर्वेद का केवल एक ही गृह्यसूत्र उपलब्ध है जो पारस्कर गृह्यसूत्र नाम से प्रसिद्ध है। यह गृह्यसूत्र 'कातीय गृह्यसूत्र' नाम से भी पुकारा जाता है। भाष्यकार जयराम ने प्रारम्भिक श्लोकों में इसे कातीय गृह्यसूत्र ही कहा है—

'तत्पादद्वयकस्पृशा कृतमिदं कातीयगृह्यस्य सद्भाष्यं
सज्जनवल्लभं सुविदुषा प्रेष्ठ शिवप्रीतये।'

हरिहर ने अपने भाष्य के प्रारम्भ में इसे पारस्कर कृत गृह्यसूत्र कहा है—

पारस्कृते गृह्यसूत्रे व्याख्यानपूर्विकाम्।
प्रयोगपद्धतिं कुर्वे वासुदेवादिसम्मताम्॥

विश्वनाथ ने अपने भाष्य के अन्त में इसे पारस्कर गृह्य कहकर पुकारा है—इति···पारस्करगृह्यसूत्रव्याख्याने तृतीय काण्डं समाप्तम्।'

इस गृह्यसूत्र के लिए इन दोनों नामों का प्रचलन में रहना इस बात का परिचायक है कि यह गृह्यसूत्र कात्यायन सम्प्रदाय का है। कात्यायन श्रौतसूत्र को भी 'कातीय श्रौतसूत्र' कहा जाता है। इस ग्रन्थ का रचयिता पारस्कर है जो कात्यायन शिष्य परम्परा से सम्बन्धित है।

इस गृह्यसूत्र का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा से है।

पारस्कर गृह्यसूत्र बहुत ही लोकप्रिय रहा है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण इस पर लिखे गए भाष्य हैं। इनके पांच भाष्य बहुत प्रसिद्ध हैं—कर्क कृत

(पारस्करगृह्यसूत्रव्याख्या), जयरामकृत (सज्जनवल्लभगृह्य विवरण), हरिहर कृत (पारस्करगृह्यसूत्र व्याख्यान), गदाधरकृत (गृह्यसूत्र भाष्य) तथा विश्वनाथकृत (गृह्यसूत्र प्रकाशिका)।

इस गृह्यसूत्र में तीन काण्ड हैं जो कण्डिकाओं में विभाजित हैं। प्रथम काण्ड में 19, द्वितीय में 17 तथा तृतीय काण्ड में 15 कण्डिकाएं हैं। गृह्यसूत्र के बाद परिशिष्ट और जोड़ा हुआ है जो निश्चित रूप से बाद की रचना है।

विषय की दृष्टि से यह गृह्यसूत्र पूर्ण तथा व्यवस्थित है। सम्भवत: इसीलिए यह गृह्यसूत्र अधिक प्रचलन में रहा है। प्रारम्भिक सूत्रों में होम की तैयारी के नियम दिए गए हैं। द्वितीय कण्डिका में आवसथ्याधानविधि दी है। इसके पश्चात् अर्घविधि, विवाहविधि, औपासनहोम, चतुर्थीकर्म, गर्भधारण, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन नामकरण, अन्नप्राशन आदि संस्कार वर्णित हैं। द्वितीय काण्ड में चूडाकरण, केशान्त, उपनयन, ब्रह्मचारिव्रत, स्नातकव्रत, पंचमहायज्ञ, उपाकर्म, उत्सर्ग, लांगल योजन आदि विधि वर्णित है। तृतीय काण्ड में नवान्नप्राशन, आग्रहायणीकर्म, अष्टका, शालाकर्म, वास्तुशान्ति, शूलगव, वृषोत्सर्ग, उदककर्म, रथारोहण आदि विषय वर्णित हैं। इस गृह्यसूत्र में श्राद्धकर्म का वर्णन नहीं है।

यह गृह्यसूत्र उपर्युक्त पांचों भाष्यों सहित महादेवशर्मा द्वारा सम्पादित प्रथम बार 1917 में तथा पुन: 1982 में मुंशीराम मनोहरलाल द्वारा प्रकाशित है। इससे पूर्व यह स्टेंजलर द्वारा जर्मन अनुवाद के साथ 1976-78 में प्रकाशित हुआ था। ओल्डनबर्ग ने इसका अनुवाद किया है जो सेक्रेड बुक्स् आफ ईस्ट खण्ड 29 में प्रकाशित है।

शुक्ल यजुर्वेद के अन्य गृह्यसूत्र

शुक्ल यजुर्वेद के अन्य गृह्यसूत्र भी रहे होंगे जो सम्भवत: पारस्कर गृह्यसूत्र की लोकप्रियता के कारण लुप्त हो गए।

बैजवाप गृह्यसूत्र नाम से कुछ अंश उपलब्ध हैं। इस गृह्यसूत्र का उल्लेख कुमारिल भट्ट ने तन्त्रवार्तिक में (1 3 10) तथा 9वीं तथा 16वीं शताब्दी के मध्य में हुए सूत्र भाष्यकारों ने किया है।

'शाण्डिल्य गृह्यसूत्र' नाम से भी कुछ उल्लेख मिलते हैं। यह गृह्यसूत्र उपलब्ध नहीं है।

यजुर्वेद शाखा के अन्य गृह्यसूत्र जिनके नामों का उल्लेख मिलता है, वे हैं, माविल गृह्यसूत्र तथा मैत्रेय सूत्र।[118]

(3) कृष्ण यजुर्वेद के गृह्यसूत्र

कृष्ण यजुर्वेद की तीन संहिताओं से सम्बन्धित गृह्यसूत्र उपलब्ध हुए हैं—

1 तैत्तिरीय सहिता 2 काठक सहिता तया 3 मैत्रायणी सहिता।

तैत्तिरीय संहिता के गृह्यसूत्र

तैत्तिरीय सहिता से सम्बन्धित सबसे अधिक गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं जिनका विवरण इस प्रकार है।

बौधायन गृह्यसूत्र

बौधायन गृह्यसूत्र बौधायन कल्प का एक अग है। इसकी भाषा-शैली से प्रतीत होता है कि बौ० गृ० सू० का रचयिता वही व्यक्ति है जिसने बौधायन श्रौतसूत्र की रचना की है।

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित यह गृह्यसूत्र सभी गृह्यसूत्रों मे प्राचीन है। मूल गृह्यसूत्र म चार प्रश्न हैं परन्तु इस गृह्यसूत्र के साथ परिभाषासूत्र गृह्य शेषसूत्र तथा पितृमेधसूत्र और जुडे हुए हैं जो निश्चित रूप से बाद के हैं।

इस गृह्यसूत्र म सात पाकयज्ञों का उल्लेख है, यथा—1 हुत, 2 प्रहुत, 3 आहुत 4 शूलगव, 5 बलिहरण, 6 प्रत्यवरोहण तथा 7 अष्टकाहोम। हुत के अन्तर्गत विवाह स लेकर समावर्तन सस्कार तक, प्रहुत के अन्तर्गत जातकर्म तथा चूडाकर्म, आहुत के अन्तर्गत उपनयन और समावर्तन सस्कारो का विधान है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत घर म शान्ति, सुख और समृद्धि बढाने के लिए यज्ञों का वर्णन है जैसे वास्तुशमन (3 5) अद्भुतशान्ति (3 16) आयुष्यचरु (3 7) अष्टमीव्रत (3 8) आदि। बलिहरण प्रकरण के अन्तर्गत सर्पबलि आदि का विधान है। अष्टकाहोम के अन्तर्गत आभ्युदयिक श्राद्ध आदि का विवरण है। चतुर्थ प्रश्न में प्रायश्चित्तों का विवरण है।

इस गृह्यसूत्र के साथ जोडे हुए भाग गृह्यपरिभाषा सूत्र म दो प्रश्न हैं जिनमें 23 अध्याय हैं। इस सूत्र म ऐसे विषय लिये गए हैं जिन्हें मूल गृह्यसूत्र म नहीं लिया गया है, जैसे ब्रह्मचर्य व्याख्यान, पाकयज्ञ, अग्न्याधेय, व्रतस्नातक आदि। परन्तु कुछ विषयो को जो मूल गृह्यसूत्र म ले लिए गए हैं, यहा पुन लिया गया है। इस भाग मे अनेक उद्धरण दिए गए हैं जिनके मूल स्रोत का ज्ञान नहीं हो सका है।

'गृह्यशेषसूत्र म, जो मूलगृह्य सूत्र क साथ तृतीय स्थान पर जोडा गया है, वर्णित यज्ञों म से कुछ तो वैदिक हैं तथा कुछ उत्तर वैदिक। उत्तरवैदिक देवताओं मे शिव, दुर्गा, स्कन्द, विष्णु आदि हैं जिनकी पूजा का विधान पौराणिक काल की पूजा पद्धति से मिलता-जुलता है। विष्णु का स्नान, महापुरुष की पूजा, विष्णु के केशव, गोविन्द, नारायण आदि बारह नाम, रुद्राभिषेक, प्रतिमा की प्रतिष्ठा (2 16 2 19) लक्ष्मी, सरस्वती, विनायक आदि की पूजा, इस सूत्र को बाद मे

जोडा गया ही सिद्ध करते हैं।

बाद मे जोडे गए तीनो खण्ड किसी एक व्यक्ति की रचना नही हैं, अपितु भिन्न भिन्न समय पर सशोधित और परिवर्धित किए प्रतीत होते हैं। जे० गोडा इन्हे भगवद्गीता से बाद मे लिखा हुआ मानते हैं।[117] बौधायन गृह्यसूत्र डॉ० आर० सामशास्त्री द्वारा सम्पादित मैसूर (1920) से प्रकाशित है। इससे पूर्व एल० श्रीनिवासाचार्य द्वारा सम्पादित 1904 मे लेडन (Leiden) से प्रकाशित हुआ था।

भारद्वाज गृह्यसूत्र

भारद्वाज गृह्यसूत्र तैत्तिरीय सहिता स सम्बन्धित होते हुए भी स्वतन्त्र रूप स विकसित हुआ है। यह कृति भारद्वाज श्रौतसूत्र के रचयिता की नही हो सकती क्योकि भारद्वाज श्रौतसूत्र आपस्तम्ब और हिरण्यकेशि सूत्रो का आधार ग्रन्थ है और इनसे अधिक भिन्न नही है। परन्तु भारद्वाज गृह्यसूत्र अपने वर्ग के गृह्यसूत्र आपस्तम्ब तथा हिरण्यकेशि-गृह्यसूत्रो के समान नही है। यदि यह उसी व्यक्ति की रचना होती जिसने भा० श्रौ० सू० की रचना की थी तो आपस्तम्ब और हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र श्रौ० सू० के समान उसी के गृह्यसूत्र का अनुकरण करते। परन्तु वास्तव मे ऐसा नही है।

इस गृह्यसूत्र म तीन प्रश्न हैं। प्रत्येक प्रश्न उपभागो मे बटा हुआ है। इस सूत्र का प्रारम्भ उपनयन' से होता है जबकि इसके पूर्ववर्ती बौधायन गृह्यसूत्र मे सर्वप्रथम सप्त यज्ञो का उल्लेख है। इस सूत्र म विषय-क्रम उचित नही है। इसम एक विषय के बीच मे ही दूसरे विषयों से सबधित सूत्र आ गैए हैं।

विवाह् सस्कार के अन्तर्गत कन्या की योग्यता के लिए 'प्रज्ञा' शब्द का प्रयाग किया गया है।[118] डॉ० सेलोमन्स का मत है कि वह मूल रूप मे 'प्रजा' रहा होगा क्योकि कन्या के विवाह का मुख्य उद्देश्य प्रजा ही है। इस आधार पर वे इस सूत्र को बाद का मानते हैं।[119] डॉ० रामगोपाल[120] ने उनके मत से सहमति व्यक्त नही की क्योकि अन्य गृह्यसूत्रो म भी 'प्रज्ञा' को वधू का आवश्यक गुण माना है।[121] यद्यपि डॉ० रामगोपाल का मत युक्तियुक्त है परन्तु भारद्वाज, गृ० सू० के इस सूत्र मे 'प्रजा' पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है क्योकि तभी इसकी सगति अगले वाक्य से बैठती है—'अर्थतदपर न खल्वियमर्येम्य ऊह्यते। प्रजननार्थोऽस्यो प्रधान। स योऽस्ल सलक्षणाय स्यात्स तामावहेत यस्यां प्रशस्ता जायेग्न्।

भारद्वाज गृह्यसूत्र का अधिक प्रचलिन नही रहा है।

डॉ० सेलोमन्स के अनुसार भा० गृ० सू० का एक भाष्य भी उपलब्ध है। इस भाष्य मे अनेक गृह्य सूत्रकारो यथा हिरण्यकेशी, आपस्तम्ब, आश्वलायन, बौधायन, याज्ञवल्क्य, मनु तथा कपर्दिस्वामी के नाम दिए हैं। इनके अतिरिक्त बौधायन

धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र तथा हलायुध के नाम भी दिए है। इसम भारद्वाज धर्मसूत्र का भी उल्लेख है जो सम्भवत: अब नष्ट हो गया है।

इस भाष्यकार का नाम नहीं दिया गया है।

यह गृह्यसूत्र H J W Salomons क सम्पादन म 1913 मे प्रकाशित हुआ जिसका पुनर्मुद्रण 1981 म मेहरचन्द लक्ष्मनदास दिल्ली ने किया है।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र तैत्तिरीयशाखा स सम्बन्धित आपस्तम्ब कल्प का 27वा प्रश्न है। 26वें प्रश्न म इस गृह्यसूत्र स सम्बन्धित मन्त्रा का सकलन है। यह गृह्यसूत्र आठ पटलो तथा 23 खण्डों म विभाजित है।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र अपन स पूर्ववर्ती श्रौतसूत्र और मन्त्रपाठ को ध्यान म रखत हुए लिखा गया है। इसम क्वल काय विधायक सूत्र दिए गए हैं, कार्य स सम्बन्धित मन्त्र नहीं दिए गए हैं। इसका कारण यह है कि मन्त्रपाठ (प्रश्न 26) म सकलित मन्त्रा का बुद्धिस्थ रखा गया है। आपस्तम्बीय कल्पक सभी अगा का रचयिता एक ही व्यक्ति था, या भिन्न-भिन्न, इस विषय म विद्वानो म मतैक्य नहीं है। ब्यूलर के अनुसार इन सभी अगा का रचयिता एक ही व्यक्ति था। इस पक्ष के समर्थन में उनका मुख्य तर्क यह है कि आपस्तम्ब-गृह्यसूत्र बहुत छोटा है और गृह्य यज्ञो की रूप-रखा मात्र ही दता है। इसक पीछ ग्रन्थकर्त्ता का उद्देश्य यह था कि धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र के लिए स्थान रखा जा सक। दूसरा तर्क यह है कि इन अगो म परस्पर सन्दर्भ मिलत हैं जो एक-दूसर क परस्पर सबध का सिद्ध करत हैं। जैसे धर्मसूत्र 1 1 4 16 तथा 2 7 12 16 'यथोपदशम्' क द्वारा गृह्यसूत्र की ओर ही संकेत करते हैं।[122] व्याख्याकार हरदत्त न भी इस ओर सकेत किया है। दूसरी ओर गृह्यसूत्र म भी ऐसे विषयो क सन्दर्भ यथापदशम्' कहकर दिए हैं जो धर्मसूत्र मे मिलत हैं। जैसे आ० गृ० सू०—8 21 1

मासिश्राद्धस्यापरपक्षे यथोपदश काला'।

श्राद्धकाल स सम्बन्धित सूत्र धर्मसूत्र क द्वितीय प्रश्न की 16वी कण्डिका मे मिलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि आपस्तम्ब कल्प के रचयिता न गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र दोना लिखकर परस्पर सन्दर्भ बाद म दिए हैं। प्रो० ओल्डनबर्ग न सामान्यत: इस सिद्धात का खण्डन किया है कि गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र एक ही व्यक्ति के द्वारा लिखे गए हैं।[123] आपस्तम्ब गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र क सबध क विषय म उन्होन ब्यूलर के मत को सम्मान तो दिया है[124] परन्तु अपनी असहमति प्रकट करते हुए एक और सम्भावना प्रकट की है कि य दोनों सूत्र भिन्न-भिन्न व्यक्तिया क द्वारा लिखे गए हैं जिनमें से कोई-सा एक, दूसरे का जानता है।[125]

परन्तु ओल्डनबर्ग का मत तथ्यों पर कम और अनुमान पर अधिक आश्रित है। सम्पूर्ण कल्प की शैली बहुत समान है। भाषा की भी समानता है। अतः यह सम्पूर्ण कल्प एक ही व्यक्ति के द्वारा लिखा गया है, इस मत में कोई दोष प्रतीत नही होता।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र पर हरदत्त मिश्र की 'अनुकूला' टीका तथा सुदर्शनाचार्य की तात्पर्यदर्शन टीका उपलब्ध है जो चौखम्बा द्वारा डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय के सम्पादन मे प्रकाशित है।

हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र

हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र तै० शाखा के हिरण्यकेशि (सत्याषाढ) कल्पसूत्र के 19वें और 20वें प्रश्न मे निहित है। इस सूत्र की विशेषता यह है कि उसमे विनियोज्य मन्त्र प्रतीको मे नही दिए गए हैं अपितु पूर्ण रूप मे दिए गए हैं।

हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र मे मौलिकता बहुत कम है। इसमे आपस्तम्ब गृह्यसूत्र का अनुकरण किया गया है। परन्तु अनुकरण अक्षरशः नहीं है। इसमे विषयो के क्रम को बदल दिया गया है तथा अधिक विस्तार से विषय निरूपण किया गया है। इसमे अनेक ऐसे विषय भी ले लिये गए हैं जो धर्मसूत्र मे आने चाहिए।[126] इस गृह्यसूत्र मे बौधायन तथा भारद्वाज गृह्यसूत्र से भी ग्रहण किया गया है।

उपलब्ध गृह्यसूत्र के वर्तमान स्वरूप के विषय मे विद्वानो का मत है कि इसमें कुछ भाग बाद का जोडा गया है। डॉ० किर्स्ते के अनुसार प्रथम प्रश्न का 26वा खण्ड तथा द्वितीय प्रश्न के अन्तिम तीन खण्ड बाद मे जोडे गए हैं। इस मत के समर्थन मे मुख्य तर्क यह है कि हिरण्यकेशि-गृह्यसूत्र के भाष्यकार मातृदत्त ने इस खण्ड पर भाष्य नही किया है। अन्तिम तीन खण्डो (18, 19 तथा 20) के विषय मे डॉ० किर्स्ते का कथन है कि भाष्यकार ने द्वितीय प्रश्न के 17वें खण्ड के अन्त मे लिखा है—'समाप्तानि च गृह्यकर्माणि।'[127] परन्तु जैसा कि डॉ० रामगोपाल ने ध्यान आकृष्ट किया है, आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज से श्रौतसूत्र के साथ प्रकाशित मातृदत्त के भाष्य में यह वाक्य नही मिलता है। वहा यह पाठ है—'समाप्तमाग्रायणीकर्म।'[128] मातृदत्त ने इन तीनो खण्डो पर भाष्य लिखा है जिससे किर्स्ते का मत स्वतः ही निरस्त हो जाता है। प्रो० ओल्डनबर्ग का मत है कि उपाकरण और उत्सर्जन संस्कार, जो इन खण्डों मे वर्णित हैं आपस्तम्ब गृह्यसूत्र म नही हैं।[129] परन्तु इसका अर्थ यह नही कि ये अश प्रक्षिप्त है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हिरण्यकेशि-गृह्यसूत्र मे भारद्वाज गृह्यसूत्र से भी ग्रहण लिया गया है। ये दोनों संस्कार भारद्वाज गृह्यसूत्र (3 8 11) में वर्णित हैं। भाषा भी लगभग समान है। उत्सर्जन के स्थान पर विसर्जन शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें इन खण्डों को प्रक्षिप्त मानना उचित नहीं है।

हिरण्यकेशि-गृह्यसूत्र पर मातृदत्त का भाष्य उपलब्ध है जो आनन्दाश्रम में प्रकाशित 'सत्याषाढ श्रौतसूत्र' के अन्तर्गत प्रकाशित है। यह गृह्यसूत्र पृथक् रूप में भी डॉ॰ किर्स्ते द्वारा मातृदत्त के भाष्य सार सहित वियना से (1889) प्रकाशित है। डॉ॰ आल्डनबर्ग ने इस गृह्यसूत्र का अंग्रेजी अनुवाद भी किया है जो सेक्रेट बुक्स ऑफ ईस्ट खण्ड 30 में प्रकाशित है।

वैखानस गृह्यसूत्र

वैखानस गृह्यसूत्र तैत्तिरीय संहिता के वैखानस कल्पसूत्र का अंग है। पूर्ण कल्प के 32 प्रश्नों में से प्रथम सात प्रश्न गृह्यसूत्र से सम्बन्धित हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है वैखानस कल्प में गृह्यसूत्र को पहले स्थान पर रखा गया है जबकि अन्य कल्पसूत्रों में गृह्य भाग को दूसरे स्थान पर रखा जाता है।

वैखानस श्रौतसूत्र के भाष्यकार वेंकटेश के अनुसार वैखानस तैत्तिरीय शाखा के औखेय चरण[130] से सम्बन्धित थे—

येन वेदार्थं विज्ञाय लोकानुग्रहकाम्यया।
प्रणीतं सूत्रमौखेयं तस्मै वैखानसे नमः॥

औखेय सूत्र से तात्पर्य सम्भवतः वैखानस सूत्र से ही है परन्तु पूर्ण वैखानस कल्प से या उसके किसी अंग से यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

वैखानस गृह्यसूत्र में मन्त्रों को प्रतीकों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है केलेंड ने 'मन्त्रसंहिता वैखानसीय' के हस्तलेख की सूचना दी है। वैखानस सूत्र में निर्दिष्ट मन्त्रों की सूची इसमें दी गई है। वैखानस सूत्र इसी मन्त्रसंहिता से मन्त्रों को उद्धृत करता है या इस संहिता में वैखानस सूत्र में प्रयुक्त मन्त्र बाद में संकलित कर दिए गए हैं, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

विषय वस्तु की दृष्टि से यह सूत्र बहुत बाद का प्रतीत होता है क्योंकि इसमें इस प्रकार के प्रकरण दिए गए हैं, जो प्राचीन गृह्यसूत्रों में उपलब्ध नहीं हैं।

वैखानस गृह्यसूत्र के प्रथम अध्याय में स्नातक, गृहस्थ आदि के स्नान तथा तर्पण की विधि दी गई है। दूसरे अध्याय में नान्दीमुख श्राद्ध, तीसरे अध्याय में विवाह, गर्भाधान, जातकर्म आदि संस्कारों का वर्णन है चतुर्थ अध्याय में स्थालीपाक, आग्रयण, अष्टका, पिण्डपितृ-यज्ञ, श्राद्ध, चैत्री तथा आश्वयुजी यज्ञों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त विष्णु की पूजा तथा ग्रह-पूजा का भी विधान है। विष्णु के साथ-साथ लक्ष्मी पूजन का भी विधान है। विष्णु की प्रतिमा आदि की स्थापना और उसके पूजन का भी विधान है। ये सब विधान वैखानस सूत्र को बाद का सिद्ध करते हैं।

इस सूत्र के काल के विषय में तथा अन्य विवरण के लिए देखें वैखानस श्रौतसूत्र।

आग्निवेश्य गृह्यसूत्र

आग्निवेश्य गृह्यसूत्र तैत्तिरीय सहिता से सम्बन्धित वाधूल शाखा की एक उपशाखा का गृह्यसूत्र है। इस बात की पुष्टि 'वाधूलगृह्यकल्प व्याख्या' नामक ग्रन्थ के एकअश से होती है।[131] आग्निवेश्य एक प्राचीन वैदिक नाम है। आग्निवेश्य का नाम तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के भाष्य मे मिलता है जहा उसे एक शाखा का प्रवर्तक कहा गया है।[132] बृहदारण्यक उपनिषद मे भी दो बार[133] आग्निवेश्य का नामोल्लेख प्राचीन आचार्यों की सूची मे हुआ है। महाभारत[134] मे भी आग्निवेश्य का नाम एक महान् ऋषि के रूप मे उल्लिखित है।

माधवाचार्य (तेरहवी शताब्दी) ने एक आग्निवेश्य श्रुति का उल्लेख किया है परन्तु अप्पय दीक्षित (16वी शताब्दी के आसपास) ने आग्निवेश्य शाखा की महत्ता को अस्वीकार किया है।

आग्निवेश्य शाखा दक्षिणभारत म प्रचलित थी। आज भी कई तमिलभाषी परिवार आग्निवेश्य परम्परा को मानने वाले हैं। रवि वर्मा के अनुसार इस समय (1940 तक) 11 तमिल परिवार आग्निवेश्य परम्परा से सम्बन्धित है।[135]

अग्निवेश्य गृह्यसूत्र मे तीन प्रश्न हैं। प्रथम प्रश्न मे ब्रह्मचारी के नियम तथा विवाह सस्कार का वर्णन है। दूसरे प्रश्न मे पुसवन से लेकर चौलकर्म तक का वर्णन है। तृतीय प्रश्न मे श्राद्ध, पितृमेध आदि कार्यों का वर्णन है। इस सूत्र मे जहा प्राचीन कल्पसूत्रो के विषय वर्णित हैं वहा धर्मसूत्रो के विषय भी सम्मिलित हैं। इसम अनेक ऐसे विषय भी वर्णित है जो प्राचीन गृह्यसूत्रो के विषयो की कोटि मे नही आते। उदाहरणतया इस गृह्यसूत्र मे 'स्यागर अलकार' का उल्लेख है जिसके अनुसार नववधू के माथे पर स्यागर नामक द्रव्य के लेप से टीका लगाया जाता था। इसी प्रकार रवि कल्प (जिसमे सूर्य की 12 प्रतिमाए बनाकर पूजा की जाती थी) कूष्माण्ड, कौतुक बन्धन, विष्णुबलि, पुनरुपनयन, वायसबलि, वानप्रस्थ तथा सन्यास विधि आदि ऐसे प्रकरण हैं जो गृह्यसूत्र के विषय क्षेत्र से बाहर के हैं।[136]

आग्निवेश्य गृह्यसूत्र न हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र, बौधायन गृह्यशेष सूत्र, बौधायन पितृमेधसूत्र, बौधायनगृह्य परिभाषा सूत्र से बहुत ऋण लिया है। प्राचीन यज्ञ क्रियाओं के लिए उन्होने प्राचीन ग्रन्थो से लिया है और अपना कुछ भी मौलिक नहीं है। जहा मौलिकता है वहा आग्निवेश्य मुख्य सूत्र परम्परा से दूर जाकर पौराणिक परम्पराओ के निकट पहुच जाते हैं। इसमे सप्ताह के दिनों म पूजा का विधान है।[137] ताम्बूल[138] शब्द का भी प्रयोग हुआ है। ताम्बूल चबाने की प्रथा भारत मे बहुत बाद मे आई यह बात पहले ही बताई जा चुकी है।[139] इसलिए यह गृह्यसूत्र भी बहुत बाद का सिद्ध होता है और इसका काल

तीसरी चौथी शताब्दी के आसपास सिद्ध होता है। वर्तमान गृह्यसूत्रों में सम्भवतः यह सबसे बाद का है।

वाधूल गृह्यसूत्र

तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित वाधूल परम्परा का कोई गृह्यसूत्र अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। परन्तु इस परम्परा का गृह्यसूत्र विद्यमान था, इसके पर्याप्त संकेत मिलते हैं। इस परम्परा के मन्त्र संग्रह में गृह्य-कर्मों से सम्बन्धित मन्त्र उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त 'वाधूल गृह्यकल्प व्याख्या' नाम से एक हस्तलिखित व्याख्या केरल से प्राप्त हुई है जो वाधूल गृह्यसूत्र की ओर संकेत करती है। इस व्याख्या में उपनयन तथा पितृमेध से सम्बन्धित अंश उपलब्ध हैं जो वाधूल गृह्यसूत्र से ही सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। व्याख्या में दिए गए उद्धरणों तथा आग्निवेश्य गृह्यसूत्र की परस्पर तुलना से ज्ञात होता है कि वाधूल तथा आग्निवेश्य गृह्यसूत्रों में बहुत निकट का सम्बन्ध था।[127]

मैत्रायणी संहिता के गृह्यसूत्र

कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता से सम्बन्धित दो गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं—
1 मानव गृह्यसूत्र तथा 2 वाराह गृह्यसूत्र

मानव गृह्यसूत्र

मानव गृह्यसूत्र मैत्रायणी शाखा का गृह्यसूत्र है। भाष्यकार अष्टावक्र ने 'मैत्रायणीय-मानवगृह्यसूत्र' कहकर इस पर भाष्य लिखा है। चरणव्यूह के अनुसार मैत्रायणीय शाखा के छह भेदों में से मानव एक भेद है।[128]

भाष्यकार अष्टावक्र के कथन के अनुसार इस गृह्यसूत्र का रचयिता मानवाचार्य था तथा इस सूत्र का नाम पुरुष था—

> सरस्वत्या प्रसादेन यद्यत्कृतवान्पुरा।
> भगवान् मानवाचार्यः पुरुषाख्यं प्रवक्ष्यते ॥[129]

भाष्यकार ने प्रत्येक खण्ड के अन्त में 'पुरुषव्याख्याने' शब्दों का प्रयोग किया है। इस सूत्र का विभाजन सबसे विचित्र है। इसका विभाजन प्रश्नों में न होकर पुरुषों में है। इस गृह्यसूत्र के दो पुरुष हैं। प्रथम पुरुष में 23 खण्ड हैं तथा द्वितीय पुरुष में 18 खण्ड हैं।

मानवगृह्यसूत्र का प्रारम्भ ब्रह्मचारी के व्रतों से होता है जबकि अन्य गृह्यसूत्रों का प्रारम्भ उपनयन या विवाह संस्कार से होता है। प्रथम खण्ड में ब्रह्मचारिप्रकरण के पश्चात् स्नातक के नियम दिए गए हैं जिसके अन्तर्गत विवाह, गर्भाधान, सीमन्तकरण, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, उपनयन, चूडाकर्म आदि विषय

दिए गए हैं। द्वितीय पुरुष मे श्रौतकर्म के अधिकार, आधानकाल, औद्वाहिक कर्म, स्थालीपाक होम, शालाग्नि, पाकयज्ञ, पशुयाग, शूलगव, आग्रहायण, सर्वयाग, श्राद्धकर्म, गृहनिर्माण देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, षष्ठीकल्प, विनायकपूजा बलिदान, शान्ति प्रकरण आदि विषय वर्णित हैं।

भाष्यकार अष्टावक्र द्वारा मानवाचार्य को इस सूत्र का रचयिता माना गया है। परन्तु यह निश्चित नही कहा जा सकता कि मानवाचार्य इस सूत्र का रचयिता था अथवा इस शाखा का प्रवर्त्तक। डॉ० लेले का विचार है कि मानव नाम का आचार्य मानव शाखा का प्रवर्तक था। उनके अनुसार पुरुष और पूरण नाम के व्यक्ति भी क्रमश मानवशाखा और मैत्रायणी शाखा से सम्बन्धित आचार्य थे। उनके अनुसार मानवगृह्यसूत्र किसी एक व्यक्ति की रचना नही अपितु यह भिन्न-भिन्न शाखाओ के व्यक्तियों द्वारा रचा गया है और समय-समय पर इसम सशोधन और परिवर्तन होते रहे हैं।[143] उनके अनुसार व्रतचर्या सन्ध्या तथा उससे अगले चार खण्ड बाद मे जोडे गए हैं। परन्तु लेले ने इस कथन को प्रमाण देकर पुष्ट नही किया है। डॉ० रामगोपाल इन खण्डो को मूल मानत हैं क्योकि काठक गृह्यसूत्र और मानव गृह्यसत्र मे भी प्रारम्भिक खण्ड वही है जो मानवगृह्यसूत्र मे।[144] काठकगृह्यसूत्र और मानव गृह्यसूत्र की समानता पहले ही स्थापित की जा चुकी है और स्वय लेले ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है।[145]

लेले के अनुसार वर्तमान मानवगृह्यसूत्र किसी बहुत प्राचीन मैत्रायणीय गृह्यसूत्र के स्थान पर आया है परन्तु वर्तमान गृह्यसूत्र भी आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि तथा भारद्वाज गृह्यसूत्रो से पहले का है। ड्रेडके के अनुसार मानव श्रौतसूत्र तथा मानव गृह्यसूत्र एक ही व्यक्ति की रचनाए हैं।[146] गार्बे के अनुसार मानवश्रौतसूत्र आपस्तम्ब श्रौतसूत्र से प्राचीन है क्योकि आप० श्रौ० सू० मे कई स्थानो पर मा० श्रौ० सू० का अनुकरण किया है।[147] इस प्रकार मा० गृह्यसूत्र भी आपस्तम्ब गृह्य से प्राचीन सिद्ध होता है।

वाराह गृह्यसूत्र

वाराह गृह्यसूत्र यजुर्वेद की चरक शाखा से सम्बन्धित मैत्रायणी सहिता का सूत्र है। मैत्रायणी सहिता के सभी मन्त्र तथा अनुवाक प्रतीको द्वारा निर्दिष्ट हैं। परन्तु कुछ ऐसे मन्त्र भी हैं जो मैत्रायणी सहिता के नहीं हैं परन्तु प्रतीको द्वारा निर्दिष्ट हैं। उदाहरणतया अश्मा भाव (3 11) शं नो मित्र (1 1 24) श नो देवी (1 4 6) *प्रतीको द्वारा निर्दिष्ट हैं परन्तु ये मैत्रायणी सहिता के नहीं हैं। इनको* प्रतीको मे देने का कारण यह है कि वाराह गृह्यसूत्र (2 5,4 3) म ये पहल पूर्णरूप म आ चुके हैं। कुछ मन्त्र जो मानव गृह्यसूत्र म पूर्ण रूप से दिए जा चुके हैं, वे वाराह गृह्यसूत्र म प्रतीको द्वारा निर्दिष्ट हैं, यथा ब्रह्मणो ग्रन्थिरसि (वा० 5 21,

मानव गृ० 1 22.6) पुन: पत्नीमग्नि (वा० 16 9, मानव 1 11 12)

वाराह गृह्यसूत्र आकार में बहुत छोटा है। इसमें कुल 17 खण्ड हैं। इसमें बाधे से अधिक संस्कार छोड दिए गए हैं। सामान्य संस्कारों के अतिरिक्त 'दन्तोदगमनम्' (3 8) संस्कार अधिक जोड़ा गया है। एक और विशेष बात यह है कि तरहवां खण्ड 'प्रवदन्कर्म' नाम से है जिसमें वाद्यों का मन्त्रों द्वारा संस्कार (सर्वाणि वादित्राण्यभिमन्त्रयते, 13 2) तथा कन्या द्वारा उनका बजाया जाना (सर्वाणि वादित्राण्यलङ्कृत्य कन्या प्रवादयेत 13 3) सर्वथा नया प्रकरण है।

इस गृह्यसूत्र में मौलिकता बहुत कम है। यह मानव गृह्यसूत्र पर अधिक आश्रित है। अनेक सूत्र अक्षरशः मिलते हैं। चूडाकर्म, व्रत वदव्रत, उपाकर्म, उत्सर्जन, समावर्तन, मधुपर्क विवाह, स्थालीपाक तथा गर्भाधान संस्कार वाराह गृह्यसूत्र और मानव गृह्यसूत्र में मिलते-जुलते हैं और एक-दूसरे के समानान्तर चलते हैं।[118] इनके अतिरिक्त काठक गृह्यसूत्र ने भी इसको निकटता है। इनके अतिरिक्त अन्य गृह्यसूत्रों जैसे आश्वलायन गृह्यसूत्र, आपस्तम्ब गृ० सू०, खादिर गृ० सू०, गोभिल गृह्यसूत्र कौषीतक गृ०सू० तथा बौधायन गृह्यसूत्र का भी प्रभाव कहीं कहीं दृष्टिगोचर होता है।

इस गृह्यसूत्र में सबसे पहले मैत्रायणीयसूत्र के 22 परिशिष्टों की गणना की गई है। मैत्रायणी सूत्र से तात्पर्य वाराहसूत्र से ही है। कुछ विद्वान् इस अंश को प्रक्षिप्त मानते हैं।[119]

इस गृह्यसूत्र के काल के विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। डॉ० सामशास्त्री ने इस सूत्र का काल प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी माना है, क्योंकि इस सूत्र में मधुपर्क के समय गाय को मारने का वैकल्पिक विधान है। परन्तु यह विधान तो बौधायन जैसे प्राचीन गृह्यसूत्रों में भी है, इसलिए इस तथ्य को कालनिर्धारण के लिए प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। डॉ० रघुवीर भी डॉ० शास्त्री के मत से सहमत नहीं हैं।[120] इसलिए केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इस सूत्र की रचना वाराह श्रौतसूत्र, मानवगृह्यसूत्र और काठकगृह्यसूत्र से बाद की है। इस समय तक कठ शाखा लुप्त नहीं हुई थी।

यह गृह्यसूत्र पहले डॉ० सामशास्त्री तथा बाद में डॉ० रघुवीर द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित है।

काठक संहिता के गृह्यसूत्र

काठक संहिता से सम्बन्धित एक ही गृह्यसूत्र उपलब्ध है, जो निम्न है।

काठक गृह्यसूत्र

कृष्णयजुर्वेद की काठकसंहिता से सम्बन्धित गृह्यसूत्र काठक गृह्यसूत्र नाम से

प्रसिद्ध है। इस लौगाक्षिगृह्यसूत्र भी कहते है क्योंकि याज्ञवल्क्य स्मृति के व्याख्याकार अपरार्क के अनुसार इस गृह्यसूत्र का रचयिता लौगाक्षि है।[151] कश्मीरी पंडितो की परम्परा भी यही मानती हैं। इस गृह्यसूत्र का प्रचलन कश्मीर मे अधिक रहा है।

इस गृह्यसूत्र मे 13 अध्याय हैं जिनमे ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य, गृहस्थ के लिए निर्धारित यज्ञ, व्रत, कृच्छ्र, उपाकरण, विवाह, जातकर्म, उपनयन आदि सस्कारो का वर्णन है। इस गृह्यसूत्र की विशेष बात यह है कि ग्यारहवे अध्याय मे गृह निर्माण का भी उल्लेख है।

इस गृह्यसूत्र पर आदित्यदर्शन का विवरण, ब्राह्मणबल की पंचिका तथा देवपाल का भाष्य उपलब्ध हैं।

यह गृह्यसूत्र केलेंड द्वारा देवपाल के भाष्य के उद्धरणो सहित लाहौर (1925) से प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त यह गृह्यसूत्र मधुसूदन कौल शास्त्री द्वारा देवपाल के भाष्य सहित श्रीनगर (कश्मीर) से (1928 तथा 1934 मे) लौगाक्षि—गृह्यसूत्र नाम से प्रकाशित है।

काठक गृह्यसूत्र और मानव गृह्यसूत्र मे कुछ समाननाए है। ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य, समावर्तन, उपाकर्म, उत्सर्जन, विवाह, फाल्गुनी तथा ध्रुवाश्वकल्प आदि यज्ञक्रियाए परस्पर मिलती-जुलती हैं।[152] इसका कारण यह है कि काठक और मैत्रायणी सहिताओ का बहुत निकट का सबध है क्योकि चरणव्यूह के अनुसार दोनो का सबध यजुर्वेद की चरक शाखा से है।[153] कालक्रम की दृष्टि से काठक गृह्यसूत्र मानव गृह्यसूत्र से बाद का प्रतीत होता है।

सामवेद के गृह्यसूत्र

सामवेद के निम्नलिखित गृह्यसूत्र प्रकाश मे आए हैं—

गोभिल गृह्यसूत्र

गोभिल गृह्यसूत्र सामवेद की कौथुम शाखा से सबधित है। यह गृह्यसूत्र लाट्यायन श्रौतसूत्र से सम्बन्धित है। इस गृह्यसूत्र की एक विशेषता यह है कि मन्त्र विनियोग के लिए यह दो ग्रन्थो पर आश्रित है—एक तो सामवेद सहिता तथा दूसरा मन्त्रब्राह्मण। मन्त्र ब्राह्मण मन्त्रो का सकलन है जिसमे से लिए गए मन्त्रों का निर्देश गोभिल गृह्यसूत्र मे प्रतीकों के द्वारा किया गया है। प्रो० नोअर (*Knauer*) का मत है कि यह मन्त्र ब्राह्मण पहले से विद्यमान था जिसका उपयोग गोभिल गृह्यसूत्र ने किया।[154] परन्तु ओल्डन वर्ग उपर्युक्त मत से सहमत नही हैं। उनका मत है कि गोभिल गृह्यसूत्र की रचना के उद्देश्य से ही गृह्यसूत्र के साथ-साथ ही मन्त्रब्राह्मण की रचना हुई।[155] अपने मत के पक्ष मे उन्होंने मुख्य तर्क यह

दिया है कि सामवेद के मन्त्र केवल गायन के लिए उपयुक्त हैं। समस्त गृह्यसंस्कारों के लिए सामवेद के मन्त्र पर्याप्त नहीं थे। इसलिए एक नयी मन्त्र संहिता की रचना करनी पड़ी जिसका नाम मन्त्र ब्राह्मण पड़ा। गोभिल गृह्यसूत्र के ध्यान में यह मन्त्र ब्राह्मण था और मन्त्र ब्राह्मण के ध्यान में गोभिल गृह्यसूत्र।[156]

डॉ० रामगोपाल ने डॉ० नौअर के मत को उपयुक्त माना है।[157] उनका मुख्य तर्क यह है कि खादिर गृह्यसूत्र, जो गोभिल गृह्यसूत्र का ही संक्षिप्त रूप है, दो स्थानों पर मन्त्र संहिता की ओर संकेत करता है।[158] खा० गृ० ने स्वयं कहा है कि विवाह से पूर्व स्नान करना चाहिए परन्तु सूत्र में पहले विवाह को रखा गया है क्योंकि मन्त्रों का पाठ इसी क्रम से है।[159]

ठोस प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मन्त्र ब्राह्मण पूर्व का था या समकालीन।

गोभिल गृह्यसूत्र में चार प्रपाठक हैं जो कण्डिकाओं में विभाजित हैं।

इस गृह्यसूत्र पर भट्टनारायण का भाष्य है जो श्रीचिन्तामणि भट्टाचार्य के सम्पादन में प्रथम बार 1936 में तथा दूसरी बार 1982 में (मुंशीराम मनोहरलाल द्वारा) प्रकाशित हुआ है।

खादिर गृह्यसूत्र

खादिर गृह्यसूत्र सामवेद की द्राह्यायण शाखा (राणायणीय) से सम्बन्धित है। यह गोभिल गृह्यसूत्र का ही संक्षिप्त रूप है। इसमें अपना कुछ नवीन नहीं है परन्तु गोभिल गृह्यसूत्र से बढ़कर सिद्ध करने के उद्देश्य से कई सूत्रों को एक स्थान पर लाने का प्रयत्न किया गया है।

इस गृह्यसूत्र का सम्बन्ध गोभिल गृह्यसूत्र से ठीक उसी प्रकार का है जिस प्रकार का द्राह्यायण श्रौतसूत्र का लाट्यायन श्रौतसूत्र से। इस गृह्यसूत्र के रचयिता खादिराचार्य माने जाते हैं।

ओल्डनबर्ग ने इस गृह्यसूत्र को रोमन में अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया है (सेक्रेड बुक्स आफ ईस्ट, खण्ड 19)। ठाकुर उदय नारायण सिंह ने द्राह्यायण गृह्यसूत्र नाम से जो गृह्यसूत्र प्रकाशित किया है वह वस्तुतः खादिर गृह्यसूत्र ही है। द्राह्यायण शाखा का नाम है और खादिर सूत्रकार का।

खादिर या द्राह्यायण गृह्यसूत्र चार पटलों में विभाजित है। पटल खण्डों में विभाजित हैं।

इस गृह्यसूत्र पर रुद्रस्कन्द ने वृत्ति लिखी है जो ठाकुर उदय नारायण सिंह के संस्करण में प्रकाशित है।

जैमिनीय गृह्यसूत्र

जैमिनीय गृह्यसूत्र सामवेद की जैमिनीय शाखा से सबधित है। इसका गोभिल गृह्यसूत्र से बहुत निकट का मबध है परन्तु इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। इस गृह्यसूत्र मे मन्त्रों की सख्या बहुत अधिक है। मन्त्रो का पूर्ण पाठ दिया गया है। अनेक मन्त्र न तो मन्त्र ब्राह्मण मे मिलते हैं और न ही जैमिनीय सहिता मे। ये मन्त्र यजुर्वेद की शाखाओ मे उपलब्ध मन्त्रो के निकट हैं।

इस गृह्यसूत्र के दो भाग हैं—पूर्व तथा उत्तर। पूर्व भाग मे 24 खण्ड हैं तथा उत्तर भाग म 9 खण्ड है। पूर्व भाग म मुख्य रूप से सस्कारो का वर्णन है तथा उत्तर भाग म श्राद्ध, अष्टका, दाह सस्कार, शान्ति क्रिया आदि का वर्णन है। द्वितीय भाग के पिछले चार खण्ड बौधायन गृह्यसूत्र से लिए प्रतीत होते हैं। क्योकि इनकी समानता बौधायन गृह्यसूत्र से है, यथा—

जै० गृ० सू०	बौधायन गृह्यसूत्र
खण्ड 6	1 18
खण्ड 7	3 6
खण्ड 9	1 16

आठवा खण्ड बौधायन धर्मसूत्र 3 9 से मिलता है। केलेड के अनुसार इसकी भाषा जैमिनीय परम्परा के ही अनुकूल है।[160]

कौथुम गृह्यसूत्र

कौथुम शाखा से सम्बन्धित 'कौथुम गृह्य' नाम से एक अन्य गृह्यसूत्र प्रकाशित हुआ है जो अधूरा है। इसमे कुल 21 खण्ड हैं। इसमे विवाह जैसा मुख्य सस्कार भी नही है।

जे० गोडा के अनुसार 'कौथुम गृह्य' किसी प्राचीन 'कौथुम गृह्यसूत्र' का सक्षिप्त रूप है। कौथुम गृह्यसूत्र गोभिल गृह्यसूत्र के कारण लुप्त हो गया।[161] कौथुम गृह्य मे 'अर्केऽन्यादान' जैसे कुछ नवीन प्रकरण भी उपलब्ध हैं जो पूर्व सूत्रों मे नहीं हैं। ये प्रकरण इसके अर्वाचीन होने के परिचायक हैं।

डॉ० रामगोपाल के अनुसार यह कोई गृह्यसूत्र नहीं है अपितु किसी अर्वाचीन पद्धति का अश है।[162]

सामवेद के अन्य गृह्यसूत्र

सामवेद के अन्य गृह्यसूत्र भी रहे होंगे जो आज उपलब्ध नहीं हैं। दो गृह्यसूत्रो का नामोल्लेख मिलता है—गौतम गृह्यसूत्र तथा छान्दोग्य गृह्यसूत्र। गृह्यरत्न मे

गौतमगृह्यसूत्र के नाम से उद्धरण दिए गए हैं परन्तु ये सब उद्धरण खादिर गृह्यसूत्र में उपलब्ध हैं। सम्भव है खादिर गृह्यसूत्र और गौतम गृह्यसूत्र किसी एक स्रोत पर आधारित रहे हों। गोभिल श्राद्धकल्प में छान्दोग्य गृह्यसूत्र का नामोल्लेख है। इसके अतिरिक्त मानव गृह्यसूत्र के भाष्यकार अष्टावक्र भी छान्दोग्य गृह्यसूत्र का नामोल्लेख करता है।

(5) अथर्ववेदीय गृह्यसूत्र

कौशिक सूत्र

अथर्ववेद का केवल एक ही गृह्यसूत्र उपलब्ध है जो कौशिक सूत्र नाम से प्रसिद्ध है। यह अथर्ववेद की शौनक शाखा से सम्बन्धित है। यह गृह्यसूत्र अन्य सब गृह्यसूत्रों से विचित्र है। इसमें गृह्य यज्ञों और संस्कारों के अतिरिक्त आभिचारिक क्रियाओं का वर्णन है।[153]

कौशिक सूत्र में 14 अध्याय हैं जिनमें 141 कण्डिकाएं हैं। इस सूत्र की भाषा कठिन है तथा विषय भी जटिल है। केलेंड ने केवल प्रथम 52 कण्डिकाओं का ही अनुवाद किया है। इस सूत्र में गृह्यसूत्र का विषय गौण और आभिचारिक क्रियाओं का मुख्य है।

कौशिक सूत्र के समय और स्थान के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। भाषा के आधार पर यह कृति वैतान सूत्र से निश्चित रूप से पूर्व की है। इसके वर्तमान रूप के विषय में विद्वानों का मत है कि यह भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा परिवर्धित कृति है। कौशिक को अथर्ववेद परिशिष्ट का भी रचयिता माना जाता है।

इस सूत्र पर दारिल द्वारा रचित भाष्य तथा केशव द्वारा रचित पद्धति उपलब्ध है।

परम्परा के अनुसार अथर्ववेद के पांच कल्प माने गए हैं—1 वैतान, 2 कौशिक, 3 नक्षत्र, 4 शान्ति तथा 5. आंगिरसकल्प। पिछले तीन कल्प केवल पद्धति मात्र रहे हैं परन्तु इनको भी सम्मान मिला है।[154]

3 धर्मसूत्र

धर्मसूत्र कल्प वेदांग का तीसरा महत्त्वपूर्ण भाग है परन्तु सभी धर्मसूत्र अपनी शाखा से उतनी घनिष्ठता से जुड़े हुए नहीं हैं जितनी घनिष्ठता से श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र जुड़े हुए हैं। प्रत्येक शाखा का अपना धर्मसूत्र हो ही, यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हम केवल कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के बौधायन,

आपस्तम्ब तथा हिरण्यकेशि-धर्मसूत्र ही प्राप्त हुए है जो अपनी शाखा के श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र से सुसम्बद्ध हैं तथा प्रत्येक कल्प के सभी अग एक ही व्यक्ति की कृति माने गए हैं।

यह एक विवाद का विषय है कि क्या प्रत्यक शाखा के पृथक् पृथक् धर्मसूत्र विद्यमान थे जो हमे आज उपलब्ध नही हैं या कुछ शाखाए किसी अन्य शाखा के धर्मसूत्रो से अपना काम चलाती थी। बौधायन धर्मसूत्र म इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि धर्म का उपदेश प्रत्येक वेद मे होता था—उपदिष्टो धर्म प्रतिवेदम् (1 1 1 1)। कुमारिल ने तन्त्रवार्तिक मे जैमिनि 1 3 11 पर यह बताया है कि सभी धर्मसूत्र तथा गृह्यसूत्र सभी आर्य लोगो के लिए मान्य थे। यह सम्भव है कि एक ही शाखा क विभिन्न चरणा का एक ही धर्मसूत्र होता हो या किसी अन्य शाखा के धर्मसूत्र को दूसरी शाखा के द्वारा अपना लिया जाता हो। कुछ धर्मसूत्रो का अपना स्वतन्त्र रूप प्रतीत होता है जो किसी शाखा विशेष से जुडे हुए प्रतीत नहीं होते। ये धर्मसूत्र हैं गौतम, वसिष्ठ तथा विष्णु। धर्मसूत्रो म समाज के सामान्य जीवन और आचार से सम्बन्धित नियम वर्णित हैं जो सभी शाखाओ के लिए मान्य होते थे। अत धर्मसूत्रो का शाखा से स्वतन्त्र होना और सभी धर्मसूत्रो का प्रत्येक शाखा के लिए मान्य होना स्वाभाविक ही है। वसिष्ठ धर्मसूत्र मे यह स्पष्ट लिखा है कि आर्यावर्त देश मे जो धर्म और आचार है वे सर्वत्र मान्य हैं—

तस्मिन्देशे ये धर्मा ये चाचारास्त सर्वत्र प्रत्येतव्या।

(वसिष्ठ धर्मसूत्र 1 10)

धर्मसूत्रो का वर्ण्य विषय

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, धर्मसूत्रो का वर्ण्य विषय धर्म का उपदेश करना है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे धर्म का विशेषण 'सामयाचारिक' प्रयुक्त किया गया है—अथात सामयाचारिकान् धर्मान् व्याख्यास्याम (1 1 1 1)। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के वृत्तिकार हरदत्त न सामयाचारिक पद की व्याख्या इस प्रकार की है—'समयमूला आचारास्समयाचारा तेपु भवा सामयाचारिका' अर्थात्—जो आचार समय पर आश्रित हो उसे समयाचार कहते हैं। समयाचार से सम्बन्धित जो धर्म हो उसे सामयाचारिक धर्म कहते हैं। उन्होने पुरुष द्वारा बनाई गई व्यवस्था को समय कहा है—पौरुषेयी व्यवस्था समय। वेदो को अपौरुषेय कहा गया है। वेदो स भिन्न जो भी शास्त्र हैं वे सब पौरुषेय हैं, अर्थात् मनुष्यो द्वारा रचित हैं। समाज के सम्यक् सचालन के लिए मनुष्यों द्वारा जो व्यवस्था बनाई जाए वह ही पौरुषेयी व्यवस्था कहलाती है। इसी को समय कहते हैं। हरदत्त ने समय को तीन प्रकार का बताया है—विधि, नियम तथा प्रतिषेध। जो किसी कार्य को करने की ओर प्रवृत्त करे वह विधि है, जो हमारी क्रियाओं को नियमित करे वह नियम तथा जो

किसी कार्य का न करने का आदेश दे वह प्रतिषेध होता है।"[164]

धर्म का मुख्य उद्देश्य है लोक कल्याण। वसिष्ठ धर्मसूत्र म पहले ही सूत्र मे धर्मजिज्ञासा का हेतु लोक कल्याण बताया है—अथात पुरुषनिःश्रेयसार्थं धर्मजिज्ञासा (वसिष्ठ धर्मसूत्र 1 1)

संस्कृत वाङ्मय म धर्म शब्द का बहुत व्यापक अर्थ रहा है। धर्म शब्द बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद म अनेक अर्थों में धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है।[165] परन्तु धर्मसूत्रों म वर्णित विषय के आधार पर धर्म शब्द स तात्पर्य उस कार्य व्यवस्था से लिया जा सकता है जिसके द्वारा सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन सुचारु रूप स चल सके। आपस्तम्ब धर्मसूत्र म बड़े स्पष्ट शब्दों में धर्म की परिभाषा की गई है कि जिस कार्य की सज्जन प्रशंसा करें वह धर्म तथा जिसकी निन्दा करें वह अधर्म होता है—य त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मो, यं गर्हन्ते, सोऽधर्मः (11 7 20 7)।

धर्म का आधार यद्यपि वेद तथा स्मृति बताये गए हैं परन्तु शिष्टों के आचरण का धर्म के रूप म सर्वाधिक प्रामाणिकता मिली है। लगभग सभी धर्मसूत्रों में श्रुति, स्मृति तथा शिष्टों का आचरण धर्म का आधार माना गया है, यथा—वसिष्ठ धर्मसूत्र—श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः, तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् (1.4 5), बौधायन धर्मसूत्र—उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम् तस्यानु व्याख्यास्यामः, स्मार्तो द्वितीयः, तृतीयः शिष्टागमः (1 1 1 4), गौतम धर्मसूत्र—ॐ वेदो धर्ममूलम्, तद्विदां च स्मृतिशीले, आपस्तम्ब धर्मसूत्र—धर्मज्ञसमयः प्रमाणम्, वेदाश्च (1 1 1 2-3)। मनुस्मृति म भी आत्मतुष्टि के अतिरिक्त इन्हीं तीनों आधारों को प्रमाण माना है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च। (मनु० 2 6)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि शिष्टों के आचरण को वेदों के समकक्ष प्रामाणिकता मिली है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में तो धर्मज्ञ के आचार को वेदों स भी अधिक प्राथमिकता मिली है। व्यक्ति के आचार और गुण ही उसको शिष्ट या अशिष्ट की कोटि म लाते हैं। बौधायन धर्मसूत्र म उन व्यक्तियों को शिष्ट कहा है जो ईर्ष्या, द्वेष से मुक्त हों, अहंकारी नहीं हो, केवल आवश्यकता के अनुसार ही संग्रह करने हों, लालची न हो, दम्भ दर्प, लोभ, मोह, क्रोधादि दोषों से मुक्त हो—

शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहंकाराः कुम्भीधान्याः।
अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः। (1 1 1 5)

शिष्ट व्यक्तियों का मन भी निर्मल होता है। मनुस्मृति म व्यक्ति के हृदय को भी प्रमाण माना है—

विद्वद्भि सेवित' सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिर्भि ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्त निबोधत ॥(मनु० 2.1)

धर्मसूत्रो मे न केवल मनुष्य के वैयक्तिक आचारो का वर्णन किया गया है अपितु समस्त समाज के प्रति परस्पर क्या कर्त्तव्य और दायित्व है, उसका सम्यक् निरूपण किया गया है। राजधर्म, दण्डव्यवस्था, प्रायश्चित्त आदि विषय भी वर्णित हैं। धर्मसूत्र मुख्य रूप से न्याय-ग्रथ माने जा सकते हैं। उस समय की न्याय व्यवस्था का व्यवस्थित रूप हम धर्मसूत्रो मे ही उपलब्ध होता है।

धर्मसूत्रो के विषय को मुख्य रूप से तीन भागों मे विभाजित किया गया है— वर्णधर्म, आश्रमधर्म, तथा नैमित्तिक धर्म। मनुस्मृति के व्याख्याकार मेधातिथि ने धर्मशास्त्र के विषय को पाच भागो मे विभाजित किया है[167]—1 वर्णधर्म, 2 आश्रमधर्म, 3 वर्णाश्रम धर्म, 4 नैमित्तिकधर्म तथा 5 गुणधर्म। गौतमधर्मसूत्र के वृत्तिकार हरदत्त ने भी *धर्म को पाच भागों मे विभजित किया है*—

पचविधो धर्म—वर्णधर्म आश्रमधर्म उभयधर्मो गुणधर्मो नैमित्तिकधर्मश्चेति।

धर्मसूत्रों मे कुछ विषय ऐसे हैं जो गृह्यसूत्रो मे भी मिलते हैं यथा उपनयन, अनध्याय, विवाह, श्राद्ध, पच महायज्ञ, प्रायश्चित्त आदि।

सभी धर्मसूत्रो मे सामान्य रूप से वर्णित विषयो के आधार पर धर्मसूत्रो के वर्ण्यविषय को निम्नलिखित कोटियो मे बाटा जा सकता है—1 याज्ञिक धर्म, यथा—उपनयन, विवाह, श्राद्ध, महायज्ञ, प्रायश्चित आदि, 2 वर्णधर्म—यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य वर्गो के धर्म, 3 आश्रमधर्म, यथा— ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासी के धर्म, 4 स्त्रीधर्म, 5 स्नातक धर्म, 6 राजधर्म 7 दण्डधर्म, 8 दायभाग, 9 न्यायाधिकरण, 10 वैयक्तिक आचार तथा 11 सामाजिक धर्म।

धर्मसूत्रो का उद्गम और विकास

जैसाकि पहले बताया जा चुका है प्रत्येक धर्मसूत्र वेदो को आधार मानकर *रचा गया है। इससे स्पष्ट है कि धर्मसूत्रो का उद्गम-स्थान* वेद *ही हैं। वेदो मे* अनेक स्थान पर धर्मशब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद मे कम-से-कम 58 *बार धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है।*[168] *एक स्थान पर अश्विनीकुमारो के लिए* धर्मवन्ता[169] (धर्मवन्तौ) विशेषण का प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि धर्म का *आचरण अर्थ मे प्रयोग ऋग्वेद काल से ही होने लगा था। एक अन्य स्थान पर* विप्र के लिए धर्मकृत् शब्द का प्रयोग हुआ है—

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥[170]

ऋग्वेद के अतिरिक्त, अन्य संहिताओं में भी धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है।[71] ब्राह्मण और उपनिषद् काल में धर्म शब्द व्यवस्था के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा था और धर्म को वैज्ञानिक स्वरूप दिया जाने लगा था। छान्दोग्योपनिषद् का यह सन्दर्भ उल्लेखनीय है—

त्रयो धर्मस्कन्धा—यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एवेति द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुले ऽवसादयन्।

(छान्दोग्योपनिषद् 2 23)

ब्राह्मण और उपनिषद् काल में यद्यपि धर्म-व्यवस्था ने वैज्ञानिक रूप लेना प्रारम्भ कर दिया था परन्तु धर्मविषयक नियमों को ग्रन्थबद्ध करने का कार्य सूत्रकाल में ही हुआ। उपनिषद् काल तक धर्म के सिद्धान्त इधर-उधर बिखरे पड़े थे। उन्हें एकत्रित करने की आवश्यकता थी। समाज की जटिलताएं प्रतिदिन बढ़ती जा रही थीं। प्राचीन मानदण्ड पर्याप्त नहीं थे। प्रतिदिन नई-नई समस्याएं उत्पन्न हो रही थीं। उन्हें सुलझाने के लिए सामाजिक जीवन को नियमित करना आवश्यक था। अनेक प्रकार के विवादों को निपटाने के लिए एक न्याय-व्यवस्था का होना आवश्यक था। राजा प्रजा के हित का पूरा ध्यान रखे, इसलिए राजा के कार्यों को नियमित करने की आवश्यकता पड़ी। प्रजा के समाज, राज्य और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य भी थे, इसीलिए उनके लिए भी आचार संहिता निर्धारित करना आवश्यक था। इसीलिए सभी धर्मों को नियमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ रचे जाने लगे। क्योंकि इस काल में सूत्र शैली को अधिक उपयुक्त माना जाता था, इसीलिए धर्म-नियमों को भी सूत्र शैली में ही लिखा गया था। ये ग्रन्थ धर्मसूत्र कहलाए।

प्रारम्भ में प्रत्येक वैदिक शाखा के लिए एक धर्मसूत्र था, जैसा कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र के इस वाक्य से स्पष्ट है— उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम् (1 1 1)। प्रत्येक वैदिक शाखा ने सम्बन्धित सभी श्रौत, गृह्य तथा धर्म सम्बन्धी नियमों को एक स्थान पर संकलित करके एक पूर्ण कल्प का निर्माण हुआ। बौधायन, आपस्तम्ब तथा हिरण्यकेशि कल्प सभी अंगों सहित पूर्ण हैं। परन्तु धीरे-धीरे धर्मसूत्र अपनी शाखा से स्वतन्त्र होने लगे क्योंकि समसामयिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने लगा। आचारों की समानता बहुत बड़े क्षेत्र में व्याप्त होने लगी और एक ही जैसी आचार संहिता सभी शाखाओं के अनुयायियों के लिए मान्य होने लगी। इसीलिए सम्भवतः अनेक प्राचीन धर्मसूत्र लुप्त हो गए और कुछ ही धर्मसूत्र समाज में मान्य रह गए।

धर्मसूत्र-साहित्य

धर्मसूत्र-साहित्य है जो आज उपलब्ध है वह श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्रों की तुलना

मे बहुत कम है। परन्तु धर्मसूत्र तथा टीकाकारो ने अनेक आचार्यों के नाम लिये है जो निश्चित रूप से धर्मज्ञ थे। सम्भव है कि उन्होने धर्मसूत्र लिखे हों, जो आज हमे उपलब्ध नही। आज केवल निम्नलिखित धर्मसूत्र उपलब्ध हैं—

(1) गौतम धर्मसूत्र

यह धर्मसूत्र कई बार प्रकाशित हो चुका है। इस धर्मसूत्र मे कुल 28 अध्याय है। चौखम्बा से प्रकाशित धर्मसूत्र म विभाजन प्रश्न और अध्यायो मे है। इसमे कुल तीन प्रश्न हैं। प्रथम और द्वितीय प्रश्न मे प्रत्येक मे 9 अध्याय हैं। तृतीय प्रश्न मे 10 अध्याय हैं।

यह धर्मसूत्र किसी कल्प का भाग था, या स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। इससे सम्बन्धित कल्पसूत्र उपलब्ध नहीं हैं। कुमारिल के अनुसार यह धर्मसूत्र सामवेद के अनुयायियो मे प्रचलित था। गौतम का सामवेद के साथ सम्बन्ध अन्य प्रमाणो से भी पुष्ट होता है। चरणव्यूह की टीका के अनुसार गौतम सामवेद की राणायनीय शाखा के प्रवर्तक या आचार्य थे। सामवेद के लाट्यायन श्रौतसूत्र तथा द्राह्याय श्रौतसूत्र म गौतम के नाम से उल्लेख हैं।[172] सामवेद के ही गृह्यसूत्र गोभिलगृह्य सूत्र[173] म भी गौतम के नियम उद्धृत किए गए है। गौतम धर्मसूत्र का सामवेद के ब्राह्मण 'सामविधान ब्राह्मण' से निकट का सम्बन्ध प्रतीत होता है क्योंकि गौतम धर्मसूत्र का 26वा अध्याय सामविधान ब्राह्मण (1 2) के समान है। गौतम धर्मसूत्र के तृतीय प्रश्न के प्रथम अध्याय के 12वें सूत्र मे जप के लिए मन्त्रो का निर्देश किया गया है। यद्यपि इसम सभी वदो के मन्त्रो का निर्देश है, परन्तु सबसे अधिक मन्त्र सामवेद के हैं। इससे प्रतीत होता है कि इस धर्मसूत्र का सम्बन्ध सामवेद से है। पी० वी० काणे न इस धर्मसूत्र क सामवेद से सम्बन्धित होने की सम्भावना तो व्यक्त की है परतु उनका विचार है कि यह धर्मसूत्र स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ परन्तु बाद मे सामवेद के अनुयायियो ने इसे अपना लिया।[174]

गौतम का परिचय तथा काल

गौतम नाम के व्यक्ति बहुत प्राचीन साहित्य म उल्लिखित हैं। परन्तु ये सब वर्तमान धर्मसूत्र के रचयिता गौतम के सन्दर्भ मे हो, यह नही कहा जा सकता। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गौतम का उल्लेख लाट्यायन तथा द्राह्यायण श्रौतसूत्रो मे है। छान्दोग्य उपनिषद (4 4 3) मे हारिद्रुम गौतम का उल्लेख है। पी० वी० काणे की सूचना के अनुसार मिताक्षरा स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि, माधव आदि टीकाकारों ने श्लोक गौतम तथा वृद्ध गौतम के नाम से उद्धरण दिए हैं। बौधायन धर्मसूत्र म दो बार गौतम का नाम आया है (बौ० 1.1 1 7,

2 2 4 17)। वसिष्ठ धर्मसूत्र में भी दो बार गौतम का उल्लेख हुआ है (वसिष्ठ 4 35, 37)।

इन सब उद्धरणों से प्रतीत होता है कि गौतम बहुत प्राचीन आचार्य थे। परन्तु वर्तमान धर्मसूत्र का लेखक इतना प्राचीन हो, यह नहीं कहा जा सकता। इसके कारण निम्नलिखित हैं—1 बौधायन धर्मसूत्र की भाषा निश्चित रूप से गौतम धर्मसूत्र की भाषा से प्राचीन है। बौधायन धर्मसूत्र में अनेक प्राचीन और अपाणिनीय प्रयोग हैं, जबकि वर्तमान गौतम धर्मसूत्र की भाषा पाणिनि के बहुत निकट है। 2 बौधायन धर्मसूत्र में गौतम के नाम से जो उद्धरण दिए हैं वे वर्तमान गौतम धर्मसूत्र में नहीं हैं। 3 गौतम धर्मसूत्र ने बौधायन धर्मसूत्र से उधार लिया है।[75] इससे बौधायन धर्मसूत्र की गौतम ध० सू० की तुलना में प्राचीनता सिद्ध होती है। गौतम का प्राचीन साहित्य में नामोल्लेख के विषय में यह कहा जा सकता है कि गौतम गोत्र का नाम है जो किसी प्राचीन गौतम के नाम पर चल रहा था। *ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान धर्मसूत्र किसी प्राचीन धर्मसूत्र का संशोधित संस्करण है।*

यद्यपि सभी विद्वानों ने गौतम को सभी धर्मसूत्रों में प्राचीन माना है परन्तु वर्तमान लेखक ने युक्तियुक्त ढंग से इस मत का खण्डन किया है।[76]

गौतम धर्मसूत्र में वर्णित विषय

प्रथम प्रश्न में उपनयन, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास के नियम, पंच महायज्ञ, मधुपर्क, अभिवादन के नियम, विवाह, पुत्रों के प्रकार, गुरुसेवा, ब्राह्मण के कर्तव्य, राजा, व्रत आदि विषय वर्णित हैं। द्वितीय प्रश्न में वर्णधर्म, राजा के कर्तव्य, न्याय-व्यवस्था, अपराध, दण्ड, ब्याज के नियम, साक्षी, अशौच श्राद्धकर्म, वेदाध्ययन, अनध्याय, भक्ष्याभक्ष्य तथा स्त्रीधर्म वर्णित हैं। तृतीय प्रश्न में प्रायश्चित्त, त्याज्य व्यक्ति, पातक, महापातक, कृच्छ्र व्रत, चान्द्रायण व्रत तथा सम्पत्ति का विभाजन वर्णित हैं।

वृत्ति तथा भाष्य

गौतम धर्मसूत्र पर दो टीकाएं उपलब्ध हैं—

1 हरदत्त की मिताक्षरा वृत्ति तथा

2 मस्करी भाष्य

(2) बौधायन धर्मसूत्र

बौधायन धर्मसूत्र बौधायन कल्प का भाग है। यह कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित है। यह चार प्रश्नों में विभाजित है। प्रश्न अध्यायों में और

अध्याय खण्डों मे विभाजित हैं।

बौधायन धर्मसूत्र में प्रक्षिप्त अश

विद्वानो ने चतुर्थ प्रश्न को प्रक्षिप्त अश माना है।[177] तृतीय प्रश्न के विषय में भी इन्ही विद्वानो न सदेह व्यक्त किया है। इस पक्ष मे जो मुख्य तर्क दिए गए हैं, वे इस प्रकार हैं—

1 चतुथ प्रश्न की शैली अ य प्रश्नो स भि न है। इसम अधिकाशत श्लोक हैं।

2 यह प्रश्न अध्यायो मे विभक्त है जबकि प्रथम दो प्रश्न कण्डिका या खण्डो म विभाजित हैं।

3 इस प्रश्न के प्रथम चार अध्यायो म प्रायश्चित्तो का वणन है जबकि प्रायश्चित्त द्वितीय तथा तृतीय प्रश्न म वर्णित किए जा चुके हैं।

4 कुछ सूत्र पीछे आए हुए सूत्रो की पुनरावृत्ति मात्र हैं।

5 पाच से लेकर आठवें अध्याय तक सिद्धि प्राप्त करने के साधन वर्णित हैं, जो धर्मसूत्र का विषय नही हैं।

तृतीय प्रश्न के प्रक्षिप्त होने के विषय म जो तक दिए गए है वे इस प्रकार हैं—

1 तृतीय प्रश्न भी अध्यायो मे विभक्त है खण्ड या कण्डिकाओ म नही।

2 तृतीय प्रश्न म कवल पिछले दो प्रश्नो म दिए गए विषय को ही बढाया गया है।

3 इसका 19वा अध्याय गोतम धमसूत्र के 3 1 से लिया गया है। षष्ठ अध्याय विष्णु धर्मसूत्र के 48वें अध्याय से मिलता-जुलता है।

उपयुक्त सभी तर्क बहुत दुर्बल हैं और इनसे चतुर्थ प्रश्न और तृतीय प्रश्न की प्रक्षिप्तता कदापि सिद्ध नही होती। इस पुस्तक के लेखक न अन्यत्र[178] उपर्युक्त सभी तर्कों पर विचार किया है और सभी तर्कों के खोखलेपन को सिद्ध किया है। साराश यह है—

1 श्लोक अधिक होना किसी भी अश को प्रक्षिप्त सिद्ध नही करता। अनुष्टुप् छन्द मे श्लोको की रचना बहुत प्राचीन काल से प्रारम्भ हो गई थी। श्लोक का उल्लेख स्वय यास्क ने किया है और अनुष्टुप् छन्द म निर्मित श्लोक का उद्धरण दिया है—तदेतद ऋक्श्लोकाभ्यामुक्तम् (निरुक्त 3 4)। बौधायन धर्मसूत्र के प्रथम और द्वितीय अध्याय म भी 150 स अधिक श्लोक हैं।

2 तृतीय और चतुर्थ प्रश्न का अध्याया म विभाजित होना उनकी प्रक्षिप्तता सिद्ध नहीं करता क्योंकि वास्तविक विभाजन किस प्रकार स था, यह ज्ञात नहीं है। मैसूर सस्करण म सभी प्रश्न अध्यायो म विभाजित हैं।

3 सम्पूर्ण बौधायन धर्मसूत्र का विषय व्यवस्थित तथा उचित क्रम में नहीं है। जो बात तृतीय तथा चतुर्थ प्रश्न के सम्बन्ध में कही गई है वह प्रथम तथा द्वितीय प्रश्न पर भी लागू होती है। इस आधार पर समस्त धर्मसूत्र को प्रक्षिप्त मानना होगा जो हास्यास्पद है।

4 जहां सिद्धियों की बात कही है वहां वास्तव में कृच्छ्, महासान्तापन तथा चान्द्रायण प्रायश्चित्तों का वर्णन है। यह विषय धर्मसूत्रों से बाहर का नहीं है।

5 बौधायन धर्मसूत्र के द्वारा गौतम धर्मसूत्र तथा विष्णु धर्म सूत्र से उधार लेना युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि वर्तमान रूप में उपलब्ध ये दोनों धर्मसूत्र बौधायन धर्मसूत्र के बाद के हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त किसी भी अंश की प्रक्षिप्तता सिद्ध नहीं होती। इसके विपरीत इन दोनों प्रश्नों की भाषा प्रथम तथा द्वितीय प्रश्नों की भांति ही प्राचीन है। दोनों ही प्रश्नों में अपाणिनीय तथा प्राचीन रूप उपलब्ध हैं।[179]

बौधायन धर्मसूत्र का रचयिता

बौधायन धर्मसूत्र के रचयिता के विषय में भी सन्देह व्यक्त किए गए हैं। इस समस्या पर प्रकाश बौधायन श्रौतसूत्र के अन्तर्गत भी डाला गया है। इसके रचयिता के विषय में संदेह का कारण यह है कि बौधायन धर्मसूत्र में बौधायन शब्द कई बार आया है।[180] टीकाकार गोविन्द स्वामी ने ग्रन्थकर्ता के विषय में कई सम्भावनाएं व्यक्त की हैं। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि क्योंकि बौधायन शब्द का प्रयोग हुआ है, इसलिए इसका रचयिता उससे भिन्न कोई उसका शिष्य है।

'बौधायनशब्दनादन्यस्तच्छिष्योऽस्य ग्रन्थस्य कर्तेति गम्यते'

(बौ० ध० सू० 3 5 5 8 पर गोविन्द स्वामी का भाष्य)। ऋषितर्पण प्रकरण में काण्व बौधायन कहकर उन्हें तर्पण दिया गया है। काणे का मत है कि यह कण्व बोधायन होना चाहिए क्योंकि मैसूर संस्करण में कण्व बौधायन ही प्रयुक्त हुआ है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि बौधायन गृह्यसूत्र में कण्व बोधायन का स्मरण प्रवचनकार के रूप में हुआ है जबकि आपस्तम्ब का स्मरण सूत्रकार के रूप में हुआ है। यह सम्भव है कि कण्व बोधायन ने विस्तृत रूप में कल्पसूत्र का प्रवचन किया हो और बाद में उसके किसी शिष्य ने जिसको काण्व बौधायन कहा गया, उनके मतों को सूत्र शैली में एकत्रित कर दिया हो।

यह बौधायन किस प्रदेश का निवासी था, यह अनिर्णीत है।[181]

बौधायन धर्मसूत्र का काल

बौधायन धर्मसूत्र का काल वही है जो बौधायन श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र का है

क्योंकि भाषा और शैली की दृष्टि से इन तीनों अंगों का रचयिता एक ही व्यक्ति प्रतीत होता है। सभी प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों ने स्वीकार किया है कि तैत्तिरीय संहिता के कल्पसूत्रों का क्रम इस प्रकार है—बौधायन, भारद्वाज, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वाधूल तथा वैखानस।[182] परन्तु गौतम धर्मसूत्र को बौधायन से पहले माना गया है। इसका कारण यह है कि बौधायन धर्मसूत्र में दो बार गौतम का नाम आया है। विद्वानों का मत है कि गौतम धर्मसूत्र के तृतीय प्रश्न का पहला अध्यायन बौधायन धर्मसूत्र ने उधार लिया है। (बौ० ध० सू० 3 10)।

सभी पक्षों पर विचार करने के पश्चात् वर्तमान गौतम धर्मसूत्र बौधायन से पहले का सिद्ध नहीं होता क्योंकि गौतम धर्मसूत्र की भाषा बौधायन धर्मसूत्र की भाषा की तुलना में आधुनिक है। बौधायन धर्मसूत्र में गौतम के नाम में जो उद्धरण दिए हैं वे वर्तमान गौतम धर्मसूत्र में उपलब्ध नहीं हैं। जहां तक दोनों धर्मसूत्रों में मिलते-जुलते सूत्रों का प्रश्न है, यह नहीं कहा जा सकता कि बौधायन धर्मसूत्र ने गौतम से उधार लिया है। दोनों के सूत्रों को ध्यान से देखने से पता चलता है कि गौतम ने ही बौधायन धर्मसूत्र से उधार लिया है।[183]

इससे सिद्ध होता है कि बौधायन धर्मसूत्र वर्तमान गौतम धर्मसूत्र से प्राचीन है।

बौधायन धर्मसूत्र में वर्णित विषय

बौधायन धर्मसूत्र की विषय-वस्तु उचित प्रकार से विभाजित नहीं है। एक विषय को भिन्न-भिन्न स्थानों पर लिया गया है। बीच में अचानक आए हुए प्रकरण अगले और पिछले प्रकरणों से असम्बद्ध प्रतीत होते हैं। जो मुख्य विषय बौधायन धर्मसूत्र में वर्णित हुए हैं, वे इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रश्न में धर्म की परिभाषा, आर्यावर्त की सीमाएं, विभिन्न प्रदेशों के आचार, ब्रह्मचर्य, उपनयन, अभिवादन के नियम, स्नातक के कर्त्तव्य, वस्त्र एवं पात्रों की शुद्धि, ब्याज के नियम, अशौच, यज्ञ के नियम, विवाह, पुत्र के प्रकार, कर-व्यवस्था, मृत्युदण्ड, साक्षी, अनध्याय आदि।

द्वितीय प्रश्न में पातक कर्मों के प्रायश्चित्त, पतनीय कर्म, कृच्छ्रव्रत, सम्पत्ति-विभाजन, स्त्रीधर्म, स्नान, दान एवं भोजन की विधि, सन्ध्योपासन, गायत्री एवं प्राणायाम, शारीरिक शौच, तर्पण, आश्रमधर्म, आत्मज्ञान, श्राद्ध आदि।

तृतीय प्रश्न में परिव्राजक, जीवनवृत्ति, अघमर्षण, चान्द्रायण, प्रायश्चित्त आदि।

चतुर्थ प्रश्न में भी विभिन्न प्रायश्चित्त, कन्यादान का काल, ऋतुगमन की आवश्यकता, जप तथा व्रत, धर्म का महत्त्व।

बौधायन धर्मसूत्र की भाषा तथा शैली

बौधायन धर्मसूत्र की भाषा प्राचीन है। अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। अपाणिनीय रूप भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। यद्यपि ग्रन्थ की शैली सूत्रों की ही है परन्तु संक्षिप्तता पर विशेष बल नहीं दिया गया है। अनेक सूत्र ब्राह्मण शैली की गद्य में लिखे गए हैं। बीच-बीच में 'अथाप्युदाहरन्ति' शब्दों के साथ श्लोक उद्धृत किए गए हैं। स्वयं सूत्रकार ने भी अपने श्लोक दिए हैं। अनेक गीत और गाथाएं उद्धृत हैं।

बौधायन धर्मसूत्र की टीका

बौधायन धर्मसूत्र पर गोविन्दस्वामी की विवरण नाम की टीका उपलब्ध है जो उमेशचन्द्र पाण्डेय द्वारा सम्पादित चौखम्बा वाराणसी से प्रकाशित है।

(3) आपस्तम्ब धर्मसूत्र

आपस्तम्ब धर्मसूत्र तैत्तिरीय शाखा के आपस्तम्ब कल्प का अंग है। यह धर्मसूत्र कई संस्करणों में प्रकाशित है। ब्यूलर ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया है जो सेक्रेड बुक्स आफ ईस्ट खण्ड 2 में प्रकाशित है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र तथा श्रौत व गृह्यसूत्र का रचयिता एक ही व्यक्ति है या भिन्न-भिन्न इस विषय पर पहले ही विचार हो चुका है (देखें आपस्तम्ब श्रौतसूत्र)। अधिकांश विद्वान् इसी मत के पक्ष में है कि तीनों अंगों में परस्पर इतनी निकटता एवं समानता है कि इनके एक व्यक्ति की रचना होने में कोई शंका नहीं होती।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र दो प्रश्नों में विभाजित है। प्रत्येक प्रश्न पटलों में विभाजित है। पटल के साथ-साथ कण्डिकाओं में भी विभाजन है जो पटल के साथ-साथ चलता है। प्रथम प्रश्न में ग्यारह पटल अथवा 32 कण्डिकाएं हैं। द्वितीय प्रश्न में भी ग्यारह पटल अथवा 29 कण्डिकाएं हैं।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र का काल

आपस्तम्ब धर्मसूत्र का काल वही है जो आपस्तम्ब श्रौत अथवा गृह्यसूत्र का। यह सूत्र निश्चित रूप से बौधायन सूत्र से बाद का है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र की भाषा तथा शैली

यह धर्मसूत्र सूत्र शैली में लिखा गया है। बीच-बीच में श्लोक भी दिए गए हैं। इस धर्मसूत्र की भाषा में कई विशेषताएं हैं। एक ओर तो इसमें प्राचीन वैदिक प्रयोग हैं तो दूसरी ओर प्राकृत प्रभाव भी प्रतीत होता है। समीकरण तथा लोप

की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है जैसे युङ्क्ते (युङ्क्ते के लिए) भुङ्क्ते (भुङ्क्ते के लिए)। अनेक अपाणिनीय प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं।[184]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णित विषय

इस धर्मसूत्र में बौधायन धर्मसूत्र की अपेक्षा विषय क्रम अधिक उचित और सुव्यवस्थित है। इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रश्न में धर्म तथा उसके आचार, वर्णधर्म, उपनयन, व्रात्य के संस्कार, ब्रह्मचर्य के धर्म, स्नातक के धर्म, अनध्याय, स्वाध्याय, पंच महायज्ञ, नित्य कर्म, अभिवादन, आचमन, भक्ष्याभक्ष्य, अपण्य वस्तुएं, पतनीय कर्म, आत्मज्ञान, प्रायश्चित्त आदि विषय वर्णित हैं।

द्वितीय प्रश्न में गृहस्थ के धर्म, वैश्वदेव बलि, अतिथिसत्कार, ब्राह्मण आदि के लिए नियम, दूसरे विवाह के नियम, स्त्री के प्रति कर्तव्य, दायभाग, श्राद्ध, आश्रम धर्म, राजधर्म, नियोग, प्रायश्चित्त, दण्ड, साक्षी, धर्मलक्षण आदि विषय वर्णित हैं।

टीका

आपस्तम्ब धर्मसूत्र की हरदत्त ने उज्ज्वला नाम की टीका लिखी है जो चौखम्बा द्वारा प्रकाशित है।

(4) हिरण्यकेशि-धर्मसूत्र

हिरण्यकेशि धर्मसूत्र हिरण्यकेशि कल्प का 26वां तथा 27वां प्रश्न है। यह भी तैत्तिरीय शाखा की खाण्डिकेय सूत्र चरण से सम्बन्धित है। हिरण्यकेशि-धर्मसूत्र में कोई मौलिकता नहीं है। यह आपस्तम्ब धर्मसूत्र का अनुकरण मात्र है। सूत्रों का क्रम भी लगभग ज्यों-का-त्यों मिलता है। अन्तर केवल इतना ही है कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र के बहुत से अपाणिनीय रूपों को पाणिनि के अनुसार परिवर्तित कर दिया गया है।

यह धर्मसूत्र आपस्तम्ब धर्मसूत्र से निश्चित रूप से बाद का है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अपाणिनीय रूपों को पाणिनीय सांचों में ढालना बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि हिरण्यकेशि धर्मसूत्र की रचना के समय तक पाणिनि व्याकरण का प्रचार हो गया हो। इसीलिए उन रूपों को जो पाणिनीय व्याकरण से मेल नहीं खाते थे, बदल दिया गया हो। इस अवस्था में हिरण्यकेशि-धर्मसूत्र पाणिनि के बाद का सिद्ध होता है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि भाषा में प्राकृतिक परिवर्तन हो रहे थे। हिरण्यकेशि-धर्मसूत्र के रचना काल तक भाषा इतनी परिवर्तित हो गई हो कि पाणिनि-कालीन भाषा के

निकट पहुंच गई हो। चाहे कुछ भी हो, इतना तो निश्चित रूप म कहा जा सकता है कि आपस्तम्ब और हिरण्यकेशि-धर्मसूत्र में शताब्दियों का अन्तर है। भौगोलिक अन्तर भी भाषा परिवर्तन का कारण हो सकता है।

हिरण्यकेशि धर्मसूत्र पर टीका

हिरण्यकेशि-धर्मसूत्र पर महादेव दीक्षित द्वारा लिखित टीका उपलब्ध है। इसका नाम उज्ज्वला है। यह आपस्तम्ब धर्मसूत्र पर लिखित हरदत्त की उज्ज्वला टीका से अक्षरशः मिलती है। सम्भवतः महादेव ने हरदत्त का अनुकरण किया है।

(5) वसिष्ठ धर्मसूत्र

वसिष्ठ धर्मसूत्र एक महत्वपूर्ण धर्मसूत्र है और बहुत सम्मान के साथ इसका व्यवहार लोक जीवन म अब तक भी होता रहा है।

इस धर्मसूत्र का कई बार प्रकाशन हुआ है। जीवानन्द के संस्करण में कुल 20 अध्याय तथा 21वें अध्याय का कुछ भाग था। फ्यूरर का संस्करण पूर्ण है जिसमे 30 अध्याय हैं। यह धर्मसूत्र कृष्ण पण्डित की विद्वन्मोदिनी टीका के साथ बनारस से भी प्रकाशित है।

वर्तमान धर्मसूत्र का सम्पूर्ण भाग मौलिक है इस विषय म विद्वज्जनों को सन्देह है। केवल प्रथम 23 अध्याय मूल धर्मसूत्र से सम्बन्धित माने जाते हैं क्योंकि सभी टीकाकारो ने लगभग इतने ही भाग से वसिष्ठ के नाम से उद्धरण दिए हैं। 24 से लेकर 30 अध्यायों के मौलिक होने में सन्देह व्यक्त किया गया है।[155] परन्तु यह सन्देह किसी ठोस आधार पर नहीं टिका हुआ है। 24वें अध्याय के पाचवें सूत्र मे 'इत्याह भगवान्वसिष्ठ'। लिखा हुआ है जिससे इस अध्याय के मौलिक होने में सन्देह है क्योंकि ग्रन्थकर्ता स्वय अपने लिए भगवान् शब्द का प्रयोग नहीं करता। परन्तु संस्कृत ग्रन्थो म प्राय ग्रन्थकार का नाम इसी प्रकार म सम्मानपूर्वक दिया गया है। इसलिए केवल इसी कारण से इसे अमौलिक मानना उचित नहीं है। अगले अध्यायों मे केवल श्लोक ही मिलते हैं सूत्र नहीं, यह भी इन अध्यायों को अप्रामाणिक मानने का कोई ठोस आधार नहीं क्योंकि पूर्ववर्ती अध्यायों मे प्रचुर-मात्रा में श्लोक आए हैं।

यह धर्मसूत्र किसी वेद की शाखा से सम्बन्धित था या स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ, इसमें मतभेद हैं। कुमारिल के अनुसार यह धर्मसूत्र ऋग्वेद के अनुयायियों द्वारा पढ़ा जाता था।[156] परन्तु पी० वी० काणे का मत है कि यह धर्मसूत्र स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ है। ऋग्वेद से इसका विशेष सम्बन्ध किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं होता। परन्तु डॉ० रामगोपाल इसे ऋग्वेद का ही धर्मसूत्र मानते हैं क्योंकि इस धर्मसूत्र का ऋग्वेद के शाखायन, आश्वलायन तथा कौषीतकि गृह्यसूत्र से गहरा

सम्बन्ध है।[187]

वसिष्ठ धर्मसूत्र के स्थान के विषय म कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। ब्यूलर के अनुसार वसिष्ठ धर्मसूत्र का स्थान नर्मदा तथा विन्ध्याचल के उत्तर मे था।[188] परन्तु काण इस मत से सहमत नही हैं और इस प्रश्न को अनिर्णीत ही मानते हैं।[189]

काल के विषय मे भी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। इसकी भाषा से प्रतीत होता है कि यह प्राचीन धर्मसूत्र है। कालक्रम की दृष्टि से यह हिरण्यकेशी के बाद का है। गौतम धर्मसूत्र से यह बहुत निकट प्रतीत होता है। वसिष्ठ मे कई धर्मज्ञो का उल्लेख है, यथा गौतम (4-35, 37), यम (11-20, 18 13 15), प्रजापति (14, 30, 32, 14, 16, 19 तथा 24 27), मनु (1 17, 3 2) आदि। इम धर्मसूत्र म यम और प्रजापति के नाम से जो उद्धरण दिए गए हैं, उनम से अनेक वर्तमान मनुस्मृति मे मिलते है। मनुस्मृति मे वसिष्ठ का नाम भी मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि वसिष्ठ का काल मनुस्मृति से पहले का है। वसिष्ठ न बौधायन, गौतम आपस्तम्ब आदि से भी ग्रहण किया लगता है इसीलिए काणे वसिष्ठ को बौधायन, गौतम, आपस्तम्ब से बाद का मानते हैं। इन्होने वसिष्ठ का समय 300 से 100 ई० पू० माना है।[190]

वसिष्ठ धर्मसूत्र में वर्णित विषय

वसिष्ठ धर्मसूत्र के 30 अध्यायो म निम्नलिखत विषय वर्णित हैं—धर्म के आधार, वर्णाश्रम स्त्रीधर्म स्नातक धर्म, श्राद्ध, भोजनादि विधि निषेध, दण्ड, दायभाग, राजधर्म, कृच्छ्र चान्द्रायण, प्रायश्चित्त आदि।

टीका

वसिष्ठ धर्मसूत्र पर कृष्ण पण्डित की विद्वन्मोदिनी नाम की टीका उपलब्ध है।

(6) विष्णु धर्मसूत्र

विष्णु धमसूत्र जीवानन्द के धर्मशास्त्र सग्रह (1876) म तथा पृथक् से जौली द्वारा सम्पादित 1881 मे तथा 1962 मे पुन प्रकाशित हो चुका है। डॉ० जौली ने अग्रेजी अनुवाद किया है जो सेक्रेड बुक्स ऑफ ईस्ट के नवें खण्ड म प्रकाशित है।

विष्णु धर्मसूत्र विष्णु धर्मस्मृति नाम स प्रसिद्ध है। इम सूत्र म 100 अध्याय हैं जिसम गद्य और पद्य मिश्रित हैं। परन्तु अध्यायो का आकार बहुत छोटा है। कुछ अध्याया (40, 42, 74) म तो केवल एक सूत्र और एक श्लोक है।

इस सूत्र का यजुर्वेद की कठशाखा से सम्बन्ध है। काठक गृह्यसूत्र और विष्णु धर्मसूत्र में पर्याप्त साम्य और निकटता है। परन्तु यह काठक कल्प का भाग नहीं है क्योंकि इस धर्मसूत्र की भाषा शैली काठक गृह्य से भिन्न प्रकार की है।

यह धर्मसूत्र पौराणिक शैली में लिखा गया है। इसके प्रथम अध्याय में विष्णु के वाराहावतार का उल्लेख है—

ब्रह्मरात्र्या व्यतीतायां प्रबुद्धे पद्मसम्भवे।
विष्णुः सिसृक्षुर्भूतानि ज्ञात्वा भूमिं जलानुगाम्॥
जलक्रीडारुचिशुभं कल्पादिषु यथा पुरा।
वाराहमास्थितो रूपमुज्जहार वसुन्धराम्॥

पृथ्वी का स्त्री रूप धारण करके क्षीर सागर में सोने वाले विष्णु के पास जाना तथा उससे धर्म का उपदेश लेना और पृथ्वी के सुख के लिए विष्णु द्वारा पृथ्वी को धर्म का उपदेश देना ऐसा प्रसंग है जो विष्णु धर्मसूत्र को पुराणों के निकट ले आता है। इसमें विष्णु के उसी रूप का वर्णन किया गया है जो पुराणों में मिलता है। धर्म का विशेषण वैष्णव प्रयुक्त किया गया है जिससे यह ग्रन्थ वैष्णव सम्प्रदाय का सिद्ध होता है—

सुखासीना निबोध त्वं धर्मान्निगदतो मम।
शुश्रुवे वैष्णवान्धर्मान्सुखासीना धरा तदा॥ (1 65)

इस धर्मसूत्र में दिए गए श्लोक अन्यत्र भी उसी रूप में मिलते हैं। इसके कम-से-कम 160 श्लोक मनुस्मृति में ज्यों-के-त्यों हैं। मनुस्मृति के कुछ श्लोक विष्णु धर्मसूत्र के कुछ सूत्रों का ही रूपान्तरण प्रतीत होते हैं। वि० ध० सू० का 48वां अध्याय बौधायन धर्मसूत्र के तीसरे प्रश्न में ज्यों-का-त्यों मिलता है। इस धर्मसूत्र के कुछ सूत्र वसिष्ठ धर्मसूत्र में श्लोकों के रूप में मिलते हैं। डॉ० जौली तथा अन्य विद्वानों का मत है कि वसिष्ठ और बौधायन धर्मसूत्र ने किसी प्राचीन विष्णु धर्मसूत्र से उधार लिया है। वह धर्मसूत्र आज लुप्त हो गया है और वर्तमान विष्णु स्मृति पूर्व धर्मसूत्र का ही संशोधित संस्करण है। इसके प्रथम तथा अंतिम अध्याय किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा जोड़े गए हैं। भाषा सम्बन्धी अध्ययन से भी यह बात पुष्ट होती है। इस धर्मसूत्र के कुछ अंग प्राचीन प्रतीत होते हैं क्योंकि कुछ वैदिक रूपों का भी प्रयोग मिलता है।

विष्णु धर्मसूत्र का काल

विष्णु धर्मसूत्र का वर्तमान रूप निश्चित रूप से बहुत बाद का है क्योंकि यह उस युग की रचना है जब वैष्णव धर्म का पूर्ण प्रसार हो चुका था। जौली तथा पी० वी० काणे के अनुसार वैष्णव सम्प्रदाय के लेखक का काल तीसरी या चौथी शताब्दी के पहले का नहीं हो सकता।[197] लुई रेणु के अनुसार विष्णु धर्मसूत्र का

काल 400 से 600 ई० के मध्य है। मूल प्राचीन धर्मसूत्र का काल 300 से 100 ई० के मध्य है।

विष्णु धर्मसूत्र की ये तिथियां तो उचित प्रतीत होती हैं परन्तु डॉ० जौली का यह मत उचित नहीं है कि बौधायन तथा वसिष्ठ धर्मसूत्रों ने किसी प्राचीन विष्णु धर्मसूत्र से उधार लिया है। मूल विष्णु धर्मसूत्र को कितना भी प्राचीन माना जाए, वह बौधायन धर्मसूत्र से प्राचीन नहीं हो सकता क्योंकि बौधायन धर्मसूत्र के काल तक *वैष्णव सम्प्रदाय विकसित नहीं हुआ था, जो विष्णु के नाम से किसी* धर्मसूत्र की रचना हो।

विष्णु धर्मसूत्र में वर्णित विषय

विष्णु धर्मसूत्र में धर्मसूत्र के लगभग सभी विषय वर्णित हैं। परन्तु इसमें कुछ ऐसे विषय वर्णित हैं जो धर्मसूत्रों के क्षेत्र से बाहर हैं और ये इस धर्मसूत्र के बाद के होने के परिचायक हैं। दस से लेकर 14वें अध्याय तक झूठे गवाहों की परीक्षा के *लिए दिव्य उपाय दिए गए हैं यथा तराजू में बैठना। तराजू में यदि उसका भार* बढ़ता है तो वह पवित्र अन्यथा नहीं, यथा—

तुलितो यदि वर्धेत तत स धर्मतः शुचि ।

इसी प्रकार अग्नि से तप्त खम्भे का आलिंगन करना, विष आदि पीना ऐसे *दिव्य उपाय थे जो इस बात के परिचायक है कि इस धर्मसूत्र के काल में समाज में* अनेक अन्य विश्वास फैल गए थे। 33वें अध्याय में नरकों का वर्णन है। 34वें अध्याय में पापों के द्वारा पाप योनियों में जन्म लेना, 35वें अध्याय में भिन्न-*भिन्न पाप कर्मों से भिन्न-भिन्न रोग होना* आदि ऐसे विषय हैं जो प्राचीन धर्मसूत्रों में वर्णित नहीं है। 65वें अध्याय में विष्णु पूजन की विधि बताई गई है। 98वें अध्याय में विष्णु स्तुति, 99वें में लक्ष्मीस्तुति तथा 100वें में इस शास्त्र के सुनने का फल इस धर्मसूत्र को बहुत अर्वाचीन सिद्ध करते हैं।

टीका

इस धर्मसूत्र पर नन्द पण्डित की वैजयन्ती नामक टीका उपलब्ध है।

(7) वैखानस धर्मसूत्र

यह धर्मसूत्र कई संस्करणों में प्रकाशित है। यह वैखानस कल्प का अंग है। प्रतीत होता है कि *वैखानस श्रौ० सू०, गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र एक ही व्यक्ति की* रचना है।

यह धर्मसूत्र किसी वैष्णव सम्प्रदाय के व्यक्ति द्वारा रचित है। इसका काल 300 से 400 ई० के मध्य में माना जाता है। इसमें कुछ अपाणिनीय शब्द

भी मिलते हैं। परन्तु इसका कारण प्राचीनता नहीं पाणिनि से दूरी प्रतीत होती है।

इस धर्मसूत्र पर कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

(8) अन्य धर्मसूत्र

उपर्युक्त धर्मसूत्रों के अतिरिक्त अन्य धर्मसूत्र भी विद्यमान थे क्योंकि टीकाकारों ने अनेक धर्मसूत्रकारों के मत उद्धृत किए हैं। इनमें प्रमुख हैं—शंखलिखित धर्मसूत्र तथा हारीत धर्मसूत्र। इनमें से कोई धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं है परन्तु इन धर्मसूत्रों में इतने उद्धरण दिए गए हैं कि उन्हें संकलित करके इन धर्मसूत्रों की मुख्य बातें जानी जा सकती हैं।[192]

इसके अतिरिक्त जिन धर्मसूत्रकारों के नाम और उद्धरण उल्लिखित हैं उनमें प्रमुख हैं—अत्रि, उशना, कण्व, काण्व, काश्यप, गार्ग्य, च्यवन, जातुकर्ण्य, देवल, पैठीनस, बुध, बृहस्पति, भारद्वाज, शातातप, सुमन्तु आदि।

4 पितृमेध सूत्र

पितृमेधसूत्र भी वैदिक 'कल्प' का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जे० गोंडा ने इसे पृथक् कोटि में रखा है क्योंकि कुछ वेदों से सम्बन्धित पितृमेधसूत्र पृथक् उपलब्ध हुए हैं। कहीं-कहीं इसे श्रौतसूत्रों में सम्मिलित किया गया है तो कहीं गृह्यसूत्रों में। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन सूत्रकार भी इसकी स्थिति के विषय में एकमत नहीं थे।

पितृमेधप्रसङ्ग के अन्तर्गत श्राद्धकर्म तथा मृतक संस्कार आते हैं।

प्रत्येक वेद के पितृमेधसूत्रों का परिचय इस प्रकार है—

ऋग्वेद के पितृमेधसूत्र—शांखायन ने पितृमेधसूत्रों को अपने श्रौतसूत्र के 14-16 खण्डों में समाविष्ट किया है। आश्वलायन ने अपने गृह्यसूत्र के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत 1-6 खण्डों में श्राद्धकर्म आदि का वर्णन किया है। कौषीतक गृह्यसूत्र के पंचम अध्याय में पितृमेध तथा पिण्डपितृयज्ञ का वर्णन है।

यजुर्वेद के पितृमेधसूत्र—तैत्तिरीय संहिता का बौधायन पितृमेधसूत्र पृथक् प्राप्त हुआ है जो बौधायन गृह्यसूत्र के साथ जोड़ दिया गया है। इसमें तीन अध्याय हैं। भारद्वाज का पितृमेधसूत्र पृथक् है। आपस्तम्ब ने भारद्वाज का अनुकरण किया है परन्तु उसका पितृमेध भाग श्रौतसूत्र के 31वें अध्याय में निहित है। हिरण्यकेशि का पितृमेधसूत्र भी भारद्वाज पितृमेधसूत्र से मिलता-जुलता है (पीछे देखें)। वैखानस स्मार्तसूत्र का पंचम अध्याय पितृमेध से सम्बन्धित है। मानव श्रौतसूत्र के 8वें तथा 23वें खण्ड में पितृमेध विषय वर्णित है। आग्निवेश्य के गृह्यसूत्र में तीसरे खण्ड में पितृमेध वर्णित है। वाजसनेयी संहिता से सम्बन्धित

पितृमेध कात्यायन श्रौतसूत्र (21 3 4) म वर्णित है।

सामवद के पितृमेधसूत्र—सामवेद की राणायनीय शाखा स सम्बन्धित 'गौतम पितृमेधसूत्र' नाम स प्रसिद्ध है जो गौतम सूत्र पर 'अनन्तयज्वा' के भाष्य मे दिया हुआ है। कौथुम शाखा का 'गोभिल श्राद्धकल्प' अलग से उपलब्ध है।

अथर्ववेद के पितृमेधसूत्र—कौशिक सूत्र का 11वा अध्याय पितृमेध तथा पिण्डपितृमेध से सम्बन्धित है।

5 शुल्व सूत्र

कल्पसूत्रो का पचम और अन्तिम अग शुल्वसूत्र हैं। शुल्वसूत्रो मे यज्ञशाला तथा यज्ञ वेदियो से सम्बन्धित नियम वर्णित हैं। यद्यपि शुल्वसूत्र यज्ञ-तन्त्र के ही अग है और उन्ह श्रौतसूत्रो के अन्तर्गत ही रखा जाता है, तथापि यज्ञ के भौतिक साधनों से सम्बन्धित विषय का प्रतिपादन करने के कारण इनका पृथक् वैशिष्ट्य है। यज्ञशालाओ और वदियो का निर्माण अत्यन्त वैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर होता था। ये सिद्धान्त ज्यामिति शास्त्र पर निर्भर थे। भारत मे ज्यामिति ज्ञान के प्राचीनतम नमूने शुल्वसूत्र ही हैं।

सभी वैदिक शाखाओ स सम्बन्धित शुल्वसूत्र प्राप्त नही हुए हैं। केवल यजुर्वेद के शुल्वसूत्र ही प्राप्त हुए हैं। बोधायन शुल्वसूत्र बोधायन श्रौतसूत्र का 30वा प्रश्न है। आपस्तम्ब शुल्वसूत्र भी आपस्तम्ब श्रौतसूत्र का 30वां प्रश्न है। हिरण्यकेशि-शुल्व सूत्र, हिरण्यकेशि-कल्प का 25वा प्रश्न है। मानव शुल्वसूत्र मानव श्रौतसूत्र का 10वा अध्याय है।

अधिक शुल्वसूत्रो के न मिलने का कारण सम्भवत यह है कि यज्ञशाला तथा यज्ञवेदियो के निर्माण का कार्य यजुर्वेद के अध्वर्यु का ही था, अत अन्य वेदो के श्रौत सूत्रो म शुल्वसूत्र की आवश्यकता नही समझी गई। यजुर्वेद के सभी श्रौतसूत्रो म शुल्वसूत्रो के न होन का कारण यह है कि यज्ञवेदियो का निर्माण सर्वत्र एक ही प्रकार के सिद्धान्तो के आधार पर होना होगा। इसलिए किसी भी एक शाखा या शुल्वसूत्र सभी के लिए मान्य होता होगा।

सन्दर्भ

1 द्रष्टव्य मैक्समूलर, अ हिस्ट्री आफ एशियेंट सस्कृत लिट्रेचर 1968, पृ० 151
2 तन्त्रवार्तिक 1 3 1
3 मैक्समूलर, हिस्ट्री आफ एशियेंट सस्कृत लिटरेचर, पृ० 166
4. वही, पृ० 152

5 तन्त्रवार्तिक, 1 3
6 वही 2.4 2
7 मैक्समूलर, वही, पृ० 222
8 मैक्डानल ब हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, प० 246
9 विन्टरनित्ज, अ हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर, पृ० 272 88
10 वही, पृ० 283
11 सी० वी० वैद्य हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, खण्ड 3 पृ० 12
12 विस्तार के लिए देख गोपथ ब्राह्मण 5 23 तथा यज्ञ परिभाषा सूत्र।
13 सैक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट भाग 29, पृ० 3-4
14 दि प्रासीडिंग्स एण्ड ट्रांजेक्शन्स आफ द ओरियण्टल कान्फ्रेंस, त्रिवेन्द्रम पृ० 180
15 इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्रज, पृ० 20 488
16 प्रो० कर्लेह, डा० प्री० मू० अग्रेजी अनुवाद की भूमिका, पृ० 14 15
17 द्रष्टव्य डा० रामगोपाल, इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्रज प० 488 89
18 द्रष्टव्य एच० जी० रानाडे, कात्यायन श्रौतसूत्र भूमिका पृ० 2
19 वही पृ० 1
20 काशीकर मा० जी० अ सर्वे आफ द श्रौतसूत्रज, बम्बई विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका, खण्ड 35, भाग 2, 1966 पृ० 88
21 शौनकस्य तु शिष्योऽभूद भगवानाश्वलायन । स तस्माच्छ्रुतवेदः सूत्र कृत्वा न्यवेदयत । प्रवेपपरिशुद्धयध शौनकस्य प्रियं त्विति । सहस्रखण्ड स्वकृत सूत्र ब्राह्मणसन्निभम विध्वास्तरायनसंदर्श शौनकेन विशारिणम । उक्त दत्तत्कृत सूत्रमस्य वेदस्य चास्त्विति । द्वादशाध्यायक सूत्र चतुष्क गद्यमव च । चतुर्थारण्यक चेति ह्याश्वलायनसूत्रकम । पद्मुक्तिप्यस्य ।
22 द्रष्टव्य मैक्समूलर, हिस्ट्री आफ एन्शियण्ट संस्कृत लिट्रेचर, पृ० 120
23 डा० रामगोपाल इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्रज, अध्याय 2, टिप्पणी 44, पृ० 39
24 डा० रामगोपाल इ० वै० क० सू०, पृ० 491, ज० गोडा, द रिच्युल सूत्रज, पृ० 532-34
25 ए० बी० कीथ, सम्पादक, एतरेय आरण्यक पृ० 30
26 मक्डोनेल, बृहद्देवता, भूमिका प० 22 23
27 महाभाष्य 3 2 3 118, 4 3 101
मेधावी चाप मेधाविन्कात्यायनश्च स
28 पुनर्वसुर्वररुचिर्मेधाजि प पतञ्जलि । त्रिकाण्डशेषकोश 2.25
29, कात्यायनो वररुचिमेधाजित्श्च पुनर्वसु । अभिधानचिन्तामणि 3 852
30- कात्यायनमुन प्राप्य वेदसूत्रस्य कारकम, स्कन्दपुराण नागरखण्ड, 130-31
31 कात्यायनाभिधान च यज्ञविद्याविचक्षणम । पुत्रो वररुचिर्यस्य बभूव गुणसागर । वही, 131 48-49
32 प्रतिज्ञा परिशिष्ट 1 1 पर भाष्य
33 शौनकस्य तु शिष्योऽभूद्भगवानाश्वलायन ।
स तस्माच्छ्रुतवेद सूत्र कृत्वा न्यवेदयत ।

34 शौनकस्य प्रसादेन कमश समपद्यत ।
कात्यायनमुनिर्मेने त्रयोदशकमत्र तु ॥
शौनकीय च दशक तच्छिष्यस्य त्रिक तथा ।
द्वादशाध्यायक सूत्र चतुष्कगृह्यमेव च ॥
चतुर्थारण्यक चेति ह्याश्वलायनसूत्रकम ।
सशिष्यशौनकाचाय त्रयोदशकविन्मुनि ॥
वाजिना सूत्रकृत्साम्नामुपग्रन्थस्य कारक ।
स्मृतेश्च कर्ता श्लोकाना भ्राजमाना च कारक ॥
अथर्वणा निममे य सम्यार्वं ब्राह्मकारिका ।
महावार्तिककारौकार पाणिनीयमहार्णवे ॥
यत्प्रणीतानि वाक्यानि भगवास्तु पतञ्जलि ।
व्याख्यच्छान्तनवीयेन माहाभाष्येण हर्षित ॥
तयोयोगार्नममे य सर्वानुक्रमणीमिमाम ।
सशिष्यशौनकाचार्यं सवप्रग्यायवर्णनात् ॥

35 य स्वर्गारोहण कृत्वा स्वगमानीतवान भुवि ।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातौ वररुचि कवि ॥
न केवल व्याकरण पुपोष दाक्षीसुतस्येरित वार्तिकैय ।
काव्येऽपि भूयोऽनुचकार त वै कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्ष. ॥

36 कात्यायन प्रातिशाख्य का पुरोवाक
37 बृहद्देवता की भूमिका, पृ० 22
38 अङ्गहीनाश्रोत्रियषण्ढशूद्रवर्जम् 1 15
39 ब्राह्मणराजन्यवैश्याना श्रुते, स्त्रीं चाविशषात् *1* 1 6 7
40 यजतिजुहोतीना को विशष 1 2 5
41 द्रष्टव्य कमला प्रसाद सिह, ए क्रिटिकल स्टडी आफ कात्यायन श्रौत सूत्र
42 कात्यायन श्रौ० सू० *14 1 14, 14 1 15*
43 श० ब्रा० 5 1 2 14
44 द्रष्टव्य सी० जी० काशीकर अ सर्वे आफ द श्रौतसूत्रज्, पृ० 78-79, पृ० 154, के० एम० शर्मा, कल्पसूत्र, पृ० 91
45 द्रष्टव्य डा० रामगोपाल, इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्रज, पृ० 500-501
46 द्रष्टव्य जे० गोंडा, द रिच्युल सूत्रज, पृ० 516, डा० रामगोपाल, इ० वै० क० सू०, पृ० 504
47 द्रष्टव्य कलन्द, उबर बौधायन *पृ० 13*, जे० गोंडा, द रिच्युल सूत्रज *पृ० 517*
48 द्रष्टव्य सी० जी० काशीकर, ए सर्वे आफ द श्रौतसूत्र, पृ० 47, जे० गोंडा द रिच्युल सूत्रज्, पृ० 516, डा० रामगोपाल, इ० वै० क० सू०, पृ० 505
49 बौ० गृ० सू० 3 9 6
50 द्रष्टव्य डा० ब्यूलर, सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट, खड 14, पृ० 30-36, डा० पी० वी० काण, हिस्ट्री आफ धर्मसूत्रज *खड 1*, *भाग 1*, डा० सुधीकान्त भारद्वाज, *लिंग्विस्टिक* स्टडी आफ धर्मसूत्रज, पृ० 13-14
51 डा० रामगोपाल, वही, पृ० 55

88 1 3 3—देवा ब्राह्मण आगच्छतागच्छतागच्छतीति गौतम
89 6 11 3
90 1 3 4—आगच्छति पूव देवाहुवानादनजय
91 10 20 15—दर्ष्टिरिति शाण्डिल्य
92 डा० रामगोपाल, इंडिया आफ वैदिक कल्पसूत्रज पृ० 493 तथा टिप्पणी 15, पृ० 524
93 यथा अप्टाधरेण प्रस्ताव इति एव पुराण ताण्ड ताण्डकमेव ताण्ड ये ब्राह्मणावछदास्तान पुराणास्ताण्डमित्युपचर्रा त ।
94 श्रौतसूत्राणामाम्नाता मीमांसायायस्य प्रणता भगवान जैमिनि भगवतो व्यासस्य कृष्णद्वैपायनस्य परमविप्रय शिष्य आसीत । जैमिनीयश्रौतसूत्रवत्ति, उपोदघात, पृ० 1
95 द्रष्टव्य—डा० रामगोपाल, इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्रज पृ० 496
96 वही
97 वही पृ० 497
98 जै० श्रौ० सू० वृ० उपोद्घात, पृ० 8 9
99 वै० सू० 10 17
100 Bloomfield the Atharvaveda and the Gopatha Brahmana p 102
101 द्रष्टव्य, डा० रामगोपाल वही पृ० 517
102 विस्तार के लिए देखें यज्ञपरिभाषासूत्र' तथा गोपथ ब्राह्मण 5 23
103 द्रष्टव्य, डा० रामगोपाल, वही टिप्पणी 13, पृ० 38, हमन ओल्डन बग से० बु० ई०, खड 29, पृ० 10
104 ओल्डन वग वही, पृ० 2
105 द्रष्टव्य, डा० रामगोपाल वही पृ० 20
106 हर्मन ओल्डनबग, वही, प० 3 4
107 T R. Chintamani Proceedings and Transactions of the IX Oriental Conferenu Trivandrum p 180 bb Introduction of K G S, p 17
108 वही, पृ० 17
109 विस्तृत विवरण के लिए देख, टी० आर० चिन्तामणि, कौ० गृ० सू० भूमिका, पृ० 21 22
110 वही
111 पीछे देख, पृ० 51
112 आ० गृह्य, सू० 3 1 3 पर नारायण वृत्ति
113 देखें, डॉ० रामगोपाल, वही पृ० 21 से 22
114 आश्व० श्रौ० सू० 9 11 21 पर रुद्रदत्त
115 संस्कार रत्नमाला, पृ० 607, डा० रामगोपाल वही, पृ० 31
116 वही, पृ० 170
117 ज गोडा, द रिच्युल सूत्रज, पृ० 589
118 भारद्वाज गृह्यसूत्र 1 11 चत्वारि विवाहकरणानि वित्त रूप प्रज्ञा बान्धवमिति तानि चेत्सर्वाणि न शक्नुयाद्वित्तमुदस्येत्ततो रूप प्रज्ञायां च तु बान्धवे च विवदन्ते बान्धवमुन्स्येदित्येक आहुप्रज्ञान हि क सवासोऽप्येतदपर न खल्वियमर्थ्य ऊह्यते प्रजाजनार्थोऽस्मा प्रधान ।

152 द्रष्टव्य, डा० रामगोपाल, वही, पृ० 36

153 चरण व्यूह, 2 1
यजुर्वेदस्य षडशीतिर्भेदा भवन्ति। तत्र चरका नाम द्वादश भेदा भवन्ति। चरका आह्वरका कठा प्राच्यकठा कपिष्ठलकठाश्चारायणीया वारायणीयो वार्तान्तवेयाः श्वेताश्वतरा औपमन्यव पाताण्डनीया मैत्रायणीयाश्चेति।

154 प्रो० नौअर (Knauer) *गोभिल गृह्यसूत्र का जर्मन अनुवाद भूमिका*, पृ० 24

155 ओल्डनबर्ग, सेक्रेड बुक्स आफ ईस्ट, खड 29, भूमिका, पृ० 4-5

156 ओल्डनबर्ग, वही, पृ० 10

157 डा० रामगोपाल, वही।

158 खा० गृ० सू० 1 3 4 तथा 3 1 9

159 तयोराप्लवन पूर्वम्। मन्त्राभिवादात्तु पार्णप्रहणस्य पूर्वं व्याख्यातम्, खा० गृ० सू० 1 3.3.4

160 *केलेण्ड, सम्पादन, जैमिनीय गृह्यसूत्र, भूमिका, पृ० 9*

161 जे० गोंडा, द रिच्युल सूत्रज् पृ० 608

162 डा० रामगोपाल, वही, पृ० 25

163 देखें ब्लूमफील्ड, कौशिक सूत्र, भूमिका

164 ब्लूमफील्ड, अथर्ववेद तथा गोपथ ब्राह्मण, पृ० 16

165 *स च त्रिविध —विधिर्नियम प्रतिषेधश्चेति।* तत्र प्रवृत्तिप्रयोजनो विधि.—सन्ध्योश्च बहिर्ग्रामादासन वाग्यतश्चेत्यादि। निवृत्तिप्रयोजनावितरौ। 'प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीते' ति नियमविधि। क्षुदुपघातार्था भोजने प्रवृत्ति। शक्य च यत्किंचिद्दिङ्मुखेनापि भुञ्जानेन क्षुदुपहन्तुम्। तत्र नियम क्रियते— प्राङ्मुख एव भुञ्जीत, न दक्षिणादिमुख इति परिसख्या तु नियमस्यैव क्रियानपि भेद:। एव द्रव्यार्जने रागात्प्रवृत्त प्रति नियम *क्रियते—'याजनाध्यापनप्रतिग्रहैरेव ब्राह्मणो द्रव्यमार्जयेत्, न कृषिवाणिज्यादिने' ति।* ब्राह्मणस्य गोरिति पदोपस्पर्शन वर्जयेदित्यादि: प्रतिषेध।

166 *द्रष्टव्य, पी० वी० काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, खड 1, भाग 1, पृ० 20*

167 मनुस्मृति 2 25 पर मेधातिथि का भाष्य

168 ऋग्वेद, 1 134 5, 1 22 18, 1 164 43 आदि

169 ऋग्वेद 8 35 13

170 ऋग्वेद, 8 98 1

171 *वाजसनेयिसहिता 15 6, तैत्तिरीयसहिता 3 5 2 2, अथर्ववेद 11 7 17 आदि।*

172. लाट्यायन श्रौतसूत्र 1.3.3.; 1 4 17
द्राह्यायण श्रौतसूत्र 1.4.17, 9.3.15

173 गोभिल गृह्यसूत्र, 3 10 6

174 पी० वी० काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, खड 1, भाग 1, पृ० 22-29

175 द्रष्टव्य सुधीकान्त भारद्वाज, *लिंग्विस्टिक स्टडी आफ धर्मसूत्रज्, पृ० 5-6; 15-19*

176 सुधीकान्त भारद्वाज, वही

177 ब्यूलर, सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट, खड 14, भूमिका, पृ० 33-35, काणे, वही, पृ० 42-44, रामगोपाल, वही, पृ० 54-55

178. सुधीकान्त भारद्वाज, वही, पृ० 8-13

179. वही, पृ० 10,13
180. बौ० ध० सू० 3 5 5.8, 1.3.5.13
181. पीछे देखें, बौधायन श्रौतसूत्र तथा सुधीकान्त भारद्वाज, वही, पृ० 14-15
182. सत्याषाढ श्रौतसूत्र पर महादेव का भाष्य,
    गार्बे, आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, खण्ड 3, प्राक्कथन, पृ० 17
    ब्यूलर, सेक्रेड बुक्स आफ ईस्ट, खण्ड 2, भूमिका, पृ० 18
    सुधीकान्त भारद्वाज, वही, पृ० 16
183. देखें सुधीकान्त भारद्वाज, वही, पृ० 19
184. देखें, सुधीकान्त भारद्वाज, वही
185. रामगोपाल, वही, पृ० 58-59
186. तन्त्रवार्तिक, बनारस संस्करण, पृ० 179
187. रामगोपाल, वही, पृ० 60 तथा टिप्पणी, 31, पृ० 67
188. ब्यूलर, सेक्रेड बुक्स आफ ईस्ट, खण्ड 14, भूमिका, पृ० 16
189. काणे, वही, पृ० 104
190. काणे, वही, पृ० 105
191. जौली, सेक्रेड बुक्स आफ ईस्ट, खण्ड 7; पी० वी० काणे, वही, पृ० 125
192 सुधीकान्त भारद्वाज, वही, पृ० 27-28

अध्याय-4

व्याकरण

वेदांग के रूप में व्याकरण को बहुत अधिक मान्यता मिली है। परन्तु दुर्भाग्य से पृथक् रूप में वैदिक भाषा का कोई भी व्याकरण हमें प्राप्त नहीं हुआ है। पाणिनि का ही एकमात्र प्राचीन व्याकरण हमें प्राप्त हुआ है जिसमें वैदिक भाषा के रूपों पर प्रकाश डाला गया है। परन्तु पाणिनीय व्याकरण मुख्य रूप से लौकिक भाषा के लिए लिखा गया है, वैदिक रूपों के लिए तो अपवाद के रूप में ही नियम दिए गए हैं। इसलिए शंका उठती है कि क्या वास्तव में ऐसे व्याकरण लिखे गए जिसमें केवल वैदिक भाषा का ही विश्लेषण हुआ हो। पतञ्जलि भी किसी ऐसे व्याकरण से परिचित नहीं था जिसमें केवल वैदिक भाषा के शब्दों पर विचार हुआ हो। उन्होंने शब्दानुशासन में लौकिक और वैदिक दोनों ही प्रकार के शब्दों का विश्लेषण बताया है—

'शब्दानुशासन नाम शास्त्रमधिकृत वेदितव्यम्।
केषां शब्दानाम्? लौकिकानां वैदिकानां च।'[1]

यद्यपि पतञ्जलि का उपर्युक्त कथन पाणिनि व्याकरण के सन्दर्भ में है परन्तु पतञ्जलि के महाभाष्य में ऐसा कोई संकेत नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि केवल वैदिक शब्दों को लेकर ही कोई व्याकरण लिखा गया हो। पतञ्जलि

ने बृहस्पति द्वारा इन्द्र को एक-एक शब्द के द्वारा व्याकरण पढ़ाए जाने का उल्लेख किया है। एक हजार दिव्य वर्षों में भी बृहस्पति प्रतिपद के द्वारा सभी शब्दों का विश्लेषण नहीं कर सका था—एवं हि श्रूयते—बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम।

इससे प्रतीत होता है कि बृहस्पति ने न केवल वैदिक संहिताओं में प्रयुक्त शब्दों का ही विश्लेषण किया था अपितु लोक में प्रयुक्त शब्दों का भी विश्लेषण किया था क्योंकि संहिताओं में प्रयुक्त शब्द सीमित थे उनका अन्त आ जाना सम्भव था। अनन्त शब्द तो लोक में ही होते हैं जहां प्रतिदिन नये शब्दों का जन्म होता है। इससे प्रतीत होता है कि व्याकरण ग्रन्थों की परम्परा समस्त भाषा का विश्लेषण करने की रही है, न केवल संहिताओं में प्रयुक्त भाषा की।

व्याकरण की वेदांगता

जब व्याकरण सम्पूर्ण भाषा-प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है जिसमें लोक-भाषा भी सम्मिलित है तो व्याकरण को वेदांग क्यों कहा गया है? पतंजलि ने व्याकरण को सबसे प्रमुख वेदांग माना है—'प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्। प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान्भवति।'[2] इसी प्रकार भर्तृहरि ने भी व्याकरण को वेद के सर्वाधिक निकट, सर्वोत्तम तप और सबसे पहला वेदांग माना है—

आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः।
प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहुर्व्याकरणं बुधाः॥'[3]

पतंजलि ने व्याकरण की वेदांगता पर बहुत प्रकाश डाला है। यद्यपि व्याकरण लौकिक और वैदिक दोनों ही प्रकार के शब्दों का विश्लेषण करता है तथापि व्याकरण का वैदिक संहिताओं के संदर्भ में बहुत उपयोग होता रहा है। व्याकरण केवल सीमित शब्दों या प्रयोगों का ही विश्लेषण नहीं करता है, अपितु भाषा की प्रवृत्तियों को नियमबद्ध भी करता है जिसके आधार पर आवश्यकतानुसार शब्दों में परिवर्तन किया जा सकता है और नये प्रयोगों का अन्वेषण भी हो सकता है। वेदों के सन्दर्भ में भी व्याकरण की बहुत आवश्यकता पड़ती थी। पतंजलि के व्याकरण के प्रयोजनों में दस ऐसे प्रयोजन हैं जो वेदों से सम्बन्धित हैं।[1] उनका संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है—

1. पतंजलि ने व्याकरण का सबसे प्रमुख प्रयोजन वेदों की रक्षा बताया है। व्याकरण से लोप, आगम, वर्ण-विकारादि भाषा-प्रवृत्तियों का ज्ञान होता है। इनके ज्ञान होने पर ही वेदों के पाठ को सुरक्षित रखा जा सकता है—रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। लोपागमवर्णविकारज्ञो हि सम्यग्वेदान्परिपालयति।

2. यज्ञ मे वैदिक शब्दो का यथावत् प्रयोग नही किया जाता अपितु लिंग और विभक्ति का प्रयोग यथाप्रसग बदल दिया जाता है। यह कार्य केवल व्याकरण के ज्ञान से हो सकता है—
न सर्वैर्लिगैर्न च सर्वाभिविभक्तिभिर्वेदे मन्त्रा निगदिताः। ते चावश्य यज्ञगतेन यथायथ विपरिणमयितव्या। तन्नावैयाकरण शक्नोति यथायथ विपरिणमयितुम्। तस्मादध्येय व्याकरणम्।
3 वेदो का छह अगो सहित अध्ययन करने से धर्म की प्राप्ति होती है। इन छह अगो मे व्याकरण प्रधान है। अत व्याकरण का अध्ययन सर्वाधिक फलदायक है—
ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेय इति। प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्। प्रधाने च कृतो यत्न फलवान्भवति।
4 वेदो मे स्वर के परिवर्तन से ही अर्थ मे परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणतया, 'स्थूलपृषती' शब्द के पूर्वपद पर यदि उदात्त स्वर होगा तो बहुव्रीहि समास होगा, यदि अन्तिम पद पर होगा तो तत्पुरुष समास होगा। यह ज्ञान वैयाकरण को ही हो सकता है—
याज्ञिका पठन्ति। स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेतेति। तस्या सन्देह स्थूला चासौ पृषती च स्थूलपृषती स्थूलानि पृषन्ति यस्या सा स्थूलपृषतीति। ता नावैयाकरण स्वरतोऽध्यवस्यति।
5. वैदिक यज्ञो मे उच्चारण की शुद्धता का बहुत महत्त्व है। यदि एक भी स्वर का दोष हो जाए तो मन्त्र का अर्थ विपरीत भी हो सकता है—
दुष्ट शब्द स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्र यजमान हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात्॥
6 वैदिक मन्त्रो का अर्थ जानना वेदो के पढने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। मन्त्रो के अर्थ का ज्ञान व्याकरण के बिना नहीं हो सकता—
'तस्मादनर्थक माधिगीष्म हीत्यध्येय व्याकरणम्।'
7 यज्ञ मे प्रयाजमन्त्र विभक्तियुक्त पढे जाते हैं। व्याकरण के अध्ययन के बिना विभक्तियो का ज्ञान नहीं हो सकता—
प्रयाजा सविभक्तिका कार्या इति। न चान्तरेण व्याकरण प्रयाजा सविभक्तिका शक्या कर्तुम्।
8 यज्ञ मे ऋत्विक् कर्म करने के लिए वेद मन्त्रो के उच्चारण मे स्वर अथवा अक्षर का भी भेद नही होना चाहिए। इस प्रकार के उच्चारण करने वाले याज्ञिक को ही आर्त्विजीन कहा जा सकता है, जो एक वैयाकरण ही हो सकता है—
यो वा इमा पदश स्वरशोऽक्षरशो वाच विदधाति स आर्त्विजीनो भवति।

आर्त्विजीना स्यामित्यध्येयं व्याकरणम्।

9 अपशब्द के उच्चारण से यज्ञ दूषित हो जाता है और उसके लिए प्रायश्चित करना पड़ता है। प्रायश्चित से बचने के लिए व्याकरण का अध्ययन करना आवश्यक है—

याज्ञिका पठन्ति। आहिताग्निरपशब्दं प्रयुज्य प्रायश्चित्तीया सारस्वतीमिष्टिं निर्वपेदिति। प्रायश्चित्तीया मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्।

10 नामकरण संस्कार में नाम का उच्चारण कृत्-प्रत्ययान्त होना चाहिए, न कि तद्धित प्रत्ययान्त। वैयाकरण को ही कृत् और तद्धित का ज्ञान हो सकता है, अन्य को नहीं—

न चान्तरेण व्याकरणं कृतस्तद्धिता वा शक्या विज्ञातुम्।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वैदिक यज्ञों में व्याकरण का बहुत बड़ा योगदान था, अतः व्याकरण की वेदांगता स्वतः सिद्ध है।

व्याकरण और शिक्षा वेदांग में सम्बन्ध

जैसा कि शिक्षा वेदांग के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है प्रातिशाख्यों में वेदों के शुद्ध उच्चारण से सम्बन्धित अनेक नियमों का प्रतिपादन किया गया है। वेदों के सन्दर्भ में व्याकरण का मुख्य प्रयोजन भी वेदों के शुद्ध पाठ से रहा है। तो फिर दोनों वेदांगों में क्या अन्तर हुआ? दोनों वेदांगों का एक वेदांग के अंतर्गत ही रखा जा सकता था। इस विषय में पतंजलि ने पाणिनि व्याकरण के सम्बन्ध में थोड़ा-सा प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि 'प्राचीन काल में संस्कार के बाद ब्राह्मण व्याकरण पढ़ते थे। स्थान, करण और अनुप्रदान का ज्ञान हो जाने पर उन्हें वैदिक शब्दों का उपदेश कराया जाता था, परन्तु आजकल ऐसा नहीं होता। वेद को पढ़कर लोग तुरन्त भाषण देने लग जाते हैं और कहते हैं कि वेद से वैदिक शब्दों का ज्ञान हो गया तथा लोक से लौकिक शब्दों का, इस लिए व्याकरण को पढ़ना निरर्थक है। इसी प्रकार के विपरीत बुद्धि वाले विद्यार्थियों के लिए ही आचार्य ने इस शास्त्र (अर्थात् पाणिनीय शब्दानुशासन) की पूर्वशास्त्रों के आधार पर रचना की'—

'संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते। तेभ्यस्तत्र स्थानकरणानुप्रदानज्ञेभ्यो वैदिकाः शब्दा उपदिश्यन्ते। तदद्यत्वे न तथा। वेदमधीत्य त्वरिता वक्तारो भवन्ति। वेदान्नो वैदिकाः शब्दाः सिद्धा लोकाच्च लौकिकाः। अनर्थकं व्याकरणमिति। तेभ्य एव विप्रतिपन्नबुद्धिभ्योऽध्येतृभ्य आचार्य इदं शास्त्रमन्वाचष्टे।'[5]

पतंजलि के उपर्युक्त कथन से जिस बात का ज्ञान होता है वह यह है कि स्थान, करण और अनुप्रदान (बाह्यप्रयत्न) का ज्ञान व्याकरण शास्त्र के द्वारा

होता था। परन्तु उपलब्ध वेदांगो मे स्थान, करण तथा अनुप्रदान का विवरण प्रातिशाख्यों मे है। प्रातिशाख्य शिक्षा वेदांग के अन्तर्गत हैं। पाणिनीय व्याकरण म स्थान, करण, अनुप्रदान का विवरण नही है। इससे यह प्रतीत होता है कि पाणिनि के काल तक स्थान, करण और अनुप्रदान के अध्ययन मे रुचि समाप्त हो गई। इसीलिए उन्हे सीधा ही शब्दशास्त्र का उपदेश दिया जाने लगा। उपर्युक्त सन्दर्भ मे 'अन्वाचष्टे' पद महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है 'के अनुसार व्याख्यान किया'। इससे स्पष्ट है कि पाणिनि ने उन्ही शब्दशास्त्रो का अनुसरण किया जो उससे पूर्व विद्यमान थे।

उपर्युक्त विवरण से दो बातें प्रकाश मे आती हैं—

1. जो विषय आज प्रातिशाख्यो मे वर्णित है वह पहले व्याकरण का विषय था, तथा 2 पाणिनि ने पूर्व-व्याकरण-शास्त्र का अनुसरण किया। इसमे यह प्रतीत होता है कि षड्वेदागो के विभाजन से पहले शिक्षा और व्याकरण वेदाग एक ही व्याकरण शास्त्र के अन्तर्गत थे परन्तु बाद म दोनों पृथक्-पृथक् हो गए। ध्वनि-शास्त्र शिक्षा वेदाग के अन्तर्गत आ गया और शब्द-शास्त्र व्याकरण वेदाग के अन्तर्गत आ गया परन्तु इसका अर्थ यह नही कि यह विभाजन पाणिनि के काल मे हुआ। पाणिनि से बहुत पहले ही यह विभाजन हो चुका था। प्रातिशाख्य निश्चित रूप से पाणिनि से पूर्व के हैं। पाणिनि से पूर्ववर्ती अनेक वैयाकरण हुए है। पाणिनि से पूर्व ग्रन्थो म ही षड्वेदागो का उल्लेख है।

आज जो प्रातिशाख्य उपलब्ध है उनके रचयिताओं तथा पाणिनि के सम्मुख मूल व्याकरण ग्रन्थ भी उपलब्ध रहे होगे जिनम प्रातिशाख्य तथा शब्दानुशासन के विषय सम्मिलित रूप से वर्णित होगे।

व्याकरणशास्त्र का उद्गम और विकास

व्याकरण भाषा का अविच्छिन्न अग है। जब भी भाषा के रूप पर विचार किया जाता है, तब से ही व्याकरण-शास्त्र का जन्म हो जाता है। ऋग्वेद मे व्याकरण शब्द तथा व्याकरण से सम्बन्धित अनेक पारिभाषिक शब्द, यथा—शब्द, आख्यात, उपसर्ग, निपात, धातु, सन्धि, समास, कारक, विभक्ति, प्रकृति, प्रत्यय, परस्मैपद, आत्मनेपद आदि उपलब्ध नही है। परन्तु ऋग्वेद काल मे व्याकरण सम्बन्धी विश्लेषण प्रारम्भ हो गया था। इसके अनेक सकेत मिलते हैं। पतजलि ने पाच वेदमन्त्रों म व्याकरण सम्बन्धी तत्त्वों का विश्लेषण प्रदर्शित किया है। ऋग्वेद मे पदो के चार भाग, सात विभक्तियो तथा उनके 21 रूप, क्रिया रूप तथा उनके प्रत्यय आदि विषयो का ज्ञान हो गया था।[6] परन्तु इनस सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दो का अभी विकास नही हुआ था।

व्याकरण शब्द का प्रयोग हमे बहुत बाद के साहित्य मे मिलता है। प्राचीन

साहित्य में व्याकरण शब्द का प्रयोग गोपथ ब्राह्मण[7], मुण्डकोपनिषद[8], रामायण[9], तथा महाभारत[10] में मिलता है। परन्तु इनसे पूर्व ही व्याकरण-शास्त्र का विकास हो चुका था। तैत्तिरीय संहिता में वि उपसर्ग पूर्वक कृ धातु का प्रयोग भाषा के विश्लेषण के अर्थ में ही हुआ है—

वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत् ते देवा इन्द्रमब्रुवन्, इमां नो वाच व्याकुर्विति··· तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्।[11]

मैत्रायणी संहिता में विभक्ति संज्ञा का उल्लेख हुआ है।[12] ब्राह्मण काल तक व्याकरण की अनेक संज्ञाएं व्यवहार में आ चुकी थीं। गोपथ ब्राह्मण में धातु, प्रातिपदिक, नाम, आख्यात, लिंग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर, उपसर्ग, निपात, व्याकरण, विकार, वर्ण, अक्षर आदि संज्ञाओं का उल्लेख है—

ओंकारं पृच्छाम। को धातुः किं प्रातिपदिकं, किं नामाख्यातं, किं लिङ्गं, किं वचनं, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वरः, उपसर्गो निपातः, किं वै व्याकरणं, को विकारः, को विकारी, कतिमात्रः, कतिवर्णः, कत्यक्षरः, कतिपदः, कः संयोगः, किं स्थाननादानुप्रदानानुकरणम्··· ।[13]

गोपथ ब्राह्मण की प्राचीनता निःसन्देह विवादास्पद है। परन्तु अन्य प्राचीन ब्राह्मणों में भी व्याकरण सम्बन्धी अनेक संज्ञाएं उपलब्ध होती हैं। उपनिषद् के काल तक शिक्षा और व्याकरण वेदांग पृथक् हो चुके थे। तैत्तिरीयोपनिषद् में 'शिक्षा' नाम से पृथक् अध्याय दिया हुआ है, यह बात शिक्षा वेदांग के अन्तर्गत वर्णित हो चुकी है। इससे स्पष्ट है कि व्याकरण शास्त्र का अस्तित्व ब्राह्मण काल में ही अच्छी प्रकार से स्थापित हो चुका था।

व्याकरणशास्त्र की आवश्यकता

सम्भवतः ऋग्वेद काल में ही व्याकरण शास्त्र की आवश्यकता पड़ गई थी। अनेक स्थानों पर ऋग्वेद में सुन्दर भाषा का उपदेश देने की प्रार्थना देवताओं से की गई है। ऋग्वेद के ऋषियों को सुन्दर और सजी हुई भाषा से विशेष प्रेम था। इसलिए स्तुति शब्द के साथ वे प्रायः सु उपसर्ग का प्रयोग करते थे। भाषा मर्मज्ञों के अनेक भेद हो गए थे। भाषाविद् के रूप में हमें अनेक नाम ऋग्वेद में मिलते हैं, यथा—ऋषि, कवि, विप्र, विद्वान्, कारु, कीस्ताम, जरिता, निविद्, अर्की, स्तोता आदि। परन्तु व्याकरण शास्त्र की पृथक् शास्त्र के रूप में आवश्यकता उस समय पड़ी जब ऋग्वेद के मन्त्रों का अर्थ समझना कठिन हो गया था। निरुक्त की रचना के सन्दर्भ में यास्क ने यह स्पष्ट कहा है कि ऋषियों को मन्त्रार्थ पूर्णतः स्पष्ट थे। परन्तु बाद की पीढ़ियों को अर्थ समझना कठिन हो गया। वेदों की भाषा ज्यों-ज्यों लोक भाषा से दूर होती गई, त्यों-त्यों ही वह कठिन होती गई। इसीलिए ऐसे शास्त्र की आवश्यकता पड़ी जो पदों का विच्छेद करके उसके

अर्थ को स्पष्ट कर सके। शाकल्यकृत ऋग्वेद का पदपाठ इसी आवश्यकता का फल है। जैसा कि पतजलि द्वारा बताए हुए व्याकरण के प्रयोजनो से स्पष्ट है, यज्ञ के सम्बन्ध मे भी व्याकरण शास्त्र अनिवार्य हो गया था। वेदमन्त्रो के स्वर तथा वेदमन्त्रो को भिन्न-भिन्न सन्दर्भों मे परिवर्तित रूप मे प्रयुक्त करना व्याकरण से ही साध्य था। अत व्याकरण का पृथक् शास्त्र के रूप मे निर्माण हुआ।

व्याकरणशास्त्र के आदि प्रवक्ता

व्याकरण शास्त्र का प्रथम प्रवक्ता कौन था, यह कहना सम्भव नही है। ऋक्तन्त्र के अनुसार व्याकरण का प्रथम प्रवक्ता ब्रह्मा था। ब्रह्मा ने यह शास्त्र बृहस्पति को दिया था, बृहस्पति ने इन्द्र को, इन्द्र ने भारद्वाज को, भारद्वाज ने ऋषियो को तथा ऋषियो ने ब्राह्मणो को दिया—

ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्य, ऋषयो ब्राह्मणेभ्य ।[14]

ब्रह्मा कोई वास्तविक व्यक्ति है या मिथकीय, यह कहना कठिन है। भारतीय परम्परा ब्रह्मा को सृष्टि का कर्ता मानती है। इसलिए प्रत्येक विद्या का प्रारम्भ ब्रह्मा से ही माना जाता है। प० भगवद्दत्त ने ब्रह्मा को 22 शास्त्रो का प्रवक्ता बताया है।[15]

बृहस्पति की स्थिति भी ब्रह्मा जैसी ही है। बृहस्पति वाणी के देवता माने जाते हैं। इन्हे देवताओ का पुरोहित भी कहा गया है। यही बृहस्पति व्याकरण शास्त्र के दूसरे प्रवक्ता हैं। ब्रह्मा की भाति ये भी कोई मिथकीय व्यक्ति है या कोई वास्तविक व्यक्ति, यह कहना सम्भव नही है। पतजलि ने भी इस बात की पुष्टि की है कि बृहस्पति ने इन्द्र को शब्द शास्त्र का उपदेश दिया था। सम्भवत उनके ग्रन्थ का नाम 'शब्दपारायण' था। महाभारत के अनुसार बृहस्पति ने समस्त वेदागो का प्रवचन किया था।[16] इनके अतिरिक्त बृहस्पति अनेक ग्रन्थो के रचयिता माने जाते हैं, यथा अर्थशास्त्र, सामगान, इतिहास, पुराण, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र अगदतन्त्र आदि। इन सब ग्रन्थो का रचयिता एक बृहस्पति नही हो सकता। सम्भव है बृहस्पति उपाधि हो जिसे भिन्न-भिन्न व्यक्तियो ने ग्रहण किया हो।

बृहस्पति के बाद इन्द्र का वैयाकरण के रूप मे नाम आता है। तैत्तिरीय सहिता और महाभाष्य म इन्द्र का नाम व्याकरण स जोडा जाता है। व्याकरण सम्प्रदायो म ऐन्द्र सम्प्रदाय प्रसिद्ध है, जिसका तन्त्र व्याकरण आज भी प्रसिद्ध है। ऐन्द्र व्याकरण की पुष्टि और कई प्रमाणो से होती है। हेमबृहद् वृत्यावचूर्णि म 8 व्याकरणो मे एक व्याकरण ऐन्द्र बताया गया है—

ब्राह्ममैशानमैन्द्रं च प्राजापत्यं बृहस्पतिम् ।
त्वाष्ट्रमापिशलं चेति पाणिनीयमथाष्टमम् ॥[12]

आठ व्याकरणों का उल्लेख पृथक्-पृथक् ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ है परन्तु ऐन्द्र व्याकरण सभी में सम्मिलित है, यथा—

कविकल्पद्रुम—

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥

तत्त्वनिधि नामक वैष्णव ग्रन्थ—

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम् ।
सारस्वतं चापिशलं शाकल्यं पाणिनीयकम् ॥

इससे स्पष्ट है कि इन्द्र कोई वैयाकरण हुए हैं। परन्तु पाणिनि ने इन्द्र का उल्लेख नहीं किया है।

आदि वैयाकरणों में शिव या महेश्वर का नाम भी लिया जाता है। पाणिनीय शिक्षा के अनुसार पाणिनि ने अक्षर समाम्नाय को महेश्वर से ही ग्रहण किया था—

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥

नन्दीकेश्वर कारिका में 14 प्रत्याहार सूत्रों का रचयिता शिव ही बताया गया है—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

अन्य स्थानों पर भी शिव को व्याकरण या वेदांग का प्रवक्ता बताया गया है। महाभारत के शान्तिपर्व में शिव को षडंग का प्रवर्तक बताया गया है—

वेदान् षडङ्गानुद्धृत्य...[13]

हैमबृहद् वृत्त्यवचूर्णि में आठ व्याकरणों में एक नाम ऐशान व्याकरण का भी लिया गया है। ऐशान का अर्थ है शैव व्याकरण क्योंकि ईशान शिव के लिए ही प्रयुक्त होता है।

ऋग्वेदकल्पद्रुम में आठ व्याकरणों के अन्तर्गत एक नाम रौद्र व्याकरण का भी गिनाया गया है—

तत्राद्यं ब्राह्ममुदितं द्वितीयं चान्द्रमुच्यते ।
तृतीयं याम्यमाख्यातं, चतुर्थं रौद्रमुच्यते ।
वायव्यं पञ्चमं प्रोक्तं षष्ठं वारुणमुच्यते ।
सप्तमं सौम्यमाख्यातमष्टमं वैष्णवं तथा ॥

उपर्युक्त सभी नाम अर्थात् ब्रह्मा, चन्द्र, यम, रुद्र, वायु, वरुण, सोम तथा

विष्णु दैवी नाम हैं। ये वास्तव में व्याकरण शास्त्र के रचने वाले लौकिक व्यक्ति हैं, इस बात में सन्देह है। भारत की यह प्राचीन परम्परा रही है कि प्रत्येक शास्त्र को किसी देव के साथ जोड़ दिया जाता है ताकि उसकी प्राचीनता और दिव्यता सिद्ध हो सके। अत व्याकरण शास्त्र के ब्रह्मा आदि आचार्य वास्तविक व्यक्ति हैं या कल्पित निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यह सम्भव है कि कुछ प्राचीन वैयाकरणों ने ब्रह्मा आदि उपाधि धारण की हो और बाद में इन्हें नामों को इन नामों से विख्यात देवों के आधार पर उन्हें दैवी गुणों से मण्डित कर दिया गया हो।

पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरण

पाणिनि से पूर्व अनेक वैयाकरण हो चुके हैं। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में दस आचार्यों का नामोल्लेख किया है। ये आचार्य हैं —1 आपिशलि (वा सुप्यापिशले, पा० 6 1 92), 2 काश्यप (तृषिमृषिकृशे काश्यपस्य, पा० 1 2 25), 3 गार्ग्य, 4 गालव (अड्गार्ग्यगालवया 7 3 99) 5 चाक्रवर्मण (ई चाक्रवर्मणस्य, 6 1 30), 6 भारद्वाज (ऋतो भारद्वाजस्य, 7 2.63), 7 शाकटायन (लङ शाकटायनस्यैव, 3 4 111), 8 शाकल्य (लोप शाकल्यस्य 8 3 19), 9 सेनक (गिरश्च सेनकस्य 5 4 112) तथा स्फोटायन (अवङ् स्फोटायनस्य 6 1 123),

उपर्युक्त वैयाकरणों में से कुछ वैयाकरण बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन हैं। गार्ग्य, गालव, शाकटायन तथा शाकल्य का उल्लेख यास्क के निरुक्त में भी हुआ है।[19] काश्यप का उल्लेख वाजसनेयि प्रातिशाख्य,[20] गार्ग्य का उल्लेख ऋक्[21] तथा वाजसनेयि प्रातिशाख्य[22], भारद्वाज का उल्लेख तै० प्रातिशाख्य[23], शाकटायन का उल्लेख ऋक् प्रातिशाख्य[24], वाजसनेयि-प्रातिशाख्य[25] तथा ऋक्तन्त्र[26] में हुआ है। शाकल्य का उल्लेख ऋ० प्रा०[27] तथा वाजसनेयि प्रातिशाख्य[28] में हुआ है।

पाणिनि द्वारा गिनाए गए आचार्यों के अतिरिक्त और भी बहुत से प्राचीन वैयाकरण हुए हैं। युधिष्ठिर मीमांसक ने प्रातिशाख्यों में स्मृत कुल 59 आचार्यों के नाम गिनाए हैं।[29]

ऐन्द्र व्याकरण

पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरणों के व्याकरण हमें प्राप्त नहीं हुए हैं। परन्तु पाणिनि से प्राचीन व्याकरणों के उल्लेख यत्र-तत्र अवश्य हुए हैं जिससे प्रतीत होता है कि पाणिनि से पूर्व अनेक व्याकरण विद्यमान थे। इस सन्दर्भ में ऐन्द्र व्याकरण का उल्लेख करना आवश्यक है। महाभारत के टीकाकार देवबोध के कथन से ज्ञात होता है कि ऐन्द्र व्याकरण का आकार बहुत बड़ा था जिसकी तुलना

में पाणिनि-व्याकरण तो इतना छोटा था जैसे समुद्र की तुलना में गाय का खुर—

यान्युज्जहार माहेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे ॥[30]

तिब्बतीय ग्रन्थों के अनुसार ऐन्द्रव्याकरण का आकार 25 हजार श्लोक था।

कथा सरित्सागर के अनुसार ऐन्द्रव्याकरण अति प्राचीन काल में ही नष्ट हो चुका था। युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार ऐन्द्र व्याकरण के दो सूत्र उपलब्ध हैं। एक सूत्र का उल्लेख चरक के व्याख्याकार भट्टारक हरिश्चन्द्र ने किया है जो इस प्रकार है—शास्त्रेष्वपि—अथ वर्णसमूह इति ऐन्द्रव्याकरणस्य। दूसरे सूत्र का उल्लेख निरुक्त के वृत्तिकार दुर्गाचार्य ने किया है—

नैकं पदजातम् अर्थः पदम्' इत्यैन्द्राणाम्।

इसका अर्थ है कि ऐन्द्रव्याकरणम् में प्रारम्भ में वर्ण समूह का उपदेश किया गया था। अन्य प्रमाणों से भी ऐन्द्रव्याकरण की सत्ता सिद्ध होती है।

भागुरि-व्याकरण

भागुरि निश्चित रूप से एक प्रसिद्ध वैयाकरण थे। परन्तु उनका व्याकरण हमें उपलब्ध नहीं हुआ है। पाणिनि ने उनके किसी मत का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु बाद के ग्रन्थों में कई स्थानों पर भागुरि के मतों का उल्लेख हुआ है। भाषावृत्ति में (4 1 10) 'नप्तेति भागुरिः' इस प्रकार उल्लेख किया गया है। जगदीश तर्कालंकार ने शब्दशक्तिप्रकाशिका में भागुरि का मत इति भागुरिस्मृते' कहकर दिया है।[31] आदि आकार के लोप के सन्दर्भ में भागुरि का मत प्रसिद्ध है—

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः। आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशादिशा ॥[32]

इस नियम के अनुसार अवगाह्य का वगाह्य तथा अपिधानम् का पिधानम् रूप बनता है। हलन्त शब्दों से स्त्रीलिंग प्रत्यय आप् का विधान किया गया है जिससे वाचा, निशा तथा दिशा शब्द निष्पन्न होते हैं।

युधिष्ठिर मीमांसक भागुरि को पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्यों में गिनते हैं। परन्तु भागुरि के नाम से जिस प्रकार के मत उद्धृत किए गए हैं, उनसे भागुरि-व्याकरण पाणिनीय व्याकरण से बाद का प्रतीत होता है। उदाहरणतया, भागुरिस्मृति के नाम से जो मत दिए गए हैं, वे अवलोकनीय हैं—

गुपुधूपविच्छिपणिपन्यायः कर्मस्तु णित्।
ऋतेरियङ् चतुर्थेषु नित्यं स्वार्थे, परत्र वा ॥

यह श्लोक पाणिनि के सूत्र गुपुधूपविच्छिपणिपनिभ्य आय (3 1 28) ऋतेरियङ्

(3 1 29) कर्मणिङ (3 1 30) आदि सूत्रो का श्लोकीकरण मात्र है। इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है—

गुपो वधेश्च निन्दाया, क्षमाया तथा तिज ।
प्रतीकाराद्यर्थकाच्च कित स्वार्थे सनो विधि ॥

यह श्लोक पाणिनि के सूत्र 'गुप्तिज्किद्भ्य सन् (3 1 5) तथा वार्तिक 'निन्दा क्षमाव्याधिप्रतीकारेषु सन्निष्यते *अन्यत्र यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति*' का ही श्लोक के रूप मे रूपान्तरण है।

इससे स्पष्ट है कि भागुरि का काल बहुत बाद का है। शैली की दृष्टि से भी इन श्लोको को पाणिनि से पूर्व का नही माना जा सकता। इयङ्, णिङ् आदि अनुबन्ध युक्त प्रत्ययो का प्रयोग पाणिनि से पूर्व नहीं मिलता है। प्रातिशाख्य आदि ग्रथो मे भी भागुरि का नाम कही नही मिलता है। भागुरि का काल निश्चित रूप से पतजलि के बाद का है।

काशकृत्स्न व्याकरण

महाभाष्य पस्पशाह्निक ग्रन्थ के अन्त मे काशकृत्स्न का स्मरण पाणिनि और आपिशलि के साथ हुआ है—पाणिनिना प्रोक्त पाणिनीयम् आपिशलम् काशकृत्स्नम्। यद्यपि पाणिनि ने वैयाकरण के रूप मे काशकृत्स्न का स्मरण नही किया है तथापि काशकृत्स्न और अरीहादि गण म कशकृत्स्न शब्द पठित ह। कशकृत्स्न से ही अपत्याथ म काशकृत्स्न शब्द निष्पन्न होता है। युधिष्ठिर मीमासक काशकृत्स्न को महाभाष्य के क्रम की दृष्टि स पाणिनि और आपिशलि दोना से प्राचीन मानत हैं।

काशकृत्स्न न व्याकरण लिखा था, इसकी पुष्टि कई उल्लखो स होती है। बोपदव ने कविकल्पद्रुम मे आठ प्रसिद्ध व्याकरणो म काशकृत्स्न व्याकरण का नाम गिनाया है। क्षीरस्वामी न क्षीरतरगिणी मे काशकृत्स्न का मत दिया है—*काशकृत्स्ना अस्य निष्ठायामनिट्त्वमाहु, आश्वस्त, विश्वस्त।*' इसी प्रकार बाद के अनेक व्याकरण—व्याख्या ग्रथो मे काशकृत्स्न का नाम गिनाया गया है। काशकृत्स्न का एक धातुपाठ भी उपलब्ध है जिसमे पाणिनीय धातुपाठ म पठित धातुओ की अपेक्षा 450 धातुए अधिक हैं।

व्याडिकृत सग्रह

पाणिनि म पूर्ववर्ती आचार्यों म व्याडि का नाम उल्लेखनीय है। व्याडि न किसी सग्रह नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसम सूत्र या श्लोकों की सख्या एक लाख थी। इस बात की पुष्टि अनेक प्रमाणो से होती है। नागेश ने महाभाष्य प्रदीपोद्योत म लिखा है—सग्रहो व्याडिकृतो लक्षसख्यो ग्रन्थ। भर्तृहरिकृत

महाभाष्य दीपिका मे भी संग्रह का उल्लेख हुआ है—संग्रहोऽप्यस्यैव शास्त्रस्यैकदेश । महाभाष्यकार पतजलि संग्रह नामक ग्रन्थ से परिचित थे। शब्द के कार्य अथवा नित्य होने के विषय में पतजलि ने कहा है कि यह विषय विशेष रूप से संग्रह मे परीक्षित है कि शब्द कार्य है अथवा नित्य—

"संग्रह एतत्प्राधान्येन परीक्षित नित्यो वा स्यात कार्यो वेति।"

महाभाष्य 2 3 66 पर पतजलि ने संग्रह को दाक्षायण की कृति माना है—'शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृति ।"

व्याडि एक प्राचीन नाम है जिसका उल्लेख ऋक्प्रातिशाख्य मे शाकल्य और गार्ग्य के साथ हुआ है—व्याडिशाकल्यगार्ग्या । परन्तु संग्रहकार व्याडि और ऋक्प्रातिशाख्य म उल्लिखित व्याडि एक ही व्यक्ति है, यह निश्चित रूप स नहीं कहा जा सकता। ऋक्प्रातिशाख्य पाणिनि से पूर्ववर्ती ग्रन्थ है। परन्तु वाक्यप्रदीप के टीकाकार पुण्यराज ने 'संग्रह' को पाणिनीय व्याकरण पर लिखा हुआ ग्रन्थ बताया है—

इह पुरा पाणिनीयेऽस्मिन् व्याकरणे व्याड्युपरचित लक्षग्रन्थ परिमाण • संग्रहाभिधान निबन्धमासीत्।

समुद्रगुप्त द्वारा रचित मान गए 'कृष्णचरितम्' नामक काव्य मे व्याडि को 'दाक्षिपुत्रवचोव्याख्यापटु' अर्थात् दाक्षिपुत्र के वचनों की व्याख्या करने में निपुण बताया है। दाक्षिपुत्र पाणिनि के लिए प्रयुक्त होता है। इन उल्लेखो स व्याडि, पाणिनि के बाद का सिद्ध होता है। महाभाष्य म (6 2 36) पर व्याडि का आपिशलि आदि के साथ इस क्रम मे याद किया गया है—'आपिशलपाणिनीयव्याडीयगौतमीया ।' यदि यह क्रम काल का द्योतक है तो व्याडि निश्चित रूप स पाणिनि के बाद के सिद्ध होते हैं। इस अवस्था म ऋक् प्रातिशाख्य म उल्लिखित व्याडि तथा संग्रहकार व्याडि दो भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं।

युधिष्ठिर मीमासक व्याडि को पाणिनि का मामा मानते हैं। काशिका मे व्याडि को दाक्षि कहा गया है। दाक्षि और दाक्षायण को एक मानते हुए युधिष्ठिर मीमासक व्याडि को पाणिनि से कुछ पूर्व का मानते हैं।[33] परन्तु यह बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती।

आपिशलि-व्याकरण

पाणिनि ने स्वय आपिशलि का मत उद्धृत किया है। पतजलि ने भी आपिशलि का पाणिनि म पूर्व स्मरण किया है। अत यह निर्विवाद सिद्ध है कि आपिशलि पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरण थे। आपिशलि का कोई व्याकरण उपलब्ध नहीं है। युधिष्ठिर मीमासक ने अनेक ग्रन्थों में दिए हुए उद्धरणों के आधार पर आपिशलि द्वारा रचित 11 सूत्र खोजे हैं।[34] इन सूत्रों में एक सूत्र यह भी है—

'तुरुस्तुशम्यम सार्वधातुकासुच्छन्दसि ।' इसका निर्देश काशिका वृत्ति मे किया गया है—'आपिशलास्तुरुस्तु शम्यम. सार्वधातुकासुच्छन्दसीति पठन्ति ।'[35] इससे यह सिद्ध होता है कि आपिशलि व्याकरण मे वैदिक भाषा के नियम वर्णित थे।

आपिशलि के सूत्रो तथा पाणिनि के सूत्रो मे पर्याप्त समानता प्रतीत होती है जिसके आधार पर आपिशलि व्याकरण को पाणिनि का उपजीव्य ग्रन्थ माना जाता है।

व्याकरण के अतिरिक्त आपिशलिकृत धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र तथा शिक्षा के सूत्र भी उल्लेख हैं।

शाकटायन व्याकरण

पाणिनीय व्याकरण से पूर्ववर्ती व्याकरणो मे शाकटायन व्याकरण का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि शाकटायन से सम्बन्धित कोई व्याकरण या उसका सूत्र उपलब्ध नही हुआ है, परन्तु शाकटायन सम्बन्धी मत कई स्थानो पर उपलब्ध हैं। निरुक्त मे शाकटायन का स्मरण कई बार हुआ है। वे सभी शब्दो का धातुज मानते थे। उन्होने लौकिक और वैदिक दोनो ही प्रकार के प्रयोगो का आख्यान किया था। शौनकीय चतुरध्यायी के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ मे कहा गया है—

समासावग्रहविग्रहान् पदे यथोवाच छन्दसि ।
शाकटायन तथा प्रवक्ष्यामि चतुष्टय पदम् ।

शाकटायन के मत निरुक्त, ऋक्प्रातिशाख्य, वाजसनेयप्रातिशाख्य ऋक्तन्त्र आदि प्राचीन ग्रन्थो मे उद्धृत है। इससे सिद्ध होता है कि शाकटायन वैदिक व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

शाकल्य व्याकरण

पाणिनि ने शाकल्य का नाम चार बार लिया है। ऋग्वेद के पदपाठ और अष्टाध्यायी मे उद्धृत शाकल्य के मतो की तुलना के आधार पर विद्वानो का मत है कि ऋग्वेद का पदपाठ करने वाला शाकल्य तथा पाणिनि द्वारा उल्लिखित शाकल्य एक ही व्यक्ति है—क्योकि दोनो के नियमो मे समानता है।

शाकल्य वैदिक विद्वान् थे, इसमे कोई सन्देह नही। यद्यपि उसका कोई व्याकरण उपलब्ध नही है, तथापि मतो के उद्धरणो से यह जाना जा सकता है कि वह लौकिक और वैदिक दोनो ही भाषाओ का मूर्धन्य विद्वान् था।

पाणिनि

जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, पाणिनि से पूर्व वैयाकरणो की दीर्घ परम्परा रही है। परन्तु दुर्भाग्य से पाणिनि से पूर्व का कोई भी व्याकरण ग्रन्थ हम

उपलब्ध नहीं है। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है प्रातिशाख्यों को व्याकरण की कोटि में नहीं रखा जा सकता। यद्यपि प्रातिशाख्यों में भी व्याकरण के कुछ प्रकरण यथा संधि स्वर प्रक्रिया आदि वर्णित हैं परन्तु इनसबका सम्बन्ध मन्त्रपाठ के उच्चारण से है। प्रातिशाख्यों के समानान्तर निश्चित रूप से पृथक व्याकरण ग्रन्थ रहे होंगे जो आज लुप्त हो गए हैं। अन्य व्याकरणों के लुप्त होने का कारण पाणिनीय व्याकरण की सर्वातिशायिता है। विषय की पूर्णता और सूत्रों की लघुता के कारण ही अन्य व्याकरणों की आवश्यकता समाप्त हो गई।

पाणिनीय व्याकरण का स्वरूप

वर्तमान रूप में उपलब्ध पाणिनि कृत व्याकरण आठ अध्यायों में विभाजित है। इसलिए यह अष्टाध्यायी नाम से विख्यात है। पतंजलि ने इसे शब्दानुशासन कहा है। अष्टक नाम से भी पाणिनीय व्याकरण विख्यात है। इसके लिए एक अन्य नाम वृत्तिसूत्र भी प्रयुक्त हुआ है। महाभाष्य में दो स्थानों पर इस नाम का प्रयोग हुआ है। चीनी यात्री इत्सिंग ने इसी नाम का उल्लेख किया है।[37] अन्य व्याकरण ग्रन्थों में कई स्थानों पर इस नाम का उल्लेख हुआ है। प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में व्याकरण शास्त्र के लिए वृत्ति शब्द का प्रयोग होता था। निरुक्त में व्याकरण सम्बन्धी प्रक्रिया के लिए वृत्ति शब्द का ही प्रयोग किया है—

विग्रहवत्यो वृत्तयो भवन्ति।

अष्टाध्यायी के प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। इस प्रकार समस्त ग्रन्थ में कुल 32 पाद हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में पहले 14 प्रत्याहार सूत्र हैं जिन्हें माहेश्वर सूत्र भी कहा जाता है। इन सूत्रों की सहायता से प्रत्याहारों का निर्माण होता है जिन्हें पाणिनि ने लघुता के लिए प्रयुक्त किया है।

प्रथम पाद में वृद्धि, गुण आदि संज्ञाओं के लक्षण बताए गए हैं। द्वितीय पाद में भी अनेक संज्ञाओं का विधान किया गया है। समस्त अष्टाध्यायी की व्यवस्था जटिल हो गई है। सभी संज्ञाएं एक स्थान पर वर्णित नहीं हैं। संज्ञाओं के विधान के साथ ही उन संज्ञाओं के अधिकार में प्रयुक्त होने वाले सूत्र एक स्थान पर उन्हीं के साथ दिए गए हैं। प्रथम अध्याय में आत्मनेपद परस्मैपद कित सम्बन्धी नियम कारक आदि विषय वर्णित हैं। द्वितीय अध्याय के प्रथम दो पादों में समास सम्बन्धी नियम वर्णित हैं। द्वितीय अध्याय के तीसरे पाद में विभक्तियों के प्रयोग के नियम वर्णित हैं। चतुर्थ पाद में समस्त पदों के लिंग और वचन तथा आदेश विधायक नियम वर्णित हैं। तृतीय अध्याय के प्रथम दो पादों में धातु के साथ लगने वाले विभिन्न प्रत्ययों का विधान है। तृतीय अध्याय के कुछ सूत्रों में पुनः प्रत्यय वर्णित हैं। शेष सूत्रों में लकारों का प्रयोग वर्णित है। तृतीय अध्याय के चतुर्थ पाद में धातु से सम्बन्धित प्रत्यय वर्णित हैं। चतुर्थ अध्याय के प्रथम पाद में स्त्रीप्रत्यय

तथा तद्धितप्रत्यय वर्णित हैं। चतुर्थ अध्याय के शेष पाद तथा पंचम अध्याय के प्रथम दो पादों में भी तद्धित प्रत्यय वर्णित है। पंचम अध्याय के तृतीय पाद मे विभक्ति संज्ञक प्रत्ययों का विधान है। पुनः तद्धित प्रत्ययो का वर्णन होकर समासान्त प्रत्ययों का वर्णन है। छठे अध्याय के प्रथम पाद मे द्वित्व सम्बन्धी नियम, सम्प्रसारण, वर्ण विकार, स्वरप्रक्रिया वर्णित है। षष्ठ अध्याय के द्वितीय पाद में भी स्वर प्रक्रिया ही वर्णित है। षष्ठ अध्याय के तृतीय पाद में अलुक् के नियम, समासों मे वर्ण विकार, आदेश आदि वर्णित हैं। चतुर्थ पाद में दीर्घत्व, लोप आदेश ह्रस्व आदि नियम वर्णित हैं। सप्तम अध्याय के प्रथम पाद मे विभिन्न प्रत्ययों के आदेश, द्वितीय पाद में लुङ् लकार के वृद्धि सम्बन्धी नियम, आगम, आदेश आदि नियम वर्णित हैं। तृतीय तथा चतुर्थ पाद मे भी आदेश, वृद्धि, सम्बन्धी नियम, आगम, लोप, गुण आदि वर्णित हैं। अष्टम अध्याय के प्रथम पाद मे द्वित्व, वीप्सादि के नियम वर्णित है। पाद के अन्त में स्वरों के नियम वर्णित हैं। अष्टम अध्याय के तीन पादों मे भी लोप, आदेश, स्वर आदि के नियम वर्णित हैं। परन्तु इन तीन पादो के सूत्र असिद्ध माने जाते हैं और पूर्व सूत्रों को बाधित नही करते।

पाणिनीय व्याकरण में वैदिकी प्रक्रिया

पाणिनि ने वैदिक भाषा के लिए पृथक् नियम नहीं बनाए हैं। समस्त पाणिनीय व्याकरण लौकिक और वैदिक भाषा पर समान रूप से लागू होता है। परन्तु जहा वैदिक प्रयोगों में लौकिक प्रयोगों से कुछ भिन्नता होती है, वहां 'छन्दसि' 'मन्त्रे' 'ब्राह्मणे' आदि शब्दो के द्वारा पृथक् निर्देश किया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि पाणिनि ने वैदिक भाषा को गौण रूप से लिया है। इसलिए इसे वैदिक व्याकरण नही कह सकते। परन्तु यह मत ठीक नही है। पाणिनि ने वैदिक प्रयोगो को भी उतना ही महत्त्व दिया है जितना लौकिक प्रयोगों को। वैदिक भाषा के सूक्ष्म से सूक्ष्म अन्तर को भी उन्होंने पृथक् रूप से दिखाया है। स्वरो के सभी मुख्य नियम भी वर्णित हैं जो निश्चित रूप से वैदिक प्रयोगों से सम्बन्धित हैं। अतः पाणिनीय व्याकरण वैदिक भाषा पर भी उसी प्रकार लागू होता है, जिस प्रकार लौकिक भाषा पर। परन्तु इतना अवश्य है कि पाणिनि ने वैदिक भाषा की मुख्य प्रवृत्तियों को ही ग्रहण किया है। समस्त वैदिक वाङ्मय को प्रतिपद लेना किसी भी वैयाकरण के लिए असम्भव था।

पाणिनीय व्याकरण की विशेषताएं

पाणिनीय व्याकरण की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है—

1. पाणिनीय व्याकरण अपने सभी पूर्व व्याकरणों मे सक्षिप्त है।
2. पाणिनि ने प्राचीन आचार्यों की अनेक सज्ञाओं को ग्रहण किया है। लोक

प्रसिद्ध पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा देना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा है।

3 प्रत्याहारों के द्वारा अनेक विषयों को संक्षिप्त बनाकर उन्हें सुविधाजनक बनाया है।

4 अनुवृत्तियों के प्रयोग में पाणिनि का विशेष कौशल है। अनुवृत्ति के द्वारा अनेक बिखरे हुए नियमों को एकत्र किया गया है।

5 सूत्रों के निर्माण में अत्यन्त कौशल दिखाया है। सूत्रों को यथावश्यक लघु बनाया गया है, परन्तु स्पष्टता में कहीं भी कमी नहीं है।

अपने विशिष्ट गुणों के कारण पाणिनीय व्याकरण को बहुत सम्मान मिला है। पाणिनि की प्रशंसा पतञ्जलि ने इन शब्दों में की है—

प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचाववकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म। तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुम्, किं पुनरियता सूत्रेण।[33]

पतञ्जलि को पाणिनीय व्याकरण में कुछ भी अनर्थक प्रतीत नहीं होता था—

सामर्थ्ययोगान्नहि किंचिदस्मिन् पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यात्।[34]

वामन जयादित्य ने पाणिनि की सूक्ष्म दृष्टि की इस प्रकार प्रशंसा की है—

महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य।

विदेशी विद्वानों ने भी पाणिनि की अष्टाध्यायी की भूरि भूरि प्रशंसा की है। चीनी यात्री ह्यूनसांग से लेकर आधुनिक विद्वानों तक सभी ने पाणिनीय व्याकरण को एक अनुपम ग्रन्थ और मानव मस्तिष्क का आश्चर्यजनक कृत्य माना है।

पाणिनि का परिचय तथा काल

पाणिनि के विषय में अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं है। पाणिनि के अनेक नाम प्रसिद्ध हैं, यथा—पाणिन, पाणिनि, दाक्षीपुत्र, शालङ्कि, शालातुरीय, आहिक आदि।

परम्परा के अनुसार पाणिनि की माता का नाम दाक्षी था। व्याडि को दाक्षायण या दाक्षि कहा गया है। इन नामों से व्याडि का पाणिनि की मां से कुछ रक्त सम्बन्ध प्रतीत होता है। युधिष्ठिर मीमांसक व्याडि को पाणिनि की माता दाक्षी का भाई मानते हैं। इस प्रकार व्याडि पाणिनि के मामा थे। ऋक्सर्वानुक्रमणी के भाष्यकार षड्गुरुशिष्य ने वेदार्थदीपिका में पिंगल को पाणिनि का छोटा भाई बताया है—तथा च सूत्रयते पिङ्गलः पाणिन्यनुजेन । इस बात की पुष्टि पाणिनीय शिक्षा की 'शिक्षा प्रकाश' नाम्नी व्याख्या से भी होती है—

ज्येष्ठभ्रातृभिर्विहितो व्याकरणेऽनुजस्तत्र भगवान्
पिङ्गलाचार्यस्तन्मतमनुभाव्य शिक्षां वक्तुं प्रतिजानीते।

पाणिनि को शालातुरीय कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि पाणिनि

शलातुर के रहने वाले थे। जैन लेखक वर्धमान ने गणरत्नमहोदधि में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं—

शलातुरो नाम ग्रामः सोऽभिजनोऽस्यास्तीति शालातुरीयः तत्रभवान् पाणिनिः।

आधुनिक विद्वानों का मत है कि शलातुर ग्राम भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर लाहोर के पास कहीं था। पंचतन्त्र में उद्धृत एक श्लोक के अनुसार पाणिनि की मृत्यु शेर के द्वारा खाए जाने से हुई थी—

> सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत् प्राणान् प्रियान् पाणिने,
> मीमांसाकृतमुन्ममाथ सहसा हस्ती मुनिं जैमिनीम्।
> छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिंगलम्,
> अज्ञानावृतचेतसामतिरुषा कोऽर्थस्तिरश्चां गुणैः।

काल

पाणिनि का काल अभी तक अनिर्णीत है। सोमदेवकृत कथासरित्सागर के एक विवरण के अनुसार पाणिनि और कात्यायन समकालीन थे। कात्यायन ने पाणिनि को शास्त्रार्थ में हरा दिया था परन्तु शिव के प्रताप से पाणिनि अन्तिम रूप में जीत गया। तत्पश्चात् शिव के क्रोध को कम करने के लिए कात्यायन ने पाणिनि की शिष्यता स्वीकार कर ली और पाणिनि-व्याकरण पर वार्तिक लिखे। कात्यायन मगध के राजा नन्द का समकालीन था और बाद में योगनन्द के नाम से उसके यहां मन्त्रिपद को ग्रहण किया।

सोमदेव की कथा पर अधिक विश्वास न करते हुए भी मैक्समूलर ने पाणिनि को कात्यायन का समकालीन ही माना है। नन्द चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालीन था। चन्द्रगुप्त मौर्य का काल 315 ई० पू० है। इस आधार पर मैक्समूलर ने कात्यायन का काल चतुर्थ शताब्दी ई० पू० का उत्तरार्ध माना है। इस गणना से पाणिनि का काल भी 350 ई० पू० के आसपास ठहरता है।[40] बोथलिंग भी पाणिनि का समय 350 ई० पू० ही मानते हैं।

परन्तु पाणिनि और कात्यायन को कथासरित्सागर के आधार पर समकालीन मानना उचित नहीं है। गोल्डस्टुकर ने मैक्समूलर और बोथलिंग दोनों के मतों का खण्डन किया है। परन्तु गोल्डस्टुकर भी वाजसनेयि-प्रातिशाख्य के रचयिता और वार्तिकों के रचयिता एक ही कात्यायन को मानते हैं। इसी भूल के कारण उन्होंने सभी प्रातिशाख्यों को पाणिनि के बाद का माना है। इस विषय पर पहले ही विचार किया जा चुका है। प्रातिशाख्य निश्चित रूप से पाणिनि से पूर्ववर्ती थे। यास्क भी पाणिनि से पूर्ववर्ती था। अतः पाणिनि का समय यास्क और प्रातिशाख्यों के बाद का ही सिद्ध होना चाहिए। परन्तु पाणिनि कात्यायन के समकालीन नहीं हो सकते क्योंकि पाणिनि और कात्यायन के काल के बीच में भाषा में पर्याप्त अन्तर आ

गया था। इसी कारण से कात्यायन को पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक लिखने पड़े। अन्य सब तथ्यों पर विचार करके गोल्डस्टुकर ने पाणिनि का समय सातवीं शती ईस्वी पूर्व माना है। रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने भी पाणिनि का यही समय उचित माना है।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पाणिनि कालीन भारतवर्ष में पाणिनि की तिथि पर विचार किया है। उनका मत है कि अन्त साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि पाणिनि बुद्ध के बाद हुए। उनका मुख्य तर्क यह है कि पाणिनि ने मस्करी परिव्राजक का उल्लेख किया है जो वास्तव में मखलि गोसाल है। मखलि गोसाल और बुद्ध समकालीन थे। इनके अतिरिक्त पाणिनि व्याकरण में प्रयुक्त निर्वाण, कुमारी श्रमणा तथा सर्वान्तर्वर्त शब्द बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं। परन्तु यह सब अनुमान पर आधारित है। मस्करी परिव्राजक को मखलि गोसाल मानना मात्र कल्पना है। संस्कृत साहित्य में निर्वाण, श्रमण आदि शब्द पहले से ही विद्यमान थे। बौद्धों ने उन्हीं का अपनाया। *यह मानना कि बौद्धों ने इन शब्दों का निर्माण अपने लिए स्वयं किया अयुक्तियुक्त है।*

पाणिनि ने 4 3 34 में श्रविष्ठा आदि दस नक्षत्रों की सूची दी है। यहाँ श्रविष्ठा नक्षत्र को आदि में रखा गया है। इसी के आधार पर डॉ० अग्रवाल यह मानते हैं कि पाणिनि के समय में श्रविष्ठा के नक्षत्रों की गणना प्रारम्भ होती थी। वेदाङ्गज्योतिष में भी श्रविष्ठा (अर्थात धनिष्ठा) से ही नक्षत्रों की गणना प्रारम्भ की है। महाभारत काल में यह गणना श्रवण से होने लगी थी। अनेक विद्वानों के मतों के अनुसार 400 ई० पू० के आसपास श्रवण नक्षत्र से गणना प्रारम्भ हो गई थी। अतः पाणिनि का समय 500 ई० पू० से 400 ई० पू० के बीच मानना चाहिए। पाणिनि के काल में नक्षत्र गणना ज्योतिष वेदाङ्ग की तरह श्रविष्ठा नक्षत्र से होती थी यह बात *संयोग से ठीक हो सकती है, परन्तु पाणिनि ने इसे अन्य नक्षत्रों के प्रारम्भ में रखा है इससे यह बात सिद्ध होती है कि इसी नक्षत्र से गणना प्रारम्भ होती थी, यह मत निराधार है* क्योंकि पाणिनि के इस सूत्र में जो नक्षत्र गिनाए गए हैं वे बिना किसी क्रम के रखे हुए हैं।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल मध्य मार्ग का आश्रय लेकर और भारतीय जनश्रुति पर विश्वास करके कि पाणिनि नन्दराजा के समकालीन थे, पाणिनि का *काल पाँचवीं शती ई० पू० के मध्य भाग में मानते हैं।*

युधिष्ठिर मीमांसक ने सभी प्राचीन मतों का खण्डन करके नये साक्ष्य देते हुए पाणिनि का काल 2900 विक्रम पूर्व माना है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पाणिनि का काल निर्धारण पूर्णतः काल्पनिक है *और किसी मत को अन्तिम नहीं माना जा सकता।*

पाणिनि तथा गणपाठ, धातुपाठ एव उणादिसूत्र

गणपाठ धातुपाठ तथा उणादिसूत्रो के रचयिता के विषय मे अनेक मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हे पाणिनिकृत मानते हैं तो कुछ विद्वान इन्हे पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्य की कृति मानते हैं। निर्णयात्मक रूप से कुछ नही कहा जा सकता। केवल इतना कहा जा सकता है कि जिस रूप मे ये आज विद्यमान हैं, पाणिनि ने अपन व्याकरण मे उन्हे उसी रूप मे प्रयुक्त किया है। इन्हे पाणिनिकृत मानन मे कोई दोष नही है। यदि ये पाणिनि न नही रचे तो इतना अवश्य है कि पाणिनि न इन्हे अपन व्याकरण के अनुसार अवश्य ढाला।

सन्दर्भ

1 महाभाष्य, पस्पशाह्निक पृ॰ 2-3
2 महाभाष्य वही, प॰ 10
3 वाक्यपदीयम, 1 11
4 महाभाष्य, वही, पृ0 8-21
5 वही, पस्प॰, पृ0 22 23
6 देखें, सुधीकान्त भारद्वाज, अनेलिटिकल नोश॰न्स आफ स्पीच इन दि ऋग्वेद म0 द0 वि0 रिसर्च जर्नल खण्ड 1, भाग 1, पृ0 114-19
7 गो0 ब्रा0 1 24
8 मुण्डकोप 1 1
9 रामायण किष्किन्धा, 3 29
10 महाभारत, उद्यो॰ 43 61
11 तै0 स0, 6 4 7
12 मैत्रायणी सहिता, 1 7 3
13 गो0 ब्रा0, 1 24
14 ऋक्तन्त्र, 1 4
15 युधिष्ठिर मीमांसक व्याकरणशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ0 59
16 म0 भा0 शा0 प0 112-32
17 युधिष्ठिर मीमांसक, सस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ0 63-65
18 महाभारत, शा0 प0, 84 92
19 निरुक्त, 1 3 12, 4 3,12, 6 28
20 श0 ब्रा0 4 5

21 ऋ० प्रा०, 1 15
22 वा० प्रा०, 4 167
23 तै० प्रा०, 17 3
24. ऋ० प्रा०, 1 16
25 वा० प्रा०, 3 9
26 ऋक्तन्त्र, 1 1
27 ऋ० प्रा०, 3.13
28 वा० प्रा०, 3.10
29 युधिष्ठिर मीमांसक, वही, पृ० 69-72
30 द्रष्टव्य, युधिष्ठिर मीमांसक, वही पृ० 87
31. देखें वही, पृ० 93
32. न्यास 1 2.37
33 युधिष्ठिर मीमांसक वही, पृ० 132
34 युधिष्ठिर मीमांसक, वही, पृ० 139
35 पा० 7.3 95 पर काशिका वृत्ति ।
36 महाभाष्य, 2.11, 2 2.24
37 इन्डिया की भारतयात्रा, पृ० 260
38 पा० 1 1 1 पर महाभाष्य
39 पा० 6 1 77 पर महाभाष्य
40 मैक्समूलर, वही, पृ० 214 22

अध्याय 5

निरुक्त

वैदिकभाषा की सूक्ष्मताओं का विश्लेपण करने वाला यह वेदाग भी इतना ही प्राचीन एव महत्त्वपूर्ण है जितने अन्य वेदाग। निरुक्त वेदाग का मुख्य प्रयोजन वेद मे प्रयुक्त हुए शब्दा के सम्यक् अर्थ ज्ञान के लिए शब्दो का निवर्चन प्रस्तुत करना है। निरुक्त को वेद का कान माना जाता है। जिस प्रकार बिना कानो के मनुष्य सुन नही सकता उसी प्रकार बिना निरुक्त के वैदिक शब्दा का अर्थ ग्रहण नहीं हो सकता। यास्ककृत निरुक्त मे ग्रन्थ लेखन का प्रयोजन ही अर्थज्ञान कराना बताया है। ग्रन्थ के प्रयोजनो म सबसे पहला प्रयोजन मन्त्रो का अर्थ ज्ञान कराना है—

अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यत।[1]

अर्थात् निरुक्त शास्त्र के बिना मन्त्रो के अर्थ का ज्ञान नही हो सकता। अर्थज्ञान के बिना स्वर तथा व्याकरण प्रक्रिया का ज्ञान भी नही हो सकता—

अर्थमप्रतियतो नात्यन्त स्वरसस्कारोद्देश।[2]

वेदमन्त्रा मे स्वराकन की प्रक्रिया केवल औपचारिकता नही है। स्वर के उतार-चढाव से ही अर्थो का सम्यग् ज्ञान हो सकता है। यदि अर्थो का ज्ञान नही होगा तो केवल अभ्यास मात्र से स्वर का ज्ञान नही हो सकता। स्वर ज्ञान और

मन्त्रार्थ ज्ञान परस्पर आश्रित हैं।

वेदमन्त्रों की अर्थवत्ता पर शंका करने वाले कौत्स के मतानुयायी को निरुक्तकार ने यह कहकर फटकारा है कि यह खम्भे का दोष नहीं है यदि कोई अन्धा व्यक्ति उसे न देखे और उससे टकरा जाए—

नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति पुरुषापराधः स भवति।[3]

अर्थ को न जानने वाले व्यक्ति की यहाँ पर अन्धे व्यक्ति से तुलना की है। जो व्यक्ति वेद को केवल पढ़ता है परन्तु उसके अर्थ को नहीं जानता उसकी तुलना एक खम्भे से की गई है जिस पर भार लटका दिया गया हो। अर्थ का न जानने वाला व्यक्ति तो केवल वेदों के भार को ही ढोता है। इसके विपरीत अर्थज्ञ व्यक्ति अज्ञान नष्ट हो जाने से परम कल्याण को प्राप्त करता है—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

वेद को केवल शब्द मात्र में पढ़ने वाले का अध्ययन इस प्रकार फलभूत नहीं होता है जिस प्रकार बिना अग्नि के सूखा ईंधन भी नहीं जलता है—

यद्गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित॥

इससे स्पष्ट है कि निरुक्त वेदांग का मुख्य प्रयोजन मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान कराना है। यास्क के काल में वेदमन्त्रों का अर्थ न केवल कठिन अपितु पूर्णतः अज्ञात हो गया था। यह बात स्वयं निरुक्त के अन्तःसाक्ष्यों से प्रमाणित है। एक शब्द के लिए अनेक अर्थों की कल्पना निरुक्तकार को करनी पड़ी। कौत्स के अनुयायी तो मन्त्रों को अनर्थक ही मानने लग गये। निरुक्तकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि ऋषियों को तो अर्थ पूर्णतः स्पष्ट था परन्तु बाद की पीढ़ियों को उपदेश देने की आवश्यकता पड़ी इसलिए ऋषियों ने उपदेश के द्वारा बाद के व्यक्तियों के लिए मन्त्रों के अर्थों को स्पष्ट किया। परन्तु आगे चलकर बाद के पीढ़ियों का सामान्य उपदेश से भी अर्थ स्पष्ट नहीं होते थे। इसलिए उनकी उपदेश के प्रति अरुचि हो गई। इसलिए इन्होंने इस ग्रन्थ अर्थात् निरुक्त वेदांग की रचना की—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत-धर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः।[4]

निरुक्त वेदांग का स्वरूप

निरुक्त वेदांग से सम्बन्धित केवल यास्ककृत निरुक्त ही उपलब्ध है। इसी के आधार पर हम निरुक्त के स्वरूप का विश्लेषण कर सकते हैं।

निरुक्त मूलतः अर्थ-प्रधान ग्रन्थ है। किसी शब्द विशेष का किसी अर्थ विशेष मे प्रयुक्त होने के कारणो का अन्वेषण करना ही निरुक्त का मूल प्रयोजन है। सायण ने निरुक्त के विषय मे कहा है कि जिस शास्त्र मे बिना किसी प्रसग की अपेक्षा के अर्थज्ञान के लिए पदो का निर्वचन किया जाए वह निरुक्त कहलाता है—

अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजात यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्।

सायण ने यह स्पष्ट किया है कि प्रत्येक पद के लिए सभी अवयवो के सम्भावित अर्थों को निःशेष रूप से कहा जाए, वह भी निरुक्त कहलाता है—

एकैकस्य पदस्य सम्भाविता अवयवार्था यत्र निःशेषेण उच्यन्ते तदपि निरुक्तम।

सायण की दूसरी परिभाषा अधिक समीचीन है। निरुक्त पद स्वयं अन्वर्थक है—'निःशेषेण उक्तम् इति निरुक्तम्' अर्थात जहा किसी सम्भावना को छोडे बिना अर्थ का निर्वचन किया जाए, वह निरुक्त कहलाता है।

निर्वचन की आवश्यकता पर स्वय यास्क ने बहुत बल दिया है। निर्वचन की प्रक्रिया बताते हुए उन्होंने कहा है कि जहा व्याकरण की सामान्य प्रक्रिया से निर्वचन सम्भव हो तब तक तो वह करना चाहिए परन्तु जहा व्याकरण प्रक्रिया से सम्भव न हो वहा अन्यत्र साम्य देखकर निर्वचन करे और जहा साम्य भी उपलब्ध न हो वहा एक अक्षर या एक वर्ण की समानता के आधार पर भी निर्वचन करे, परन्तु बिना निर्वचन के पद को नही छोडना चाहिए—

नदेषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्याताम् तथा तानि निर्ब्रूयात्। अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यः परीक्षेत केनचिद्वृत्ति सामान्येन। अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षरवर्णसामान्यान्निर्ब्रूयान्नत्वेव न निर्ब्रूयान्न संस्कारमाद्रियेत।[5]

इस से स्पष्ट है कि निरुक्त मुख्यरूप से निर्वचन प्रधान ग्रन्थ है। काशिकाकार ने निरुक्त के पाच प्रकार बताए हैं—

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पचविध निरुक्तम्॥[6]

अर्थात—1. वर्णागम, 2 वर्णविपर्यय, 3 वर्णविकार, 4 वर्णनाश तथा 5 धातु के अर्थ से योग, निरुक्त के पांच प्रकार हैं। यास्क ने इन सभी प्रकारों से शब्दों का निर्वचन करके उनके वास्तविक अर्थ का निरूपण किया है।

निरुक्त की वेदांगता

कई बार निरुक्त की वेदांगता पर सन्देह व्यक्त किया जाता है क्योंकि निरुक्त निघण्टु मे सकलित शब्दो का व्याख्या-ग्रन्थ है। निरुक्त का प्रारम्भ ही निघण्टु की

व्याख्या की प्रतिज्ञा से होता है—'समाम्नायः समाम्नातः । स व्याख्यातव्यः । तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते ।' निघण्टु में वैदिक शब्दों का संकलन है । अतः निघण्टु को ही मूल वेदांग मानने के पक्ष में कुछ तर्क दिए जाते हैं क्योंकि निरुक्त तो निघण्टु का केवल व्याख्या ग्रन्थ मात्र है । परन्तु यह तर्क उचित नहीं है । निघण्टु निरुक्त का ही भाग है । शब्दों के निर्वचन करने के लिए शब्दों का संकलन होना आवश्यक है । यह संकलन ही निघण्टु कहलाता है । निघण्टु शब्द का निर्वचन करते हुए यास्क ने यही कहा है कि निघण्टु शब्द का निर्वचन निगम शब्द से है । निगम का अर्थ है वेद । वेदों से एकत्रित किये जाने के कारण ही इन्हें निघण्टु कहते हैं—

'निघण्टवः कस्मात् । निगमा इमे भवन्ति । छन्दोभ्यः समाहृत्य समाहृत्य समाम्नाताः ।'

अतः वैदिक शब्दों का निर्वचन करने के कारण निरुक्त की वेदांगता स्वतः सिद्ध है ।

निरुक्त वेदांग का उद्गम और विकास

शब्दों के निर्वचन की प्रवृत्ति बहुत प्राचीन काल से प्रारम्भ हो गई थी । यास्क से पहले अनेक निरुक्तकार हुए हैं इसका ज्ञान यास्ककृत निरुक्त से ही होता है । अनेक बार नैरुक्तों के मत उद्धृत किए गए हैं । यास्क ने अनेक नैरुक्तों का नामोल्लेख किया है यथा—औपमन्यव, आग्रायण, औदुम्बरायण, और्णवाभ, कौत्स, क्रौष्टुकि, गार्ग्य, गालव, चर्मशिरा, तैटीकि, वार्ष्यायणि, शाकटायन, शाकपूणि, शाकल्य, स्थौलाष्ठीवि, तथा कात्थक्य । कम से कम 15 बार 'नैरुक्ताः' उल्लेख से मत उद्धृत किए हैं । इससे स्पष्ट है, यास्क से पूर्व अनेक निरुक्त लिखे जा चुके थे जो आज दुर्भाग्य से उपलब्ध नहीं हैं । सम्भवतः यास्ककृत निरुक्त निरुक्तों में सबसे बाद का था । इसकी सर्वोत्कृष्टता के कारण अन्य निरुक्त प्रचलन में नहीं रहे और धीरे धीरे लुप्त हो गए । परन्तु यास्क के बाद भी अन्य निरुक्तों का प्रणयन होता रहा है । विष्णु पुराण में शाकपूणि का नाम निरुक्तकृत् के रूप में उल्लिखित है । सम्भवतः यह वही शाकपूणि है जिसे यास्क ने शाकपूणि के नाम से उल्लिखित किया है । इससे सिद्ध होता है कि पुराण काल तक अन्य निरुक्तकारों का नाम प्रचलन में था ।

निरुक्त का वेदांग के रूप में जन्म कब हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । परन्तु इतना निश्चित है कि शब्दों के निर्वचन की प्रक्रिया ऋग्वेद काल में ही प्रारम्भ हो गई थी । ऋग्वेद में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनमें धातु के मुख्य अर्थ और कार्य के आधार पर कुछ शब्दों के अर्थों का निर्वचन किया गया है । निम्न

लिखित उदाहरण अवलोकनीय हैं—

1 पावका न सरस्वती वाजेभिर्वाजिनिवती ।[8]
2 यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा ।[9]
3 वय गीर्भिगृणन्त ।[10]
4 ये सहासि सहसा सहन्ते ।[11]
5 स वृषा वृषभो भुवत् ।[12]
6 य पोता स पुनातु न ।[13]

ब्राह्मण ग्रन्थों मे शब्दो का विधिवत निर्वचन प्रारम्भ हो गया था। उदाहरणतया वृत्र शब्द का ब्राह्मणो मे इस प्रकार निर्वचन हुआ है—'यद् अवृणोत् तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति, विज्ञायते। यदवर्धत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायत।' इसी प्रकार शक्वरी शब्द का निर्वचन शक् धातु से किया गया है—'तद् यदाभिर्वृत्रमशकद् हन्तु तच्छक्वरीणा शक्वरीत्वमिति विज्ञायते।' आरण्यक और उपनिषद ग्रन्थो मे भी शब्दो का निर्वचन किया गया है। मैक्समूलर का कथन है कि ब्राह्मण ग्रन्थों की वैदिक निरुक्तियो के साथ आरण्यक और उपनिषदो म उपलब्ध निरुक्तिया मिला दी जाए तो वे निरुक्त मे दी हुई निरुक्तियो से भी अधिक हो जाएगी।[14] इस प्रकार निरुक्त वेदाग का आधार भी ब्राह्मण ग्रन्थ माने जा सकते हैं।

निरुक्त का पृथक् वेदाग के रूप म जन्म लेना वेदमन्त्रो के दुरुह हो जाने का परिणाम है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है यास्क के काल तक वैदिक शब्दो का अर्थ अज्ञात हो गया था। ब्राह्मण काल मे वैदिक मन्त्रो के अर्थ इतन स्पष्ट नही रह गए थे। अत अर्थ को जानन के लिए एक ऐसे शास्त्र की आवश्यकता पडी जिसमे वैदिक शब्दो का एक स्थान पर निर्वचन दिया गया हो। अत निरुक्त वेदांग का जन्म हुआ। यास्क के काल तक निरुक्त अपन पूर्ण रूप मे विकसित हो चुका था। इसीलिए इसके बाद कोई निरुक्त नही लिखा गया।

निरुक्त और व्याकरण

व्याकरण और निरुक्त कुछ सीमा तक बहुत निकट प्रतीत होते हैं। व्याकरण मे पद के प्रकृति और प्रत्यय का विश्लेषण होता है। इसी विश्लेषण के आधार पर शब्दो के अर्थ का ज्ञान हो सकता है। अर्थ का ज्ञान करना ही निरुक्त का प्रयोजन है। अत इस सीमा तक व्याकरण और निरुक्त समान हैं। परन्तु वस्तुत निरुक्त का कार्य व्याकरण मे बहुत जटिल है। जहां व्याकरण का कार्य समाप्त हो जाता है, निरुक्त का कार्य वहा से प्रारम्भ होता है। जहा सीधे प्रकृति और प्रत्यय के विश्लेषण से अर्थ का ज्ञान हो जाए वहा तो व्याकरण सक्षम है जैसा कि स्वयं यास्क ने भी कहा है—'तद् येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन

विकारेणान्विती स्याता तया तानि निर्ब्रूयात ।' परन्तु जहा व्याकरण की सामान्य प्रक्रिया शब्दों का निर्वचन न हो सके वहा निरुक्त शास्त्र की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त व्याकरण की प्रक्रिया से प्राप्त अर्थ व्यवहार मे प्रयुक्त नहीं होता। इसीलिए यास्क ने कहा है—'विशयवन्त्यो वृत्तयो भवन्ति।' अर्थात् व्याकरण की प्रक्रिया संशययुक्त होती है।

व्याकरण शास्त्र मे भी ऐसे शब्दों की सत्ता स्वीकार की गई है जिनको सामान्य व्याकरण प्रक्रिया से निर्वचन नही हो सकता। पाणिनि ने अनेक ऐसे शब्दों को निपातन सिद्ध किया है। उदाहरणतया पाणिनि के सूत्र 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् (पा० 6 3 109) के अन्तर्गत ऐसे शब्दों को सगृहीत किया गया है जो लोक मे प्रचलित होने के कारण साधु हैं परन्तु व्याकरण के नियमों के अन्तर्गत जिनकी व्याख्या करना सम्भव नहीं है, जैसे पृषुदर के लिए पृषोदर, वारिवाहक के लिए बलाहक, जीवनमूत के लिए जीमूत आदि। व्याकरण इन शब्दों को यथावत् स्वीकार करता है, जैसा कि काशिकाकार ने उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में कहा है—

पृषोदरादीनि शब्दरूपाणि येषु लोपागमवर्णविकारा शास्त्रेण न विहिता, दृश्यन्ते च तानि यथोपदिष्टानि साधूनि भवन्ति। यानि यथोपदिष्टानि शिष्टैरुच्चारितानि प्रयुक्तानि तथैवानुगन्तव्यानि।' परन्तु निरुक्त इतने मात्र से सन्तुष्ट नही हो जाता। वहा तो 'अर्थनित्य परीक्षेत' का सिद्धान्त लागू होता है जिसके अनुसार वर्णागम, वर्णविकार, वर्णलोप, वर्णविपर्यय आदि साधनों का आश्रय लेकर सभी शब्दों का निर्वचन नितान्त आवश्यक है।

इस प्रकार निरुक्त व्याकरण का पूरक ग्रन्थ है। स्वय यास्क ने भी इसी बात को कहा है—

'तदिद विद्यास्थान व्याकरणस्य कार्त्स्न्यम्।' परन्तु इसके साथ ही यास्क ने 'स्वार्थसाधकं च' कहकर निरुक्त की व्याकरण से पृथक् सत्ता भी बनाई है। निरुक्त मे केवल शब्दों के निर्वचन पर ही बल नहीं है। इसमे मन्त्रार्थ तथा देवताओं के स्वरूप, उनकी ऐतिहासिकता आदि पर भी विचार किया गया है।

इस प्रकार व्याकरण और निरुक्त दोनों का सम्बन्ध भाषा से होते हुए भी दोनों का कार्यक्षेत्र पृथक् है। वैसे तो व्याकरण में भी उणादि सूत्रों के द्वारा ऐसे शब्दों को नियमबद्ध करने का प्रयत्न किया गया है परन्तु यह विषय निरुक्त का है।

यास्ककृत निरुक्त

निरुक्त वेदाग का एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ यास्ककृत निरुक्त है इस ग्रन्थ के दो भाग हैं—निघण्टु और निरुक्त। निघण्टु में वैदिक शब्दों का सकलन है तथा निरुक्त में उन शब्दों की व्याख्या।

निघण्टु

निघण्टु मे पाच अध्याय हैं। पहले तीन अध्याय नैघण्टुक काण्ड, चौथा नैगम काण्ड तथा पाचवा दैवत काण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। नैघण्टुक काण्ड मे पर्यायवाची शब्दो का सग्रह है। नैगम काण्ड मे अनेकार्थक शब्दो का सग्रह है। दैवत काण्ड मे देवताओ के नाम हैं।

प्रथम अध्याय मे पृथ्वी, हिरण्य, अन्तरिक्ष, नभ, रश्मि, दिक्, रात्रि, उषा, अह, मेघ, वाक, उदक, नदी, अश्व, वायु तथा तैजस के पर्यायवाची शब्द परिगणित हैं।

द्वितीय अध्याय मे कर्म, अपत्य, मनुष्य, बाहु, अगुलि, कान्तिकर्म, अन्न, अत्तिकर्म, बल, धन, गो, क्रोध, गत्यर्थक क्रियाओ, क्षिप्र (शीघ्र) अन्तिक (समीप) सग्राम, व्याप्ति, वधार्थक क्रियाओ, वज्र, ऐश्वर्य तथा ईश्वर के पर्यायवाची शब्द परिगणित हैं।

तृतीय अध्याय मे बहु (अधिक) ह्रस्व, महत्, गृह, परिचरण, सुख, रूप, प्रशस्य, प्रज्ञा, सत्य, देखन अर्थ वाली क्रियाओ, यज्ञ आदि के पर्यायवाची शब्द सगृहीत है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इन अध्यायो मे शब्दो का सकलन एक व्यवस्था से किया गया है। प्रथम अध्याय मे प्राकृतिक पदार्थों स सम्बन्धित शब्द सकलित हैं। द्वितीय अध्याय म मनुष्य तथा उसके अग एव उसकी विभिन्न क्रियाओ से सम्बन्धित हैं। तृतीय अध्याय मे भाववाची सज्ञा-शब्द सगृहीत है।

निघण्टु एक प्रकार से कोश ग्रन्थ है। कोश ग्रन्थो के इतिहास म निघण्टु ही सबसे पहला ग्रन्थ माना जा सकता है। परन्तु निघण्टु के अतिरिक्त भी अनेक कोश ग्रन्थ रहे होंगे जो आज उपलब्ध नही हैं। कुछ कोश-ग्रन्थ जैसे सर्व कोश, रन्तिदेव कोश, यादव कोश, भागुरि कोश, वल कोश आदि के उल्लेख मिलते हैं परन्तु इन कोश ग्रन्थो मे से कोई उपलब्ध नहीं है।[15]

निघण्टु शब्द की व्युत्पत्ति

निघण्टु शब्द बहुत प्राचीन है। इसकी व्युत्पत्ति पर यास्क तथा उसके पूर्ववर्ती आचार्यों ने विचार किया है। यास्क ने औपमन्यव का मत देकर 'निघण्टव' शब्द की व्युत्पत्ति निगन्तव' शब्द से बताई है और 'निगन्तव' शब्द की उत्पत्ति निगम (वेद) शब्द से बताई है—"ते निगन्तव एव सन्तो निगमान्निघण्टव उच्यन्ते इत्यौपमन्यव।" वैदिक शब्दों का ज्ञान कराने के कारण यह ग्रन्थ 'निगन्तु' कहलाया और ग् का घ् तथा त् का ट् होकर निघण्टु' हो गया। यास्क इस शब्द की उत्पत्ति 'आ' उपसर्गपूर्वक 'हन्' धातु से भी सम्भव मानते हैं क्योंकि शब्द एक

स्थान पर एकत्रित हैं— अपि वा आहननादेव स्यु, समाहृता भवन्ति। यहां हन् धातु से निहन्तु हुआ। ह् का घ् तथा त् को ट होकर निघण्टु शब्द बना। एक अन्य सम्भावना व्यक्त करते हुए यास्क हृ धातु से मानते हैं— यद्वा समाहृता भवन्ति।" सम के अर्थ में नि उपसर्ग मान कर निहर्तु शब्द बना होगा। तब ह् को घ् र् को न् तथा त का ट होकर निघण्टु शब्द बना।

यास्क की उपर्युक्त व्युत्पत्तियों में से पहली व्युत्पत्ति अधिक समीचीन प्रतीत होती है क्योंकि यह ध्वनि परिवर्तन के नियमों के अधिक निकट है। संस्कृत में अनेक स्थानों पर ग् को घ् तथा त् को ट हुआ है। निहन्तु शब्द से भी निघण्टु हो जाना सम्भव है क्योंकि हन् धातु के ह् का अनेक स्थानों पर घ् हुआ है। (यथा) घ्नन्ति, घ्नन्तु, अघान आदि। व्युत्पत्ति चाहे कुछ भी हो परन्तु यह अवश्य है कि निघण्टु शब्द का निर्वचन मात्रा हो किसी धातु से नहीं होता। निगन्तु का निहन्तु, शब्द से निघण्टु शब्द बनने में बहुत समय लगा होगा। इसी से निघण्टु शब्द की प्राचीनता सिद्ध होती है। सम्भव है यह शब्द लोक भाषाओं में प्रचलित रहा हो। इसी से सिद्ध होता है कि लोकभाषा के अपभ्रंश शब्दों को बहुत प्राचीन काल में ही मान्यता मिलने लगी थी।

निघण्टु का रचयिता

निघण्टु के रचयिता के विषय में सन्देह है। यास्क इसकी रचना निरुक्त प्रारम्भ करने से पहले ही मानकर चलते हैं— समाम्नाय सम्मानात', से व्याख्यातव्य, अर्थात् वैदिक शब्द समुदाय पहले ही संकलित है, उसकी व्याख्या की जानी चाहिए। यह संकलन यास्क ने स्वयं तैयार किया था या किसी अन्य आचार्य ने, इस विषय में मतभेद है। महाभारत के मोक्ष पर्व में दो श्लोक आए हैं—

वृषा हि भगवान् धर्म ख्यातो लोकेषु भारत।
निघण्टुकपदाख्यान विद्धि मां वृषमुत्तमम्॥
कपिवराह श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः॥[16]

इन श्लोकों के आधार पर विद्वान् निघण्टु का रचयिता कश्यप मानते हैं क्योंकि वृषाकपि शब्द का परिगणन निघण्टु में किया गया है। परन्तु डॉ० लक्ष्मण स्वरूप इस मत को असंगत मानते हैं क्योंकि उपर्युक्त श्लोक की अन्तिम पंक्ति का अर्थ है 'इसलिए प्रजापति कश्यप ने मुझे वृषाकपि कहा।' लक्ष्मण स्वरूप के अनुसार यदि वृषाकपि शब्द के निर्माता स्वयं कश्यप होते तो वे अपने निघण्टु में संकलित कठिन शब्दों की सूची में वृषाकपि शब्द न देते।

लक्ष्मण स्वरूप का मत है कि निघण्टु किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है अपितु एक सम्पूर्ण पीढ़ी या कई पीढ़ियों के सामूहिक प्रयत्नों का फल है।[17]

लक्ष्मण स्वरूप के इस मत की पुष्टि यास्क के कथन से भी होती है जहा उन्होंन कहा है कि निघण्टु की रचना वेदो से शब्द बटोर-बटोर कर हुई है—"छन्दोम्य समाहृत्य समाहृत्य समाम्नाता." समाहृत्य पद का दो बार प्रयोग करना सामूहिक प्रयत्न का द्योतक है।

निरुक्त

जैसा कि पहले कहा जा चुका है निरुक्त उपर्युक्त निघण्टु का व्याख्या स्वरूप ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ हम दो संस्करणो मे प्राप्त हुआ है एक लघु सस्करण तथा दूसरा बृहत् सस्करण। डॉ० लक्ष्मण स्वरूप के अनुसार दोनो ही सस्करणो मे प्रक्षिप्त अश है। दोनो ही सस्करणो मे परिशिष्ट भाग है जो प्रक्षिप्त हैं। इस प्रकार दोनो ही सस्करणो मे से किसी को भी मूल निरुक्त की अक्षरश प्रतिलिपि नही माना जा सकता। रॉथ बृहत् सस्करण को ठीक मानते है। लगभग सभी सपादकों ने बृहत् संस्करण को ही अपनाया है। लक्ष्मण स्वरूप का मत है कि लघु सस्करण म बृहत् सस्करण की प्रतिलिपि तैयार करते समय अनेक पक्तिया भूल से छूट गई हैं। परन्तु बृहत् सस्करण म भी अनेक स्थान पर परिवर्धन किया गया है।[18]

निरुक्त आज हमे जिस रूप मे प्राप्त है, उसमे 14 अध्याय हैं। पिछले दो अध्याय परिशिष्ट नाम से हैं। लक्ष्मणस्वरूप का मत है कि ये दोनों अध्याय बाद मे जोडे गए हैं क्योंकि इनकी शैली यास्क की शैली से भिन्न है। इसके अतिरिक्त दुर्गाचार्य ने भी केवल 12 अध्यायो पर भाष्य किया है। इससे लक्ष्मण स्वरूप यह निष्कर्ष निकालते हैं कि दुर्गाचार्य इन परिशिष्टो से परिचित नही थे। 12 अध्यायो के मूलपाठ के बीच मे भी अनेक प्रक्षिप्त अश माने जाते हैं।[19]

निरुक्त का वर्ण्य विषय

निरुक्त के पहले तीन अध्याय नैघण्टुक काण्ड, 4-6 तक नैगम काण्ड तथा 7-12 तक दैवत काण्ड से सम्बन्धित हैं। 13वे तथा 14वें अध्याय परिशिष्ट के रूप मे हैं।

प्रथम अध्याय म भाषा के सामान्य सिद्धातों का विवेचन है। भाषा के चार आवश्यक तत्त्व नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपातो का विवेचन है। निरुक्त के प्रयोजना को बताते हुए निरुक्त की उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय मे सर्वप्रथम निर्वचन के सिद्धान्त विहित किए गए हैं। इसके पश्चात् निघण्टु के क्रम से शब्दों का निर्वचन प्रारम्भ होता है। छठे अध्याय की समाप्ति तक शब्दो का निर्वचन है। सप्तम तथा अष्टम अध्यायो मे देवताओ से सम्बन्धित अनेक सैद्धान्तिक पक्षो यथा देवताओं का एकत्व, द्वित्व, बहुत्व का कारण, देवताओ की भक्ति आदि पक्षो पर विचार किया है। नवम अध्याय मे पृथ्वी स्थानी देवताओं

का विवेचन है। दशम तथा एकादश अध्यायों में अन्तरिक्ष स्थानी देवताओं का वर्णन है। द्वादश अध्याय में द्युस्थानी देवताओं का विवेचन है। त्रयोदश अध्याय में प्रमुख देवताओं की स्तुति के मन्त्र तथा उनकी व्याख्या दी गई है। चतुर्दश अध्याय में ऊर्ध्वमार्ग गति तथा आत्मा और महन् के नाम दिए गए हैं।

निरुक्त की भाषा शैली तथा रचना प्रकार

निरुक्त की शैली सूत्रात्मक है। परन्तु प्रकाशित सम्करणों में निरुक्त का पाठ सूत्रों में विभाजित नहीं है। परन्तु वाक्य बहुत छोटे-छोटे और सूत्रात्मक हैं। अनुवृत्ति भी विद्यमान रहती है। अत इस शैली को सूत्रात्मक कहना ही समीचीन है। भाषा बहुत सरल और प्राञ्जल है। सिद्धान्त तथा लक्षण प्रतिपादन के बाद वेदमन्त्रों के उदाहरण दिए गए हैं। वेदमन्त्रों की व्याख्या करते हुए वेदमन्त्रों में प्रयुक्त शब्दों का भी निर्वचन किया गया है।

निरुक्त की प्रमुख विशेषताएं

निरुक्त बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यास्क के मत अनेक आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किए हैं। निरुक्त की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1 सभी वेदांगों में निरुक्त ही एक ऐसा वेदांग है जो परम्परा को मानते हुए भी तर्क को प्रमुख स्थान देता है। वैदिक शब्दों की व्याख्या में निरुक्तकार अपने आपको किसी परम्परा से जुड़ा हुआ नहीं मानते। वे सभी के विचारों को यथोचित सम्मान देते हैं और उनके मतों का उल्लेख करते हैं। शब्दों के निर्वचन में वे किसी घिसे-पिटे मत का आश्रय न लेकर सभी सम्भावनाओं पर विचार करते हैं। उदाहरणतया वृत्र शब्द की व्याख्या करते हुए यास्क दो विचारधाराओं का उल्लेख करते हैं— एक तो नैरुक्तों की, जो वृत्र को मेघ मानते हैं, दूसरी ऐतिहासिकों की जो वृत्र को त्वष्टा का पुत्र मानते हैं—तत्को वृत्र ? मेघ इति नैरुक्ता। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः।

परन्तु अन्त में वे ऐतिहासिकों की बात से सहमत नहीं होते। वे वृत्र को मेघ मानकर यह प्रतिपादित करते हैं कि जल और बिजली का मिश्रण होता है तब वर्षा होती है। इसीलिए उपमा के लिए ही युद्ध जैसा वर्णन किया जाता है।

> अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षं कर्म जायते।
> तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति।

वेदमन्त्रों का उदाहरण देकर अपने पक्ष का समर्थन करते हुए यास्क वृत्र शब्द की व्युत्पत्ति तीन धातुओं से सम्भव मानते हैं—वृ, वृतु, तथा वृधु—

वृत्रो वृणोतेर्वा वर्ततेर्वा वर्धतेर्वा। "यदवृणोत्तद् वृत्रस्य वृत्रत्वम्" इति विज्ञायते। 'यदवर्तत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वम्' इति विज्ञायते। 'यदवर्धत तद्

वृत्रस्य वृत्रत्वम् इति विज्ञायते।

इसमें स्पष्ट है कि यास्क ने तर्क के आधार पर मन्त्रों का अर्थ तथा शब्दों का निर्वचन किया है किसी परम्परा से प्रभावित होकर नहीं। उसने इसीलिए व्याकरण प्रक्रिया को दोषयुक्त बताया है क्योंकि उसमें तर्क का स्थान नहीं होता—विशयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति।

2 निरुक्त ने भाषा विज्ञान के अनेक सिद्धान्तों को जन्म दिया है जिनका अनुकरण करके आधुनिक भाषा विज्ञान पनपा है। भाषा विज्ञान के जो सिद्धान्त आज अपनी शैशव अवस्था में हैं वे निरुक्त में पूर्ण रूप से विकसित हैं।

3 देवताओं के स्वरूप और आकार निर्धारण के क्षेत्र में निरुक्त का महत्त्वपूर्ण योगदान है। मन्त्रार्थों की भांति देवता के स्वरूप के विवरण में किसी परम्परा का आश्रय न लेकर तर्क का आश्रय लिया है। उदाहरणतया देवताओं के बहुत्ववाद के विषय में यास्क का कथन है कि नैरुक्तों के मत में केवल तीन ही देवता होते हैं—पृथ्वीस्थानक अग्नि, अन्तरिक्षस्थानक वायु तथा द्युस्थानक सूर्य। इन तीन देवों की विभूतता के कारण अथवा भिन्न भिन्न कर्म के कारण इनके ही अनेक नाम हो जाते हैं—

> तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः। तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति। अपि वा कर्मपृथक्त्वात्।

इस प्रकार निरुक्त मुख्यतः तर्काश्रित ग्रन्थ है। वैदिक कर्मकाण्ड के युग में परम्परा से हटना और तर्क के आधार पर मन्त्रार्थ और देवताओं की व्याख्या करना भारतीय मनीषियों के स्वतन्त्र चिन्तन का परिचायक है।

यद्यपि यास्क की सभी निरुक्तियां सटीक और मान्य नहीं हैं क्योंकि कहीं-कहीं वे बहुत कृत्रिम प्रतीत होती हैं परन्तु यास्क ने निर्वचन करने की जो विधि सुझाई है वह बहुत ही उपयुक्त और भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन के नये मार्ग खोलती है।

निरुक्त के भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्त तथा उनकी समीक्षा

निरुक्त के रचयिता यास्क भाषा के क्षेत्र में बहुत बड़े विद्वान थे। प्रातिशाख्यों में अनेक बार उनके मतों को उद्धृत किया गया है। उन्होंने निरुक्त में जिस वैज्ञानिक रीति से भाषा के अनेक पक्षों का विश्लेषण किया है, वह न केवल उस युग की दृष्टि से अपितु आज के वैज्ञानिक युग में भी अनुपम है। यूरोप में भाषा विज्ञान का जन्म बहुत आधुनिक है। भाषा के विश्लेषण की जिन वैज्ञानिक रीतियों पर आधुनिक भाषा विज्ञान अब विचार कर रहा है, यास्क ने उन पर आज से कई हजार वर्ष पूर्व विचार कर लिया था। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त आज के

भाषा विज्ञान के सन्दर्भ में भी उतना ही महत्त्व रखते हैं जितना प्राचीन काल में। उनके द्वारा प्रतिपादित भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों में से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं।

शब्द का नित्यत्व

यास्क के निरुक्त में प्रतीत होता है कि भाषा के दार्शनिक पक्षों पर बहुत प्राचीन काल से विचार होना प्रारम्भ हो गया था। यास्क ने पद के चार भेद बताए हैं—नाम, आख्यान, उपसर्ग तथा निपात— तद यान्येतानि चत्वारि पदजातानि, नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च, तानीमानि भवन्ति।'[20] परन्तु वहा औदुम्बरायण का मत दिया गया है। जिसके अनुसार शब्दों की सत्ता केवल तब तक होती है जब तक वे मुखादि इन्द्रिय में होते हैं उसके पश्चात तो शब्द नष्ट हो जाता है। यास्क इस मत में दोष प्रदर्शित करते हैं। शब्द के नष्ट हो जाने पर पद के ये चार भेद नहीं हो सकते हैं। शब्द एक साथ तो उत्पन्न होते नहीं हैं। अलग-अलग समय पर उत्पन्न होने और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाने के कारण शब्दों का परस्पर सम्बन्ध नहीं हो सकता। इस प्रकार वाक्य आदि की सत्ता भी सिद्ध नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त व्याकरण की प्रक्रिया जैसे धातु और उपसर्ग का मेल, प्रत्यय और प्रकृति का मेल भी सिद्ध नहीं हो सकता। ये सब शब्द के अनित्य मानने पर दोष प्राप्त होते हैं। अतः निरुक्तकार के मत में शब्द को नित्य माना जाना चाहिए क्योंकि ऐसा मानने से उपर्युक्त दोष नहीं आएँगे—

इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायणः तत्र चतुष्टयं नोपपद्यते। अयुगपदुत्पन्नानां वा शब्दानामितरेतरोपदेशः। शास्त्रकृतो योगश्च। व्याप्तिमत्त्वात्।[21]

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

शब्दों के द्वारा पदार्थों का अभिधान होता है। निरुक्तकार ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। शब्दों का व्यवहार लोक में क्यों होता है? इस विषय पर विचार करते हुए निरुक्तकार ने कहा है कि शब्द का रूप छोटा होता है अतः पदार्थों का सज्ञाकरण शब्दों के द्वारा होने से लोकव्यवहार सिद्ध होता है। जिस प्रकार मनुष्यों का अभिधान शब्दों के द्वारा होता है, उसी प्रकार देवताओं का अभिधान भी शब्दों के द्वारा हो सकता है—

शब्दस्याणीयस्त्वाच्च शब्देन सज्ञाकरणं व्यवहारार्थं
लोके। तेषां मनुष्यवद् देवताभिधानम्।[22]

इससे स्पष्ट है कि यास्क के काल तक शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का सिद्धान्त तथा शब्द की अभिधान शक्ति का सिद्धान्त निर्मित हो चुके थे।

वाक्य विज्ञान

वाक्य विज्ञान की प्रक्रिया स यास्क पूर्णतया परिचित थ । वे वाक्य मे शब्दो के परस्पर सम्बन्ध को अच्छी प्रकार जानते थे । इसके अतिरिक्त उन्होने वाक्य मे प्रयुक्त हान वाले विभिन्न प्रकार के पदो के कार्य को भी भाषा शास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषित किया है । उन्होंने उपसर्ग और निपात के कार्यों पर अर्थाभिधान की दृष्टि से प्रकाश डाला है । प्रत्येक उपसर्ग और निपात का किस अवस्था म क्या कार्य है, यह यास्क ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों मे विवेचित किया है ।[23]

ध्वनि सिद्धान्त

ध्वनि परिवर्तन के अनक सिद्धान्तो के आविष्कार यास्क न कर लिये थ । इन्ही सिद्धान्ता के आधार पर अनेक शब्दो का निवचन किया गया है । इन सिद्धान्तों म प्रमुख है—लोप जैस गम् धातु स गत, जग्मु आदि, वर्ण विपयय जैस सृज् स रज्जु कृत् स तर्कु, वर्णागम जैसे अस् धातु से आस्थत भ्रस्ज स भरुजा, द्विवर्ण लोप जैसे तिस्र ऋच से तृच आदि ।[24]

निवचन के सिद्धान्त

यास्क ने निवचन के अनेक सिद्धान्तो का आविष्कार कर लिया था। व्याकरण प्रक्रिया को सवप्रथम स्थान दिया है । जिन शब्दा का निर्वचन व्याकरण प्रक्रिया स हो सके और वह प्रक्रिया अथ से अन्वित होती है तो सबसे पहले उसी का आश्रय लेना चाहिए—तद् येषु पदेषु स्वरसस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्याता तथा तानि निर्ब्रूयात् । परन्तु जहा व्याकरण के नियम लागू नही होते हो, वहा सादृश्य के आधार पर निर्वचन करना चाहिए । पूर्ण सादृश्य म हाने पर वर्ण अथवा अक्षर की समानता के आधार पर निर्वचन करना चाहिए । इसस स्पष्ट ह कि यास्क भाषा के सन्दर्भ म सादृश्य के सिद्धान्त से पूर्णत परिचित थे । यास्क इस बात से भी परिचित थ कि भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे एक ही शब्द भिन्न भिन्न अर्थ प्रदान करता है । एक क्षेत्र मे केवल धातु का ही प्रयोग होता है ता दूसरे क्षेत्र म उस धातु स बन शब्द का—'अथापि प्रकृतय एकेषु भाष्यन्त, विकृतय एकेषु । क्षेत्रीय भिन्नता के आधार पर मूल धातु जिस अर्थ म प्रयुक्त हो उसस बना हुआ शब्द दूसरे अर्थ मे प्रयुक्त हो सकता है ।

निर्वचन के सिद्धान्त के पीछे यास्क नैरुक्तो क मूलभूत मत को मानते थ कि अधिकांश शब्द धातुज होत हैं— ' तत्र नामानि आख्यातजानि इति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च ।' परन्तु यह उनका आग्रह कदापि नहीं था कि इसी सिद्धान्त से चिपक रहे । व वस्तु की प्रवृति और कार्य देखकर भी शब्दा क निर्वचन म

विश्वास रखते थे। यथा—कम्बोज शब्द की उत्पत्ति कम्बलभोज या कमनीय भोज से मानते हैं क्योंकि कम्बल भी कमनीय होता है—कम्बोजा कम्बलभोजा कमनीयभोजा वा। कम्बल: कमनीयो भवति।'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यास्क पूर्ण भाषाविद् थे। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उनके योगदान आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी कम नहीं किया जा सकता। उनके सिद्धान्त पूर्ण तथा प्रौढ थे।

निरुक्त तथा अन्य ग्रन्थों का सम्बन्ध

निरुक्त का अनेक ग्रन्थों से गहरा सम्बन्ध है। तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता, काठक संहिता, ऐतरेय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों की उक्तियाँ निरुक्त में विद्यमान हैं। सामवेद के दैवत ब्राह्मण तथा निरुक्त के कुछ सन्दर्भ अक्षरश: मिलते हैं। निरुक्त की अनेक पंक्तियाँ बृहदारण्यक, ऋक्प्रातिशाख्य, पदार्थ दीपिका, अथर्ववेद प्रातिशाख्य, बृहद्देवता, महाभाष्य आदि ग्रन्थों में मिलती हैं। इनसे सिद्ध होता है कि यास्क ने अपने से पूर्ववर्ती साहित्य का बहुत अधिक अध्ययन किया था। यास्क को भी उत्तरवर्ती आचार्यों ने बहुत सम्मान दिया है और उनके मतों का उल्लेख किया है।

यास्क का काल

संस्कृत के अन्य ग्रन्थ तथा आचार्यों के काल की भांति यास्क का काल भी अन्धकार में है। कुछ विद्वान् यास्क को पाणिनि से भी बाद का मानते हैं। भारतीय विद्वानों में सामश्रमी तथा पाश्चात्य विद्वानों में जे० गाडा तथा पाल थिम का नाम उल्लेखनीय है जो पाणिनि को यास्क से पूर्ववर्ती मानते हैं। यास्क के पाणिनि से अर्वाचीन होने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं—

1. यास्क ने पाणिनि के सूत्र 'पर: सन्निकर्ष: संहिता' को अक्षरश: ग्रहण किया है।
2. यास्क को पाणिनि के पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान था। वह धातु, कृत्, तथा तद्धित से परिचित थे।
3. कुछ शब्दों के निर्वचन में यास्क पाणिनि के नियमों को ध्यान में रखकर लोपादि कार्य करते हैं।
4. *यास्क ने 'आ' उपसर्ग के लिए 'आङ्' का प्रयोग किया है (1 2 4) जो* पाणिनि के सूत्र 1 3 20 के अनुकरण पर है।
5. यास्क ने अयार्ण शब्द का प्रयोग किया है जो अय—ऋण शब्दों के योग से बना है। ऋण शब्द के योग में पाणिनि ने कहीं भी वृद्धि का विधान नहीं किया है। वृद्धि का विधान वार्तिककार ने प्र, वसतर, कम्बल, वसन तथा

देश क साथ ऋण के याग होन पर वृद्धि का विधान किया है।

उपर्युक्त तर्कों पर यदि ध्यान स विचार किया जाए तो स्पष्ट हो जायेगा कि ये तर्क तिथि निर्धारण के सन्दभ म कितने दुर्बल है। इन तर्कों का उत्तर इस प्रकार है—

1 'पर सन्निकर्ष सहिता' सूत्र यास्क और पाणिनि दोना न प्रयुक्त किया है। अब यह कैसे निर्णय हो कि यास्क ने पाणिनि से ग्रहण किया है। यह उल्लेखनीय ह कि पाणिनि के सभी सूत्र अपने नही है। शिक्षा वेदाग के अध्याय मे पहले ही बताया जा चुका है कि पाणिनि न अनक सूत्र अपन पूववर्ती आचार्यो से लिय हैं। पाणिनि के अनेक सूत्र प्रातिशाख्यो से ऋण लिये गए ह। उच्चैरुदात्त, नीचैरनुदात्त, समाहार स्वरित आदि सूत्र प्रातिशाख्यो मे उपलब्ध है। अत यहा भी यह सम्भव है कि पाणिनि न यह सूत्र निरुक्त स ही लिया हो।

2 यास्क क द्वारा पारिभाषिक शब्द जैस धातु, कृत्, तद्धित, आदि का प्रयोग किया जाना यह किसी भी अवस्था म सिद्ध नहीं करता कि इन्हे पाणिनि स लिया गया है। इस प्रकार के पारिभाषिक शब्द बहुत पहले स भाषा मे विद्यमान थे। पाणिनि ने अनेक पारिभाषिक सज्ञाओ को प्रातिशाख्यो से लिया है। पाणिनि द्वारा प्रयुक्त अनेक पारिभाषिक शब्द ब्राह्मण ग्रन्थो म भी मिलत हैं। अत यह कहना कि सभी पारिभाषिक शब्दा का निर्माण पाणिनि ने किया है, नितान्त मिथ्या है।

3 यास्क ता भाषा मे प्रयुक्त शब्दो को ध्यान म रखकर चलते है, व्याकरण क नियमा को नही। उनके अधिकाश निवच न व्याकरण सम्मत नही हैं। यदि गम् धातु से गत या गत्वा रूप बनता है तो म् का लोप बताना स्वाभाविक ही है। यास्क ने कही भी पाणिनि क सूत्र का उल्लेख नही किया है।

4 'आङ् सज्ञा को यास्क ने पाणिनि से लिया है, यह किसी भी प्रकार सिद्ध नही होता।

5 यास्क के द्वारा प्रयुक्त 'अपाण' को पाणिनि द्वारा छोड दिया जाना किसी भी प्रकार सिद्ध नही करता है कि पाणिनि यास्क से पूववर्ती थ। अनेक शब्द एसे ह जो पाणिनि स पूर्ववर्ती ग्रन्थों म विद्यमान थे परन्तु पाणिनि न उनके लिए कोई नियम नही बनाया ह। भाषा म ऐस अनेक प्रयोग हात हैं जिनकी ओर वैयाकरण का ध्यान नही जाता। अपाण शब्द को वार्तिककार न भी नही लिया है। क्या इसम यह अर्थ लिया जाए कि यास्क कात्यायन स भी बाद का था ?

उपयु क्त विवरण म स्पष्ट है कि पाणिनि को यास्क स पूववर्ती मानन वाला मत निराधार है। इसक विपरीत अधिक ठोस प्रमाणों के आधार पर यह निर्विवाद

कहा जा सकता है कि यास्क पाणिनि से पहले के थे। कुछ तर्क इस प्रकार हैं—

1 यास्क ने अनेक व्याकरणों, जैसे—शाकटायन गार्ग्य आदि के नाम और मत दिए हैं परन्तु पाणिनि का मत कहीं भी नहीं दिया है। पाणिनि जैसे प्रसिद्ध वैयाकरण यदि यास्क से पूर्ववर्ती होते तो यास्क उनका नामोल्लेख अवश्य करता। इसके विपरीत पाणिनि यास्क से परिचित था क्योंकि पाणिनि ने यास्कादिभ्यो गोत्रे (पा० 2 4 63) सूत्र से यास्क शब्द की सिद्धि बताई है।
2 यास्क बहुत प्राचीन आचार्य थे। पाणिनि से अनेक पूर्ववर्ती ग्रन्थों में जैसे ऋक् प्रातिशाख्य, बृहद्देवता आदि में यास्क का नामोल्लेख है।
3 भाषा की दृष्टि से भी यास्क प्राचीन ही सिद्ध होता है। अतः यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि यास्क पाणिनि से पूर्ववर्ती थे। परन्तु उनकी तिथि के विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।' व प्रातिशाख्यों से भी पहले थे।

निरुक्त के भाष्य

निरुक्त पर विस्तृत भाष्य दुर्गाचार्य ने लिखा है। लक्ष्मण स्वरूप ने दुर्गाचार्य का समय 13वीं शताब्दी के आस पास माना है। निरुक्त की दो अन्य टीकाओं का उल्लेख है। उग्र ने निरुक्त की कोई टीका लिखी थी, इसका उल्लेख ओफ्रेक्ट ने केटेलोगस केटेलोगोरम में किया है। परन्तु इसका कोई हस्तलेख प्राप्त नहीं हुआ है। निरुक्त पर स्कन्दस्वामी ने भी एक टीका लिखी थी, इसका उल्लेख निघण्टु के भाष्यकार देवराज यज्वा ने किया है। इस टीका का हस्तलेख प्राप्त हो गया है।[25]

निघण्टु पर देवराज यज्वा ने भाष्य लिखा है। लक्ष्मणस्वरूप ने इसका समय 15वीं शताब्दी माना है।[26]

सन्दर्भ

1. निरुक्त 1.1९, पृ० 37
2. वही
3. वही, 1 16, पृ० 39
4 निरुक्त 1.20, पृ० 41
5. निरुक्त 2.1 पृ० 44
6. पा० 6.3.109 पर काशिकावृत्ति

7 द्रष्टव्य मैक्समूलर, एशियंट संस्कृत लिट्रेचर पृ० 135
8 ऋ० वे० 1 3 10
9 वही, 1 164 50
10 वही, 5 8 4
11 वही, 6 66 9
12 वही, 8 93 7
13 वही, 9 67 22
14 मैक्समूलर, वही, प० 136
15 मैक्समूलर वही, पृ० 138
16 महाभारत, मोक्षपर्व 342 86,87
17 लक्ष्मण स्वरूप, स० निघण्ट व निरुक्त, अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका प० 14
18 लक्ष्मण स्वरूप वही प० 41
19 देखें, डा० लक्ष्मण स्वरूप, वही, प० 39-48
20 निरुक्त 1 1 प० 27
21 वही 1.2 प० 29
22 निरुक्त 1 2, पृ० 29
23 निरुक्त 1 3 4, प० 29-30
24 विस्तार के लिए देखें निरुक्त, द्वितीय अध्याय
25 लक्ष्मणस्वरूप, निरुक्त, अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका पृ० 49
26 वही, भूमिका, पृ० 25 27

अध्याय-6

छन्द और ज्योतिष

छन्द

छन्द शास्त्र बहुत प्राचीन वेदांग है। ऋग्वेद के मन्त्र ही इस बात के प्रमाण हैं कि ऋग्वेद के रचना काल में वैदिक ऋषियों को छन्द शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था। ऋग्वेद में छन्दों के अनेक प्रकार प्रयुक्त हुए हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों को हम तीन मुख्य भागों में बाँट सकते हैं—

1. अनुष्टुप् वर्ग के छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, पंक्ति, महापंक्ति, शक्वरी।
2. त्रिष्टुपवर्ग के छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, विराज, द्विपाद विराज।
3. प्रगाथ अथवा लयात्मक छन्द—उष्णिक्, ककुभ, बृहती, सतोबृहती, अत्यष्टि।

इन छन्दों को परस्पर मिलाकर भी अनेक नये छन्द बनाए गए हैं। आर्नोल्ड ने लगभग 88 प्रकार के छन्द ऋग्वेद में खोजे हैं।[1] उन्होंने कहा कि वैदिक ऋषि नये से नये छन्दों की रचना में लगे रहते थे। वे एक अच्छे शिल्पी के शिल्प में अपने छन्दों की तुलना करते थे तथा ऐसा मानते थे कि नये छन्द में गाये हुए गीत से देवता अधिक प्रसन्न होते हैं।

इससे प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक काल मे ही छन्द शास्त्र का विकास हो चुका था। परन्तु छन्द शास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ हमे अधिक नही मिल पाये हैं। आरण्यक तथा उपनिषदो मे छन्द शास्त्र से सम्बन्धित अनेक सन्दर्भ मिलते हैं।[2] परन्तु इसका विकसित रूप हमे सूत्र काल मे ही मिलता है।

शांख्यायन श्रौतसूत्र

शाखायन श्रौतसूत्र के सप्तम अध्याय के 25, 26 तथा 27वें भाग मे छन्दो की चर्चा की गई है तथा उनमे लक्षण आदि पर विचार किया गया है। इन अध्यायों मे प्रगाथ छन्द का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त बृहती, ककुभ, सतोबृहती, उष्णिक्, पुरउष्णिक, ककुप, अनुष्टुप, जगती, त्रिष्टुप, पच पक्ति, भूरिक आदि छन्दो के नाम तथा उनकी प्रमुख विशेषताए बताई गई है। प्रगाथ छन्द का लक्षण बताते हुए शाखायन सूत्र मे कहा गया है—'बृहती पूर्वा ककुबा सतो बृहत्युत्तरा त प्रगाथ इत्याचक्षते।' (शा० श्रौ० सू० 7 24 3)। गायत्री छन्द का लक्षण त्रिपदा कहकर किया गया है—

'त्रिपदा गायत्री' (7 27 1)

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि शाखायन श्रौतसूत्र के समय निश्चित रूप से छन्द शास्त्र का विकास हो चुका था। छन्द शास्त्र के उपदेश की बात भी शाखायन के इन सूत्रो से स्पष्ट हो जाती है—*शस्त्रेषु प्रायेणायथासमाम्नातम्* (7.24 1,2)।

ऋक् प्रातिशाख्य

ऋक् प्रातिशाख्य मे पिछले तीन पटलो मे ऋग्वेद के छन्दो पर विचार किया गया है। यहा छन्दों से सम्बन्धित विविध पक्ष, यथा—पाद, गुरु-लघु भाव, पादो के विभाग के प्रकार, न्यूनाक्षर पादो की पूर्ति के उपाय, व्यूह, व्यवाय, अधिकाक्षर छन्द (भूरिक) आदि विषयो का विवेचन करते हुए ऋग्वेद मे प्रमुख छन्दो के लक्षण आदि बताए गए है।

निदान सूत्र

सामवेद के छन्दो का विस्तृत विवेचन निदान सूत्र मे किया गया है। निदान सूत्र म कुल दस प्रपाठक हैं। इसे सामवेद का श्रौतसूत्र माना जाता है परन्तु इसका वर्ण्य विषय अन्य श्रौतसूत्रो से भिन्न है।

गोभिल गृह्य-कर्म-प्रकाशिका के अनुसार निदान सूत्र कौथुमी शाखा का श्रौतसूत्र है। इस सूत्र के कुछ हस्तलेखो मे इसे दस सूत्रों मे तृतीय सूत्र माना है—

'इति दशम प्रपाठक समाप्त. निदानसूत्र समाप्तमिति। निदान नाम तृतीय सूत्रम्।'[3]

इस सूत्र म मुख्य रूप में सामगान में प्रयुक्त छन्दों पर विचार किया गया है। प्रथम प्रपाठक के पहले 7 खण्ड छन्दोविचिति के नाम से विख्यात हैं। इसका प्रारम्भ छन्दोज्ञान की प्रतिज्ञा के साथ ही होता है—'अथातश्छन्दसां विचय व्याख्यास्याम'।' इस भाग मे छन्दों से सम्बन्धित विविध पक्षों पर विचार किया गया है—यथा, पाद, विभिन्न छन्दो म अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ आदि। छन्दो की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए 7वें खण्ड के अन्त मे कहा गया है—

छन्दसा विचय जानन् म शरीराद्विमुच्यत।
छन्दसामेति सालोक्यमानन्त्यायाश्नुते॥ (1,7,15)

अन्य विषयो के बीच म भी छन्दो का विचार किया गया है। यथा प्रथम प्रपाठक के दसवें खण्ड म स्तोम म प्रयुक्त 7 मुख्य छन्दों का विचार किया गया है। इसी प्रकार 1,13, 3 4,5,10,4 1 9 आदि स्थलो मे छन्द सम्बन्धी विवरण हैं। छन्दों के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है, जो श्रौतसूत्र के विषय हैं।

निदान सूत्र के रचयिता के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस सूत्र के कुछ हस्तलेखों में केवल 'ऋषिप्रोक्तम्' कहा गया है। कुछ हस्तलेखों मे इसका रचयिता पतजलि माना गया है। छन्दोविचिति के भाष्यकार हृषीकेश ने भी इसका रचयिता पतञ्जलि ही माना है।[4] अन्य कई स्थानो से भी इस मत की पुष्टि होती है कि इस ग्रन्थ का रचयिता पतजलि ही है। तानप्रसाद की तत्त्वबोधिनी वृत्ति के प्रारम्भ म ये श्लोक दिए गए हैं—

विघ्नेश भारतीमीशमाचार्यं च पतञ्जलिम्।
नत्वा निदानसूत्रस्य वृत्तिं कुर्वे यथामति।
क्व सूत्रमतिगम्भीरं क्वाहं वृत्या नु साहसम्।
तानप्रसाद कुरुते वृत्तिं तत्त्वसुबोधिनीम्॥

मद्रास के राजकीय पुस्तकालय में सगृहीत 'छान्दोग्य-श्रौत प्रदीपिका' की हस्तलिखित प्रति मे प्रारम्भ मे द्राह्यायण आदि के साथ पतजलि का नाम भी लिया गया है—

'द्राह्यायणीय—पातंजल-वाररुचमाशकानुपमगृह्य।'

केलेंड भी निदान सूत्र के रचयिता पतजलि को ही मानते हैं।[5] माधवभट्ट ने ऋग्वेदानुक्रमणी में कहा है—

सन्ति प्रगाथा बहव प्रातिशाख्यप्रदर्शिता।
पातञ्जले निदाने तु द्वौ प्रगाथौ प्रदर्शितौ।

इन सब प्रमाणों से यह लगभग निश्चित ही हो जाता है कि परम्परा निदान

सूत्र का रचयिता पतंजलि को ही मानती है।

परन्तु यह कहना बहुत कठिन है कि ये कौन से पतंजलि थे। एक पतंजलि महाभाष्यकार के रूप मे प्रसिद्ध हैं, एक पतंजलि योगसूत्रकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। एक पतंजलि वैद्यक शास्त्र का निर्माता था।

वासवदत्ता की टीका मे शिव राम ने कहा है—

योगेन चितस्य, पदेन वाचाम्,
मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां,
पतंजलिं प्रांजलिरानतोऽस्मि॥

समुद्रगुप्त द्वारा रचित कृष्ण चरित की प्रस्तावना मे पतंजलि को इन्ही तीन ग्रन्थों का रचयिता माना है—

विद्ययोद्रिक्तगुणतया भूमावमरतां गतः।
पतंजलिर्मुनिवरो नमस्यो विदुषां सदा॥
कृत येन व्याकरणभाष्यं वचनशोधनम्।
धर्माविद्युक्ताश्चरके योगा रोगमुष कृताः॥
महानन्दमयं काव्यं योगदर्शनमद्‌भुतम्।
योगव्याख्यानभूतं तद् रचित चित्तदोषहम्॥

उपर्युक्त उद्धरण मे कथन है कि पतजलि ने व्याकरण भाष्य तथा योगसूत्र के अतिरिक्त आयुर्वेद के ग्रन्थ चरकसहिता मे रोगमुक्त करने वाले कुछ योगों का समावेश किया था। उपर्युक्त किसी भी कथन मे महाभाष्यकार पतंजलि को निदान सूत्र का रचयिता नही माना गया है परन्तु कात्यायन की सर्वानुक्रमणी के भाष्यकार षड्गुरु शिष्य ने पतजलि को योगशास्त्र तथा निदान सूत्र का रचयिता तथा कात्यायन के वार्तिकों पर भाष्य लिखने वाला बताया है—

यत्प्रणीतानि वाक्यानि भगवांस्तु पतंजलिः।
व्याख्यच्छान्तनवीयेन महाभाष्येण हर्षित॥
योगाचार्यः स्वयं कर्ता योगशास्त्रनिदानयोः।
एवं गुणगणैर्युक्तः कात्यायनमहामुनिः॥

परन्तु यहां यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि निदान से तात्पर्य *सामवेदीय निदान सूत्र से है या निदान नाम से कोई आयुर्वेद का ग्रन्थ है। आयुर्वेद* मे 'निदान' शब्द का प्रयोग रोग के परीक्षण अर्थ मे होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि सामवेदीय निदानसूत्र का रचयिता पतंजलि महाभाष्य के रचयिता पतजलि से भिन्न व्यक्ति है। महाभाष्य और निदानसूत्र की शैली की तुलना करने से प्रकट होता है कि महाभाष्यकार की शैली बहुत सरल और भाषा बहुत प्रवाहमयी है। इसके विपरीत निदानसूत्र की शैली सूत्रात्मक है और भाषा

श्लिष्ट है। महाभाष्यकार पतञ्जलि पाणिनि के भक्त थे। परन्तु निदानसूत्र में कहीं भी पाणिनि का उल्लेख नहीं हुआ है। सन्धियों का परिगणन करते समय उन्होंने दो श्लोक दिए हैं जिनमें सन्धियों के जो नाम दिए हैं वे पाणिनि ने कहीं नहीं बताए हैं—

चत्वारि सन्धिजातानि यैश्छन्दो ह्युच्यते न च ।
प्रश्लिष्टमभिनिहितं क्षिप्रसन्धिरभिध्रुवम् ॥
एतानि सन्धिजातानि सिमानश्छन्दसाक्षरे ।
द्वयं कुर्यादसम्पूर्णं सम्पूर्णं किञ्चनद्भवत् ॥

यहाँ प्रश्लिष्ट सन्धि, अभिनिहित सन्धि, क्षिप्र आदि दिए गए हैं जिनका प्रयोग प्रातिशाख्यों में तो हुआ है परन्तु पाणिनीय व्याकरण में कहीं नहीं। इसके अतिरिक्त निदानसूत्र में कई अपाणिनीय प्रयोग हुए हैं। इससे सिद्ध होता है कि निदानसूत्र का रचयिता पाणिनि से परिचित नहीं था।

निदानसूत्र किस काल में लिखा गया, यह एक कठिन समस्या है। निदानसूत्र में आर्षेय कल्प का उल्लेख है। यह सूत्र लाट्यायन श्रौतसूत्र के निकट प्रतीत होता है परन्तु लाट्यायन का उल्लेख कहीं भी नहीं किया गया है। लाट्यायन श्रौतसूत्र और निदानसूत्र दोनों ही एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप से लिखे गए प्रतीत होते हैं और दोनों के सम्मुख आर्षेय कल्प विद्यमान था।

निदानसूत्र का रचयिता यदि पतञ्जलि माना जाता है तो वह पतञ्जलि पाणिनि से पूर्ववर्ती है। गणपाठ में, जिसका उपयोग पाणिनि ने किया है, पतञ्जलि का नाम उपकादिगण (2 4 69) में पढ़ा गया है। पतञ्जलि का काल आर्षेय कल्प तथा पाणिनि के मध्य माना जाना चाहिए।

निदानसूत्र के उपजीव्य ग्रन्थ

निदानसूत्र और लाट्यायन श्रौतसूत्र की तुलना करने से ज्ञात होता है कि दोनों में अनेक स्थानों पर समानता है। परन्तु कहीं पर भी लाट्यायन श्रौतसूत्र का उल्लेख नहीं मिलता है। आर्षेय कल्प, जिस पर लाट्यायन श्रौतसूत्र आधारित है, निदानसूत्र में उल्लिखित है। इससे प्रतीत होता है कि दोनों ही सूत्रों अर्थात् लाट्यायन तथा निदानसूत्र किसी अन्य ग्रन्थ से जो आर्षेय कल्प पर आधारित था, ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त निदानसूत्र पर पञ्चविंश ब्राह्मण का भी प्रभाव है। अनेक ऐसे स्थल हैं जो पञ्चविंश ब्राह्मण तथा निदानसूत्र में ज्यों के त्यों मिलते हैं।

निदानसूत्र की उपजीव्यता

निदानसूत्र बहुत लोकप्रिय और प्रचलित ग्रन्थ रहा है। इस बात का प्रमाण

यह है कि सायण, वरदराज, धन्वी तथा अन्य भाष्यकारों ने निदानसूत्र से बहुत उद्धरण लिये हैं। सायण ने पर्चविंश ब्राह्मण के भाष्य मे लगभग 20 स्थानो पर निदानसूत्र के मत उद्धृत किए हैं। वरदराज न आर्षेय कल्प के भाष्य मे लगभग 50 स्थानो पर निदानसूत्र का उल्लेख किया है। धन्वी ने द्राह्यायण सूत्र के भाष्य मे लगभग 24 स्थानो पर निदानसूत्र से उद्धरण दिए हैं। अन्य व्याख्याकारो ने भी निदानसूत्र से उद्धरण लिये हैं।

निदानसूत्र पर भाष्य

निदानसूत्र का छन्दोविचिति भाग बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस पर तातप्रसाद की तत्त्वसुबोधिनी तथा हृषीकेश की टीकाएं उपलब्ध हैं।

पिंगल का छन्द सूत्र

छन्दोविचिति शास्त्र के प्राचीनतम ज्ञाताओ मे पिंगल का नाम सर्वाधिक सम्मान के साथ लिया जाता है। यद्यपि प्राचीन ग्रन्थो मे छन्द शास्त्र का परिशीलन हुआ है परन्तु जो वैज्ञानिकता छन्द शास्त्र को पिंगल ने दी है वह उससे पूर्व किसी आचार्य न नही दी है।

पिंगल का एकमात्र ग्रन्थ 'छन्द शास्त्रम्' या 'छन्द सूत्रम्' नाम से विख्यात है। वृत्तिकार हलायुध न सूत्र और शास्त्र दोनो शब्दो का प्रयोग किया है, यथा—

पिंगलाचार्यसूत्रस्य मया वृत्तिर्विधास्यते।

यहा सूत्र शब्द का प्रयोग किया है। इसम आग एक श्लोक छोडकर ही हलायुध न छन्द शास्त्र शब्द का प्रयोग किया है—

श्रीमत्पिंगलनागोक्तछन्द शास्त्रमहोदधौ।
वृत्तानि मौक्तिकानीव कानिचिद्विचिनोम्यहम्॥

अपनी टीका के अन्तिम श्लोक मे भी हलायुध ने छन्द शास्त्र का ही प्रयोग किया है—

पिंगलाचार्यरचिते छन्द शास्त्रे हलायुध।
मृतसंजीवनी नाम वृत्ति निर्मितवानिमाम्॥

पिंगल के छन्द शास्त्र की वेदागता

पिंगल के छन्द शास्त्र मे वैदिक और लौकिक दोनो ही प्रकार के छन्दों पर विमर्श किया गया है। इसलिए इस विशुद्ध वेदाग नहीं कह सकते। परन्तु इसके उस भाग को वेदाग अवश्य माना जा सकता है जिसम वैदिक छन्दो पर विचार किया गया है।

छन्दःशास्त्र का विषय-विश्लेषण

छन्द शास्त्र कुल आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम गण-निर्माण की प्रक्रिया को बताया गया है। मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण तथा नगण, ये गण बताये गये हैं। इसके पश्चात लघु-गुरु संज्ञा बताई गई है। द्वितीय अध्याय में गायत्री छन्द के भेद बताये गये हैं यथा—एकाक्षर वाली गायत्री की दैवी संज्ञा, 15 अक्षरों वाली गायत्री की आसुरी संज्ञा आदि। आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची, ब्राह्मी—ये गायत्री की संज्ञाएं गिनाई गई हैं। तृतीय अध्याय में गायत्री-आदि छन्दों के पाद-पूरण प्रकार पर विचार किया गया है। चतुर्थाध्याय में उत्कृति आदि छन्दों के लक्षण दिये गये हैं। पंचम अध्याय में 'वृत्त' नाम से लौकिक छन्दों की संज्ञा, भेदादि पर विचार किया गया है। षष्ठ अध्याय में यति आदि के नियमों का विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त छन्दों के मगण रगण आदि अक्षरक्रमों को निर्दिष्ट किया गया है। सप्तम और अष्टम अध्यायों में भी भिन्न-भिन्न छन्दों में वर्णक्रम बताया गया है।

छन्द शास्त्र में जिन वैदिक छन्दों का विमर्श हुआ है उनमें प्रमुख हैं—अनुष्टुप्, जगती, अतिजगती, गायत्री, पंक्ति, बृहती, उष्णिक, त्रिष्टुप्, भुरिक, महापंक्ति, महाबृहती, महासतो बृहती, यवमध्या, वर्धमाना, विराट् आदि। वैदिक छन्दों का विवरण केवल 97 सूत्रों में हुआ है, शेष 211 सूत्रों में लौकिक छन्दों का।

ग्रन्थकर्त्ता का परिचय तथा काल

ग्रन्थकार पिंगलाचार्य नाम से प्रसिद्ध है। उन्हें पिंगलनाग भी कहते हैं। वृत्तिकार हलायुध ने दोनों नामों का प्रयोग किया है। यह पिंगल कौन है, इस विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। महाभारत के आदि पर्व (35,9) में वर्णित जैमिनीय सर्पयज्ञ में पिंगल नाम का एक नाग बताया गया है, जो दग्ध हो गया था।

निष्टानको हेमगुहो नहुष पिंगलस्तथा।

परन्तु यह पिंगल छन्द शास्त्र का रचयिता प्रतीत नहीं होता। सम्भव है नाग नामक कोई प्राचीन ऋषि हो जिसकी वंश-परम्परा में पैदा होने के कारण पिंगल को पिंगलनाग कहा जाने लगा हो।

षड्गुरुशिष्य की सर्वानुक्रमणी की टीका में पिंगल को पाणिनि का अनुज बताया गया है।

सूच्यते हि भगवता पिंगलेन पाणिन्यनुजेन।

शबरस्वामी ने अपने शाबरभाष्य में पिंगल तथा उसके मगण का, जिसमें तीनों अक्षर गुरु होते हैं, उल्लेख किया है—

यथा मकारेण पिंगलस्य सर्वगुरुस्त्रिक प्रतीयेत।—शाबरभाष्य 1.15

पतजलि ने महाभाष्य (आह्निक 9, सू० 73) मे पैंगल काण्व का उल्लेख हुआ है। पुराणो मे भी पिंगल का नामोल्लेख अनेक स्थानो पर हुआ है। वामनपुराण म सनक, सनन्दनादि अति प्राचीन आचार्यों के साथ पिंगल का स्मरण किया गया है।

सनत्कुमार सनक सनन्दन.।
सनातनोऽप्यासुरिपिंगलौ च ॥ वामन पुराण 14 25

अग्निपुराण के आठ अध्यायो म (328-335) छन्दो का ही निरूपण हुआ है। वहा ग्रन्थकार ने स्वय कहा है कि छन्दो का निरूपण पिंगल के आधार पर ही किया गया है।

छन्दो वक्ष्ये मूलजैस्तै पिंगलोक्त यथाक्रमम्।

पिंगल की मृत्यु के विषय मे पचतन्त्र म बताया गया है कि उसे समुद्र तट पर मकर ने मार दिया था।

छन्दोज्ञाननिधि जघान मकरो वेलातटे पिंगलम्। पचतन्त्र 2 26

इसस कुछ विद्वानो का विचार है कि पिंगल समुद्रतट के निवासी थे। इसके समर्थन मे वे एक तर्क और देते हैं कि पिंगल के छन्दो म अपरान्तिका तथा वानवासिका नाम आये हैं। बलदेव उपाध्याय के शब्दो मे तथ्यत ये दोनो शब्द अपरान्त तथा वनवास देश के स्त्रीजनो के लिए प्रयुक्त होते है। अपरान्त तथा वनवास ये एक-दूसरे से सलग्न प्रान्त बम्बई प्रान्त के पश्चिम समुद्रस्थ प्रदेश कोकण को सूचित करते है।[1]

परन्तु यदि पिंगल को समुद्रतट का निवासी मान ले तो षड्गुरुशिष्य का कथन कि पिंगल पाणिनि के अनुज थे, सगत नही बैठता है क्योंकि पाणिनि पश्चिमोत्तर म शलातुर के निवासी माने जाते हैं। यह सम्भव है कि पिंगल शलातुर म पैदा हुए हो और बाद मे समुद्रतट पर बस गये हों। परन्तु जब तक और अधिक प्रमाण सामने नही आते हैं तब तक केवल किवदन्तियो पर विश्वास करके कुछ भी निर्णय नहीं लिया जा सकता। अत यह प्रश्न अभी अनिर्णीत ही है। पाणिनि का स्थान और काल भी अभी विवादास्पद है, अत यह समस्या अभी बनी हुई है।

पिंगल से पूर्ववर्ती आचार्य

पिंगल म पूर्व भी अनेक आचार्य छन्द शास्त्र के ज्ञाता रहे है, इसका प्रमाण स्वय पिंगल का छन्द शास्त्र है जिसम अनेक पूर्ववर्ती आचार्यों के नाम दिए गए हैं, यथा क्रौष्टुकि, यास्क, ताण्डि, सैतव, काश्यप, रात, माण्डव्य आदि। क्रौष्टुकि काई बहुत पुराने आचार्य थ क्योंकि यास्क न भी क्रौष्टुकि का नाम लिया है—

द्रविणोदा इन्द्र इति क्रौष्टुकि ।

निरुक्त 8 2

इससे स्पष्ट है कि छन्द शास्त्र का विकास भारत में अति प्राचीन काल में ही हो गया था परन्तु दुर्भाग्य से इस शास्त्र के ग्रन्थ लुप्त हो गए हैं।

ज्योतिष

ज्योतिष वेदांगों में सबसे अन्तिम वेदाङ्ग माना गया है। इस वेदांग का प्रारम्भ कब और किस प्रकार हुआ, कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि वेदांग ज्योतिष से सम्बन्धित हमें कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है।

'वेदांग ज्योतिष' के नाम से केवल एक लघु आकार की पुस्तिका प्राप्त हुई है जिसके दो संस्करण हैं—ऋग्वेद ज्योतिष तथा यजुर्वेद ज्योतिष। ऋग्वेद ज्योतिष में कुल 36 श्लोक हैं जबकि यजुर्वेद ज्योतिष में 41 श्लोक हैं। कुछ संस्करणों में 43 श्लोक भी मिले हैं परन्तु डॉ० साम शास्त्री द्वारा सम्पादित संस्करण, जो अधिक प्रामाणिक है, में 44 श्लोक हैं।

ज्योतिष का भारत में प्रारम्भ

भारत में ज्योतिष का प्रारम्भ कब से हुआ, इस विषय में मतभेद है। पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि भारत में ग्रीकों के सम्पर्क से ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त हुआ। परन्तु यह धारणा बहुत भ्रामक और मिथ्या है। भारत में ज्योतिष शास्त्र इतना ही प्राचीन है जितना ऋग्वेद। ऋग्वेद में नक्षत्र शब्द का कम से कम 11 बार प्रयोग हुआ है।[1] एक स्थान पर नक्षत्र, जो सम्भवतः चन्द्रमा के लिए प्रयुक्त हुआ है, *सूर्य की किरणों के द्वारा प्रकाशित किया गया बताया गया है—*

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्। (ऋग्वेद 7.81 2)

अर्थात् सूर्य सभी किरणों को एक साथ ही उत्पन्न करता है तथा उदित हुए नक्षत्र (अर्थात् चन्द्रमा) को प्रकाश से युक्त करता है। चन्द्रमा का सूर्य की किरणों के द्वारा प्रकाशित होना एक ऐसा तथ्य है जिसका ज्ञान ज्योतिष के उच्च ज्ञान के बिना नहीं हो सकता।

चन्द्रमा सूर्य के द्वारा प्रकाशित होता है, इस तथ्य का वैदिक ऋषियों को अच्छी प्रकार से ज्ञान था। वाजसनेयी संहिता (18 40) में चन्द्रमा का विशेषण सूर्यरश्मि दिया गया है—सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः

मैक्समूलर ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि ऋग्वेद काल में वैदिक ऋषियों को ज्योतिष का ज्ञान था। उन्होंने इसके लिए ऋग्वेद का मंत्र 10 85 2 प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है जहाँ चन्द्रमा नक्षत्रों की गोद में स्थित कहा है।

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः। (ऋग्वेद 10 85 2)

अर्थात 'इन नक्षत्रों की गोद मे सोम (चन्द्र) स्थापित कर दिया गया है।' यह मन्त्र नक्षत्रो के मध्य मे चन्द्रमा की गति को सूचित करता है। मैक्समूलर ने यह भी स्वीकार किया है कि ऋग्वेद के ऋषियो को सवत्सर के 12 मास के अतिरिक्त अधिक मास का भी ज्ञान था। इसके प्रमाण मे ऋग्वेद का मन्त्र 1 25 8 अवलोकनीय है—

'वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावत.।
वेद य उपजायते।'

अर्थात् वह (वरुण) जो सत्यव्रत को धारण करने वाला है, बारह मासो को उनकी प्रजाओ सहित (अर्थात् दिनादि भागो सहित) जानता है। वह उस मास को भी जानता है जो सवत्सर मे अधिक उत्पन्न हो जाता है। 'वर्ष मे बारह तथा अधिक मास का ज्ञान होना उच्च वैज्ञानिक ज्ञान का परिचायक है। तेरह मास के ज्ञान की बात को तैत्तिरीय सहिता मे स्पष्ट कहा गया है, जैसा कि सायण ने ऋग्वेद के 2 40 3 के भाष्य मे कहा है—

'अस्ति त्रयोदशो मास (तै० स० 6 5 3 4) इति श्रुतेः'

तैत्तिरीय ब्राह्मण (4 5) तथा वाजसनेयी सहिता (30 10 20) में नक्षत्र तथा गणक शब्दो का प्रयोग किया गया है जो ज्योतिर्विद् के पर्यायवाची हैं। छान्दोग्योपनिषद् मे नक्षत्रविद्या शब्द का प्रयोग हुआ ह। इससे सिद्ध होता है प्रारम्भिक वैदिक काल मे ज्योतिष का पर्याप्त ज्ञान था और ज्योतिष एक विद्या का रूप ले चुका था। चरणव्यूह म न केवल ज्योतिष अपितु उपज्योतिष शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[10]

पाणिनि की अष्टाध्यायी मे भी ज्योतिष-शास्त्र के नक्षत्रादि शब्दो का प्रयोग हुआ है। गणपाठ मे जहा अन्य वैदिक ग्रन्थो को गिनाया गया है वहा ज्योतिष का भी परिगणन हुआ है।

ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थो का निर्माण हुआ होगा परन्तु आज उनमे से अधिकाशत लुप्त हो गए हैं। चरणव्यूह के फलश्रुति खण्ड मे वेदो, भारत तथा व्याकरण का आकार लक्षात्मक बताया है तो ज्योतिष का आकार चार लक्षात्मक बताया है—

लक्ष तु चतुरो वेदा लक्ष भारतमेव च
लक्ष व्याकरण प्रोक्तं चतुर्लक्ष तु ज्योतिषम्।

इससे सिद्ध होता है चरणव्यूह के काल तक ज्योतिष का विपुल साहित्य रचा जा चुका था जो इस शास्त्र की लोकप्रियता का परिचायक है। परन्तु धीरे-धीरे यह सभी साहित्य लगभग नष्ट हो गया। सम्भवत विदेशी आक्रमण इसका कारण है।

उपलब्ध 'वेदाग ज्योतिष' छोटा-सा ग्रन्थ होते हुए भी अनेक महत्त्वपूर्ण

सूचनाएं प्रदान करता है। इसकी शैली सूत्रात्मक है। इसकी अनेक व्याख्याएं हुई हैं। प्राचीन टीकाकारों में सोमाकर प्रसिद्ध है। अनेक आधुनिक विद्वानों ने भी इस पर अपने मत प्रकट किए हैं जिनमें प्रमुख हैं—वेबर, विलियम जोंस, ह्विटने, मैक्समूलर, शंकर बालकृष्ण दीक्षित प० सुधाकर द्विवेदी आदि।

ऋग्वेद और यजुर्वेद के दोनों सम्स्करणों में बताया गया है कि रचनाकार को कालज्ञान महात्मा लगध से हुआ है—

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः

—ऋग्वेदज्योतिष 2, यजु० ज्यो० 43

ग्रन्थकार के काल और स्थान के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस ग्रन्थ में विषुव की जो स्थिति बताई गई है उसके आधार पर इसका काल कुछ भारतीय विद्वानों ने 1200 ई० पू० बताया है।[12] कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसी के आस-पास इसका काल माना है। यह निश्चित है कि इसकी रचना ब्राह्मण काल के बाद हुई।

सम्भवतः यह ग्रन्थ हमें पूर्णरूप में उपलब्ध नहीं हुआ। यह किसी अन्य बड़े ग्रन्थ का अंश है।

प्राचीन ज्योतिष परम्परा के आधार पर ही भारत में ज्योतिष का विकास हुआ परन्तु बाद में यूनानी और अरबी लोगों से सम्पर्क होने के बाद अनेक अतिरिक्त बातें ज्योतिष शास्त्र में जुड़ गईं।

सन्दर्भ

1. आर्नोल्ड, वैदिक मीटर, पृ० 244-249
2. मैक्समूलर, एन्शिएंट संस्कृत लिट्रेचर, पृ० 110
3. के० एन० भटनागर, म० निदानसूत्र, भूमिका, पृ० 23
4. कैलाशनाथ भटनागर, निदानसूत्र, भूमिका, पृ० 25
5. वही, पृ० 26
6. वही, पृ० 29-30
7. वही, पृ० 31-41

8 बलदेव उपाध्याय, संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० 289

9 ऋग्वेद, 1 50 2 3 54 19 6 22 2, 6 67 6, 7 81 2 7 86 1, 10.22 10, 10 68 11, 10 85 2, 10 88 13, 10 111 7 10 156 4

10 द्रष्टव्य, मैक्समूलर प्राचीन संस्कृत साहित्य, पृ० 190

11 शंकर बालकृष्ण दीक्षित, भारतीय ज्योतिष, प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग, लखनऊ, (हिन्दी अनुवाद) पृ० 123

अध्याय-7

परिशिष्ट ग्रन्थ

इस अध्याय में उन ग्रन्थों का विवरण है जिन्हें किसी वेदांग विशेष की कोटि में नहीं रखा जा सकता। परन्तु इन ग्रन्थों का सम्बन्ध वैदिक संहिताओं से है क्योंकि ये उनके विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएं देते हैं। अत: ये सब ग्रन्थ वैदिक साहित्य का भाग हैं।

ये ग्रन्थ प्राय: वेदांग शैली में लिखे गए हैं। ये वैदिक अध्ययन के सहायक ग्रन्थ हैं अत: ये ग्रन्थ वेदांग की कोटि में ही परिगणित होने चाहिए। परन्तु इन्हें उक्त षड्वेदांगों की कोटि में नहीं रखा जा सकता। अत: उन्हें परिशिष्ट के रूप में पृथक् दिया जा रहा है। इन ग्रन्थों को हम 'उप-वेदांग' नाम दे सकते हैं।

प्रत्येक वेद से सम्बन्धित परिशिष्ट ग्रन्थ हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

ऋग्वेदीय परिशिष्ट ग्रन्थ

ऋग्वेद से सम्बन्धित अनेक परिशिष्ट ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अनुक्रमणियाँ हैं। अनुक्रमणियाँ एक प्रकार से विषय-सूचियाँ हैं जो तत्-तत् संहिता से सम्बन्धित अनेक प्रकार के विवरण देती हैं। इन अनुक्रमणियों का बहुत

महत्त्व है क्योंकि इनके द्वारा वैदिक सहिताओ के स्वरूप को जाना जा सकता है। ये अनुक्रमणिया वैदिक सहिताओ के विषय म जो सूचनाए देती हैं वे सब अक्षरश वर्तमान सहिताओ पर घटती हैं। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि इन सहिताओ का जो स्वरूप आज विद्यमान है अनुक्रमणी काल मे भी वही था। वेदो के स्वरूप को अक्षुण्ण बनाए रखने म इन अनुक्रमणियो ने बडा योगदान दिया है क्योकि किसी भी प्रकार की शका होने पर इन अनुक्रमणियो को देखा जा सकता था।

वेदो को सुरक्षित रखने म दो ऋषियो का महान् योगदान है—कात्यायन तथा शौनक। इन्होने जहा श्रौतसूत्र आदि अनेक ग्रन्थ लिखे वहा वेदो के स्वरूप को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सहायक ग्रन्थ भी लिखे। ऋग्वेद से सम्बन्धित कात्यायन का प्रमुख ग्रन्थ है—ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी। शौनक ने ऋग्वेद से सम्बन्धित अनेक सहायक ग्रन्थ लिखे। चरणव्यूह के व्याख्याकार षड्गुरुशिष्य के अनुसार शौनक ने ऋग्वेद के रक्षा के लिए दस ग्रन्थ लिखे—1 आर्षानुक्रमणी, 2 छन्दोऽनुक्रमणी, 3 देवतानुक्रमणी, 4 अनुवाकानुक्रमणी, 5 सूक्तानुक्रमणी, 6 ऋग्विधान, 7 पादविधान, 8 बृहद्देवता, 9 प्रातिशाख्य तथा 10 शौनक स्मृति।

शौनकीय प्रातिशाख्य का विवरण पीछे दिया जा चुका है। शेष ग्रन्थो का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी

यह अनुक्रमणी ऋग्वेद की सभी अनुक्रमणियो से अधिक पूर्ण और विस्तृत है। इसके रचयिता कात्यायन माने जाते है। षड्गुरुशिष्य के अनुसार कात्यायन की सर्वानुक्रमणी से पूर्व शौनक की पाच अनुक्रमणियां विद्यमान थी—1 आर्षानुक्रमणी, 2 छान्दसी अनुक्रमणी, 3 दैवती अनुक्रमणी, 4 अनुवाकानुक्रमणी तथा 5 सूक्तानुक्रमणी—

> आर्ष्यानुक्रमणीत्याद्या छान्दसी दैवती तथा।
> अनुवाकानुक्रमणी सूक्तानुक्रमणी तथा॥

यह अनुक्रमणी सूत्र शैली म लिखी गई है। इसमे कुल दस मण्डल है। ग्रन्थ के प्रारम्भ म 12 काण्डो मे परिभाषाए वर्णित हैं। प्रथम काण्ड में ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय तथा उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। प्रतिपाद्य विषय म सूक्त, प्रतीक, ऋक्सख्या, ऋषि, देवता तथा छन्दो के विषय में विवरण प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा की गई है—

> अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकले सूक्तप्रतीकऋक्-
> सख्यऋषिदैवतच्छन्दाम्यनुक्रमिष्यामो यथोपदेशम्॥[1]

ग्रन्थ की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त विवरण का ज्ञान होना आवश्यक माना गया है क्योकि ज्ञान के बिना श्रौत और स्मार्त कर्म की सिद्धि नहीं

हो सकती—नहीनज्ञानमूते श्रौतस्मार्तकर्मप्रसिद्धि ।[1] दूसरे काण्ड म ऋषि, देवता, छन्द, आदि की परिभाषा दी गई है। शेष काण्डो मे छन्दा क अक्षर तथा उनके लक्षणादि दिए गए हैं। दस मण्डलो म ऋग्वेद के दस मण्डला म ऋग्वद की ऋचा, सूक्त, छन्द, देवता, ऋषि आदि की सूचना दी गई है।

सर्वानुक्रमणी क रचयिता कात्यायन तथा उनके काल क विषय म पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है (देखें कात्यायन श्रौतसूत्र)। ये कात्यायन वार्तिककार कात्यायन से भिन्न हैं तथा पाणिनि से पूर्ववर्ती हैं।

आर्षानुक्रमणी

यह अनुक्रमणी शौनक द्वारा रचित है। यह दस मण्डलों म विभाजित है। इसमें ऋग्वेद के दस मण्डला के ऋषियों का विवरण है। सायण न इस अनुक्रमणी का उल्लेख ऋग्वद क मन्त्र I 100 1 के भाष्य म किया है।

छन्दोऽनुक्रमणी

यह भी शौनक की रचना है। यह पद्यात्मक शैली म लिखी हुई है। इसके दस मण्डल हैं। इस अनुक्रमणी में ऋग्वेद मे प्रयुक्त छन्दों का विवरण है जैसा कि इसके पहले मन्त्र मे ही प्रतिज्ञा की गई है—

ऋग्वदगतसूक्ताना सूक्तस्थानामृचामपि।
यानि छन्दासि विद्यन्ते तानि वक्ष्यामि सम्प्रति ॥[2]

इस अनुक्रमणी के विवरण क अनुसार ऋग्वद म प्रयुक्त हुए छन्दा का विवरण पृ० 174-175 की तालिका के अनुसार है।[3]

अनुवाकानुक्रमणी

इस अनुक्रमणी मे 45 पद्य हैं। इसम ऋग्वद मे आए अनुवाकों का विवरण है। इसके विवरण क अनुसार ऋग्वेद म 85 अनुवाक, 1017 सूक्त 2006 वर्ग तथा 10417 मन्त्र हैं। यह अनुक्रमणी यद्यपि परम्परा स शौनक कृत मानी जाती है, परन्तु यह शौनक द्वारा रचित प्राचीन अनुक्रमणी का नवीन सस्करण प्रतीत होता है। इसके प्रारम्भिक पद्य म गणेश की वन्दना की गई है—

सर्वं कर्मफल यत्र तुष्टस्तुष्ट न किञ्चतमह नमामि।
विनायक गिरिराजेन्द्रपुत्रीमहस्वरप्रियसूनु, घृणाधिम् ॥

यहा शिव का पुत्र विनायक कहा गया है। इस रूप म गणेश की पूजा शौनक के काल में प्रारम्भ नहीं हुई थी। दूसरे पद्य मे निश्चित रूप म यह कहा गया है कि यह अनुवाकानुक्रमणी शौनक की कृपा म लिखी जा रही है—

बहुचाना जनाना तु शौनकस्य प्रसादत।
अनुवाकानुक्रमणी रूप विविच्यप्रवर्ण्यते ॥

छन्दोऽनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद मे प्रयुक्त छन्द

छन्द	मण्डल										कुल योग
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	
गायत्री (24)	472	37	104	119	79	137	61	733	600	108	2440
उष्णिह् (28)	21	0	10	2	19	9	1	228	42	12	344
अनुष्टुप् (32)	117	14	27	27	155	45	44	112	55	97	693
बृहती (36)	5	1	19	0	6	14	4	89	10	32	180
पंक्ति (40)	61	0	2	0	54	5	1	33	20	72	248
त्रिष्टुप् (44)	742	230	399	403	284	478	586	10	149	32	3313
जगती (48)	356	142	50	33	103	39	39	65	166	351	1344
अतिजगती (92)	0	0	0	1	11	1	3	0	0	0	16
शक्वरी (56)	0	0	0	1	1	6	1	7	4	0	20
अतिशक्वरी (60)	5	4	0	0	0	1	0	0	0	0	10
अष्टि (64)	4	1	0	1	0	0	0	0	0	0	6
अत्यष्टि (68)	80	0	0	0	0	0	0	0	3	0	83
धृति (72)	1	0	0	1	0	0	0	0	0	0	2
अतिधृति (76)	1	0	0	0	0	0	0	0	0	0	1

द्विपदा (20)	31	0	0	0	1	3	40	13	27	9	124
एकपदा (10)	0	0	0	1	3	1	0	0	0	1	6
प्रगाथ बार्हत (36 व 40)	80	0	6	0	4	20	64	188	22	4	388
काकुभ (28 व 40)	0	0	0	0	4	4	0	84	14	0	106
महाबार्हत	0	0	0	0	0	- 2	0	0	0	0	2

इससे सिद्ध होता है कि यह शौनक की अनुक्रमणी के आधार पर पुन लिखी गई है। मैक्समूलर को यह अनुक्रमणी प्राप्त नही हुई थी। उनके अनुसार यह अनुक्रमणी षड्गुरुशिष्य के समय थी परन्तु बाद मे लुप्त हो गई।[6] षड्गुरुशिष्य ने अनुवाकानुक्रमणी से उद्धरण दिए हैं।

सूक्तानुक्रमणी

यह भी शौनक की रचना है। इसमे ऋग्वेद के सूक्तो का विवरण है।

ऋग्विधान

शौनककृत ऋग्विधान मे 99 पद्य है। इसम ऋग्वेद के सूक्त, वर्ग, पद या मन्त्र के पाठ मे प्राप्त होने वाले लाभ वर्णित हैं।

पादविधान

पादविधान म ऋग्वेद के शब्दो की सूची है।

ऋग्वेदानुक्रमणी

वेङ्कटमाधव के नाम से भी एक ऋग्वेदानुक्रमणी प्रकाशित है। इसमें स्वरानुक्रमणी, आख्यातानुक्रमणी निपातनुक्रमणी, शब्दावृत्त्यनुक्रमणी, आर्षानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमणी तथा मन्त्रार्थानुक्रमणी सकलित है।

बृहद्देवता

शौनक की रचनाओ मे बृहद्देवता का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह पद्य-शैली मे लिखा हुआ है। इसमें आठ अध्याय है। इसके दो सस्करण उपलब्ध हैं—एक बृहत् सस्करण तथा दूसरा लघु सस्करण। मैक्डानल के अनुसार लघुसस्करण बृहत् सस्करण का सक्षिप्त रूप है। बृहत् सस्करण ही मूल बृहद्देवता है।[7] उनका यह मत दो तर्कों पर आधारित है—1 सर्वानुक्रमणी मे, जो यद्यपि सूत्र शैली म लिखा गया है, बृहद्देवता के बृहत् सस्करण से अनेक पद्य उद्धृत किए गए हैं। 2 तीसरे अध्याय मे यद्यपि बहुत से श्लोक छोड दिए गए हैं परन्तु वर्गसख्या वही है जो बृहत्सस्करण मे है।

बृहद्देवता मे वर्णित विषय

बृहद् देवता के पहला अध्याय तथा दूसरे अध्याय के 25 वर्ग परिचयात्मक हैं। इन अध्यायों में देवताओ की कोटि तथा किस मन्त्र का कौन-सा देवता है, इसके ज्ञान के लिए सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किए हैं। मन्त्र के देवता की सामान्य

बृहद्देवता तथा अन्य ग्रन्थ

बृहद्देवता में अन्य ग्रन्थों के समानान्तर सन्दर्भ उपलब्ध हैं जिससे एक का दूसरे से ग्रहण करने की सम्भावना प्रतीत होती है। बृहद्देवता में अनेक स्थलों पर देवता का वर्णन निघण्टु के समान है। उदाहरणतया बृहद्देवता 1.106-109 में वर्णित अग्नि का विवरण निघण्टु 5 1 2 के समान है। निरुक्त के अनेक सन्दर्भ बृहद्देवता के सन्दर्भों में मिलते हैं। निरुक्त के लगभग 73 सन्दर्भ बृहद्देवता के सन्दर्भों में मिलते हैं।[11] इसी प्रकार आर्षानुक्रमणी, अनुवाकानुक्रमणी, ऋग्विधान, सर्वानुक्रमणी, भगवद्गीता, अभिधान चिन्तामणि ग्रन्थों में भी बृहद्देवता के समानान्तर सन्दर्भ हैं।

बृहद्देवता का रचयिता तथा काल

बृहद्देवता का रचयिता परम्परा से शौनक माना जाता है। षड्गुरुशिष्य द्वारा गिनाई गई शौनक की दस रचनाओं में बृहद्देवता का नाम है। परन्तु मैक्डानल इसे शौनक की रचना न मानकर शौनक सम्प्रदाय के किसी अन्य आचार्य की रचना मानते हैं जो शौनक से अधिक बाद का नहीं था।[12] अपने पक्ष के समर्थन में उनके द्वारा दिए गए मुख्य तर्क इस प्रकार हैं—1 अनेक अनुक्रमणियों में देवतानुक्रमणी नामक ग्रन्थ निश्चित रूप से शौनक की रचना है। देवताओं का विवरण उक्त अनुक्रमणी में देने के पश्चात् शौनक पुनः उसी विषय को लिखने के लिए बृहद्देवता नामक ग्रन्थ लिखना, यह उचित प्रतीत नहीं होता है। 2 ग्रन्थकर्त्ता ने अपने लिए सदा उत्तम पुरुष का प्रयोग किया है, जबकि शौनक का उल्लेख लगभग 15 बार यास्कादि आचार्यों के साथ नाम से किया है। उसने एक स्थान पर शौनक के साथ आचार्य शब्द का प्रयोग किया है, यथा—

नदीवद्देवतावच्च तत्राचार्यस्तु शौनकः ।
नदीवन्निगमा षट् ते सप्तमो नेत्युवाच ह ॥[13]

लेखक स्वयं अपने लिए इस प्रकार नहीं कह सकता था।

मैक्डानल के उपर्युक्त तर्क निर्णायात्मक नहीं माने जा सकते। पहला तर्क तो बहुत ही दुर्बल है। देवतानुक्रमणी लिखने के पश्चात् बृहद्देवता लिखने की आवश्यकता तो दोनों ग्रन्थों के प्रतिपाद्यविषय और नामों से ही स्पष्ट हो जाती है। देवतानुक्रमणी में केवल देवताओं की सूचीमात्र है, जबकि बृहद्देवता में देवता-विषयक अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। देवतानुक्रमणी शीघ्र ज्ञान के उद्देश्य से लिखा गया संक्षिप्त सूची-ग्रन्थ है जबकि बृहद्देवता में देवताओं से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्त और आम्नायिकाओं का वर्णन है। इसका नाम 'बृहद्देवता' भी तभी सार्थक है जब 'देवतानुक्रमणी' नाम का छोटा ग्रन्थ लिखा जा चुका था। अतः

प्रथम तर्क मान्य नहीं है।

दूसरा तर्क अवश्य विचारणीय है। लेखक अपने लिए स्वयं आचार्य शौनक लिखे, यह आज के सन्दर्भ में अटपटा लगता है। परन्तु यदि अन्य प्राचीन ग्रन्थों की शैली पर दृष्टिपात किया जाए तो यह बात अधिक असगत नहीं लगती है। प्राचीन आचार्य स्वय अपने विचारों को अपना नाम लेकर बहुधा देते थे। बौधायन कल्पसूत्र में भी वाक्य बौधायन के नाम से उल्लेख हुआ है। केवल इसी बात से यह मान लेना कि बौधायन की रचना नहीं है, विद्वज्जनों को मान्य नहीं है। यही बात बृहद्देवता के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है। जब तक कोई और ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होते, इसे शौनक की रचना मानना ही उपयुक्त है।

इस रचना का शौनककृत होना अन्य बातों से भी प्रमाणित होता है। मैक्डानल स्वयं मानते हैं कि कात्यायन की सर्वानुक्रमणी में बृहद्देवता से बहुत लिया गया है। वे इस कात्यायन को पाणिनि से पूर्ववर्ती मानते हैं तथा सर्वानुक्रमणी के कात्यायन तथा कात्यायन श्रौतसूत्र के रचयिता कात्यायन को एक ही व्यक्ति मानते हैं। परम्परा के अनुसार शौनक और कात्यायन के काल में अधिक अन्तर नहीं था। कात्यायन शौनक का शिष्य माना जाता है। इतना काल का अन्तराल ही नहीं था कि शौनक और कात्यायन के बीच में कोई अन्य आचार्य बृहद्देवता लिखता। इसलिए बृहद्देवता को शौनक की रचना मानने वाली परम्परा में कोई दोष नहीं है। भाषा और विषय की दृष्टि से बृहद्देवता प्राचीन कृति है, इसलिए यह शौनक की ही रचना प्रतीत होती है।

बृहद्देवता की तिथि निश्चयात्मक रूप से निर्धारित करना सम्भव नहीं है। यह रचना निश्चित रूप से यास्क के बाद की है क्योंकि इसमें यास्क के नाम का उल्लेख कई बार किया गया है। बृहद्देवता के अनेक सन्दर्भ वर्तमान निरुक्त के सन्दर्भों से मिलते हैं। इसकी बाद की सीमा में पाणिनि का नाम लिया जा सकता है। इसमें पाणिनि का कहीं उल्लेख नहीं है। कात्यायन पाणिनि से पूर्व के थे। अतः कात्यायन और यास्क के बीच का काल बृहद्देवता का काल हो सकता है। मैक्डानल समस्त वेद-साहित्य की तिथियों को बहुत बाद की मानते हैं। अपने मानदण्ड के अनुसार वे बृहद्देवता का समय 500 ई० पू० के बाद का तथा 350 ई० पू० से पहले का मानते हैं। परन्तु मैक्डानल और अन्य विद्वानों के मत में बहुत अन्तर है। मैक्समूलर या मैक्डानल द्वारा निर्धारित काल तथा विन्टरनित्ज, बी० बी० बोध, जैकोबी, तिलक आदि विद्वानों द्वारा निर्धारित कालों में कई हजार वर्षों का अन्तर है। अतः इसी अनुपात से बृहद्देवता का काल भी बहुत प्राचीन सिद्ध होता है।

यजुर्वेदीय परिशिष्ट ग्रन्थ

यजुर्वेद की तीन अनुक्रमणिया उपलब्ध है—एक तैत्तिरीय संहिता की आत्रेयिशाखा से सम्बन्धित, दूसरी चारायणीय शाखा से सम्बन्धित तथा तीसरी माध्यन्दिन—वाजसनेयि शाखा से सम्बन्धित। तीनो का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

आत्रेयिशाखानुक्रमणी

मैक्समूलर के अनुसार इस अनुक्रमणी मे न केवल आत्रेयि-संहिता अपितु आत्रेयि-ब्राह्मण तथा आत्रेयि आरण्यक से सम्बन्धित भी सूची दी हुई है।[14] इसमे काण्ड, प्रश्न, अनुवाक तथा कण्डिकाओ की सूचना के अतिरिक्त यज्ञ-विशेष से सम्बन्धित सभी उपलब्ध सामग्री को एकत्रित किया गया है। हमे आत्रेयी शाखा से सम्बन्धित कोई संहिता नही मिली है और न ही चरणव्यूह मे आत्रेयि-शाखा का उल्लेख है। यह सम्भवत औखीय शाखा की ही कोई उपशाखा हो। इस अनुक्रमणी के अनुसार इस संहिता को वैशम्पायन ने यास्क पैंगी को दिया, यास्क ने तैत्तिरि को तैत्तिरि ने उख को तथा उख ने आत्रेय को, जिसने इसका पदपाठ तैयार किया तथा कुण्डिन ने इस पर वृत्ति लिखी।

चारायणीय शाखानुक्रमणी

मैक्समूलर की सूचना के अनुसार इस अनुक्रमणी का नाम मन्त्रार्षाध्याय है।[15] यह चरकशाखा की उपशाखा चारायणीय शाखा से सम्बन्धित है। इस अनुक्रमणी मे संहिता का नाम यजुर्वेद काठक दिया हुआ है परन्तु यह काठकसंहिता से सम्बन्धित नही है।

माध्यन्दिन-वाजसनेयि-अनुक्रमणी

यह अनुक्रमणी वाजसनेयि की माध्यन्दिन शाखा से सम्बन्धित है। इसके रचयिता कात्यायन माने जाते है। इसमे ऋषि, देवता, छन्द तथा खिल का विवरण दिया हुआ है।

सामवेद के परिशिष्ट ग्रन्थ

सामवेद की अनुक्रमणिया लिखने का प्रारम्भ सूत्रकाल से भी पहले हो चुका था। आर्षेय ब्राह्मण मे वेदगान तथा आरण्य गान के क्रम से सामवेद के मन्त्रो की सूची दी हुई है। इस प्रकार आर्षेय ब्राह्मण सामवेद की पहली अनुक्रमणी है।

सामवेद की अन्य अनुक्रमणिया बहुत आधुनिक मानी जाती हैं। सामवेद के

20 परिशिष्टों (हस्तलेख) के संग्रह में उन अनुक्रमणियों की संख्या 5वीं तथा छठी है।[15]

सामगान के क्रियात्मक पक्षों के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ लिखे गए जिन्हें लक्षण ग्रन्थ कहा जाता है। इनमें से कुछ प्रकाश में आए हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

पुष्पसूत्र

सामगान में प्रयुक्त मात्रा व परिवर्तन को पुष्प कहते हैं। इसी विषय को लेकर लिखे जाने के कारण इस ग्रन्थ का नाम पुष्पसूत्र है। इस ग्रन्थ को सामप्रातिशाख्य भी कहते हैं। परन्तु विषय विस्तार की दृष्टि से इसे प्रातिशाख्यों की कोटि में नहीं रक्खा जा सकता। इसमें सामगान में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों जैसे स्वर परिवर्तन, गान, स्वरभक्ति आदि का वर्णन है।

सामतन्त्र

सामतन्त्र भी पुष्पसूत्र के समान ही सामगान के क्रियात्मक पक्षों से सम्बन्धित है। विषय की दृष्टि से सामतन्त्र तथा पुष्पसूत्र बहुत निकट हैं।

पञ्चविधसूत्र

पञ्चविधसूत्र की रचना भी सामगान के क्रियात्मक पक्ष को लेकर हुई है। यह सामगान की पांच भक्तियों से सम्बन्धित है—प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव तथा निधन। सामगान में तीन प्रकार के पुरोहितों की आवश्यकता होती थी—प्रस्तोता, उद्गाता तथा प्रतिहार। प्रस्तोता प्रारम्भ करता था जिसे प्रस्ताव कहा जाता था, उद्गाता उद्गीथ गाता था तथा तीसरा प्रतिहार गाता था। प्रस्तोता पुनः उपद्रव नामक गान गाता था। इसके पश्चात् तीनों मिलकर निधन गाते थे। इन पांच प्रकार के गानों को भक्ति नाम से पुकारा जाता है। यह ग्रन्थ इन्हीं पांच भक्तियों से सम्बन्धित है, इसलिए इसे पञ्चविधसूत्र कहते हैं।

पञ्चविधसूत्र सूत्र शैली में लिखा गया है। इसमें दो प्रपाठक हैं। इस ग्रन्थ पर वृत्ति भी उपलब्ध है परन्तु इसके अथवा इसकी वृत्ति के रचयिता के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है।

मात्रा लक्षण

यह ग्रन्थ सामगान में प्रयुक्त ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तथा वृद्ध मात्राओं से सम्बन्धित है। इसमें मात्राओं के भी बहुत सूक्ष्म वर्गीकरण किए हुए हैं, यथा अर्धमात्रा, अणुमात्रा, अर्धतिस्र, अर्धचतस्र आदि। इसमें तीन वृत्तियों—द्रुता, मध्यमा तथा

विलम्बिता का भी वर्णन है। इसमें प्रत्युत्क्रम, अतिक्रम, कर्षण, स्वार गीति, काल आदि विषयों का वर्णन है। यह तीन खण्डिकाओं में विभाजित छोटा-सा ग्रन्थ है। इस पर वृत्ति भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थ के रचयिता तथा वृत्तिकार के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

प्रतिहारसूत्र

उपर्युक्त ग्रन्थों के समान प्रतिहारग्रन्थ भी सामगान के क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित है। परन्तु इसमें श्रौतसूत्र के विषय, यथा—सम्पत्सिद्धि, प्रायश्चित्त, पृष्ठानुकल्प तथा श्रौतयज्ञों में साममन्त्रों का विनियोग आदि भी वर्णित हैं। इसलिए इसे सामकल्पसूत्र का परिशेष माना जा सकता है।

यह ग्रन्थ सूत्र शैली में लिखा हुआ है। इसमें कुल 15 खण्ड हैं। प्रथम दो खण्डों में परिभाषाएं दी हुई हैं। इसका मुख्य विषय सामगान में प्रतिहार की विवेचना है। ग्रन्थ के प्रथम सूत्र में ही प्रतिहार-भक्ति की विवेचना की प्रतिज्ञा की गई है—

अथातः प्रतिहारस्य न्यायसमुद्देशं व्याख्यास्यामः। तीन से लेकर 10 खण्ड तक ग्रामेगेयम् सामगान के नियम वर्णित हैं। ग्यारह से लेकर 14 खण्ड तक आरण्यक गान के नियम हैं। 15वें खण्ड में निधन गान सम्बन्धी नियम वर्णित हैं।

प्रतिहारसूत्र का रचयिता कात्यायन माना जाता है। परन्तु ये यजुर्वेद के श्रौतसूत्र के रचयिता कात्यायन हैं या कोई और कात्यायन, यह निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता।

इस सूत्र पर वरदराज कृत दशतयी वृत्ति उपलब्ध है। वरदराज ने प्रतिहार सूत्र और आर्षेयकल्प दोनों पर वृत्ति लिखी है। जैसा कि उसने स्वयं कहा है उसने इस वृत्ति को लिखने से पहले ब्राह्मण, कल्पसूत्र, उपग्रन्थ, निदानसूत्र तथा उनकी व्याख्याओं को अच्छी प्रकार से देखा है—

> रचयति स वरदराजः प्रतिहारार्षेयकल्पयोर्वृत्तिम्।
> वीक्ष्य ब्राह्मणकल्पसूत्रोपग्रन्थनिदानतद्व्याख्या।

इस वृत्ति में अनेक प्राचीन ग्रन्थों यथा ताण्ड्य ब्राह्मण, पुष्पसूत्र, आर्षेयकल्प, द्राह्यायण, श्रौतसूत्र, आर्षेय ब्राह्मण, निदानसूत्र, क्षुद्रकल्प से उद्धरण लिये हुए हैं।

प्रतिहारसूत्र में अनेक प्राचीन आचार्यों और ग्रन्थों, सम्प्रदायों के उल्लेख हैं, यथा, अगस्त्य, अंगिरस, आत्रेय, काण्व, औशन, कौत्स, गौतम, जमदग्नि, भारद्वाज, माण्डव, मेधातिथ, वसिष्ठ, वात्स, वामदेव्य, वैखानस, वैष्णव, सौमित्र आदि।

क्षुद्रकल्पसूत्र

क्षुद्रकल्पसूत्र सामवेद की कौथुम शाखा का ग्रन्थ है। यह आर्षेय कल्प का ही

उत्तर भाग माना जाता है। भाष्यकार श्रीनिवास ने इसे उत्तरकल्पसूत्र ही कहा है। इस प्रकार क्षुद्र शब्द का प्रयोग सम्भवत: उत्तर अर्थ में ही हुआ है।

विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ श्रौतसूत्र का ही भाग है। इसे आर्षेय कल्प का ही एक पूरक ग्रन्थ माना जा सकता है। यह ग्रन्थ तीन प्रपाठकों में विभाजित है। प्रपाठक अध्यायों में और अध्याय खण्डों में विभाजित हैं। इसमें कुल छह अध्याय और 16 खण्ड हैं। भाष्यकार श्रीनिवास के अनुसार यह सूत्र आर्षेय कल्प का ही अविभाज्य अंग है। सम्पूर्ण आर्षेय कल्प में 17 अध्याय हैं। श्रीनिवास के अनुसार पहले 51 अध्यायों में ज्योतिष्टोम से लेकर विश्वसृजामयन तक एकाह, हीन तथा सत्र यज्ञों का वर्णन ब्राह्मणक्रम से है जबकि बाद के छह अध्यायों में ज्योतिष्टोम के प्रकरण में तथा अन्य शाखाओं में उल्लिखित षडह आदि यज्ञों तथा 'ऊह' और रहस्य' यज्ञों के प्रायश्चित तथा क्षुद्रादि साममन्त्रों का यज्ञों में नियम वर्णित है—

> आर्षेयकल्प सप्तदशाध्याय । तत्रैकादशभिरध्यायैं ज्योतिष्टोमादिविश्व-सृजामयनपर्यन्तानि एकाहहीनसत्राणि ब्राह्मणक्रमेणोक्तानि। क्षुद्रकल्पे तु षड्भिरध्यायैं ब्राह्मणे ज्योतिष्टोमप्रकरणोक्तानां शाखान्तरोक्तानां षडहविचारादीनां ऊहरहस्ययो प्रायश्चित्तक्षुद्रादीनां साम्नां यज्ञेषु कल्प उच्यते।

क्षुद्रकल्पसूत्र में मुख्यरूप से काम्ययज्ञ, वर्णकल्प, उभयसामयज्ञ, अग्निष्टोम, पृष्ठ्ययज्ञ, द्वादशाह, यज्ञों का वर्णन है।

क्षुद्रकल्प के रचयिता गार्ग्य मशक, जिन्होंने आर्षेय कल्प की रचना की है, माने जाते हैं। निदानसूत्रादि बाद के ग्रन्थों में आर्षेय कल्प तथा क्षुद्रकल्प में से उद्धरण एक ही ग्रन्थ मानकर दिये हैं। इसी आधार पर डॉ० बी० आर० शर्मा दोनों ग्रन्थों का रचयिता एक ही व्यक्ति का मानते हैं।[17] परन्तु डॉ० रामगोपाल का मत है कि क्षुद्रकल्प की शैली आर्षेय कल्प की शैली से बहुत भिन्न है। इसलिए दोनों ग्रन्थों को एक ही व्यक्ति की रचना नहीं माना जा सकता। इनके अनुसार क्षुद्रकल्प बाद की रचना है।[18]

प्रमाणों के अभाव में केवल अटकलों के आधार पर निश्चयपूर्ण ढंग से कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिए जब तक विपरीत ठोस प्रमाण नहीं मिलते हैं, परम्परा पर विश्वास करते हुए क्षुद्रकल्प को मशक गार्ग्य की रचना माना जाना चाहिए।

क्षुद्रकल्प पर श्रीनिवास का भाष्य उपलब्ध है। यह भाष्य बहुत विस्तृत एवं उपयोगी है। इसमें अनेक प्राचीन ग्रन्थों से उद्धरण दिए गए हैं।

सामवेद के अन्य कुछ सूत्र ग्रन्थ हैं जिन्हें उपग्रन्थ नाम से जाना जाता है। क्षुद्रकल्प, निदानसूत्रादि उपग्रन्थों की कोटि में ही रखे गए हैं।

अथर्ववेदीय-अनुक्रमणी

अथर्ववेदीय-अनुक्रमणी के एक हस्तलेख की सूचना मैक्समूलर ने दी है जिसे ब्रिटिश सग्रहालय मे प्रो० व्हिटने ने खोजा था। यह दस पटलो में विभाजित है और अथर्ववेद के मन्त्रो की पूर्ण सूची प्रस्तुत करती है। इसका नाम बृहत् सर्वानुक्रमणी है।[19]

अन्य परिशिष्ट ग्रन्थ

उपर्युक्त परिशिष्ट ग्रन्थो के अतिरिक्त और भी परिशिष्ट ग्रन्थ लिखे गए जो वैदिक वाड्मय के सम्बन्ध मे सूचना देते है। इसमे से कुछ परिशिष्ट तो पूर्वरचित सूत्र ग्रन्थो के पूरक ग्रन्थ हैं। जो बात मुख्य सूत्र मे वर्णित नहीं हुई उसका विवरण उस ग्रन्थ के परिशिष्ट ग्रन्थ मे दिया गया। परन्तु कुछ परिशिष्ट स्वतन्त्र रूप से लिखे गए जो किसी एक वेद से सम्बन्धित न होकर सभी वेदो के विषय मे सामान्य सूचना देते हैं। इस प्रकार के ग्रन्थ अब प्राय नष्ट हो गए हैं। परन्तु एक बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अब भी उपलब्ध है जिससे चारो वेदो के विषय मे सूचना मिलती है। यह ग्रन्थ है चरणव्यूह जिसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

चरणव्यूह

चरणव्यूह सूत्र शौनक की कृति मानी जाती है। यह बहुत छोटी सी कृति है। इसमे पाच खण्ड है—

1 ऋग्वेदखण्ड, 2 यजुर्वेदखण्ड, 3 सामवेदखण्ड, 4 अथर्ववेदखण्ड तथा 5 फलश्रुतिखण्ड।

इस ग्रन्थ मे प्रत्येक वेद की शाखाओ का विवरण है। भाष्यकार महीदास ने चरणव्यूह की व्याख्या इस प्रकार की है—"वेदराशे चतुर्विभागाच्चरण उच्यते। तस्य व्यूह समुदाय। चतुर्वेदाना समुदाय व्याख्यास्याम इत्यर्थ" अर्थात् समस्त वाड्मय के चार भागो मे विभाजित होने के कारण चरण कहते हैं। व्यूह का अर्थ है, समुदाय इस प्रकार चरणव्यूह का अर्थ हुआ चार वेदो का समुदाय। एक अन्य स्थान पर चरणव्यूह की व्याख्या इस प्रकार की है—'वेदशाखापरिज्ञानार्थं चरणव्यूहसूत्रम्' अर्थात् चरणव्यूहसूत्र की रचना वेद की शाखाओ के ज्ञान के लिए है। दूसरा अर्थ अधिक समीचीन है क्योकि चरण का अर्थ शाखा होता है।

शाखाओ के ज्ञान के अतिरिक्त चरणव्यूह मे अन्य सूचनाए भी दी गई हैं। उदाहरणतया यजुर्वेद के परिशिष्ट ग्रन्थो की गणना कराई गई है जो इस प्रकार हैं—यूपलक्षण, छागलक्षण, प्रतिज्ञा, अनुवाकसख्या, चरणव्यूह, श्राद्धकल्प, शुल्व,

पार्षद, अनुयजूषि, इष्टकापूरण, प्रवराध्याय, उक्थशास्त्र, क्रतुसंख्या, निगमा, यज्ञपार्श्व, होत्रक, प्रसवोत्थान, कर्मलक्षण। अथर्ववेद के पाच कल्प बताए हैं—नक्षत्रकल्प, विधानकल्प, विधिविधानकल्प, संहिताकल्प तथा शान्तिकल्प। उपर्युक्त परिशिष्टों के कुछ हस्तलेख विद्यमान हैं। चरणव्यूह पर महीदास का भाष्य उपलब्ध है।

कल्पसूत्रों के परिशिष्ट

प्रत्येक वेद की शाखा के अनुयायी बहुत बाद के काल तक अपनी शाखा की परंपरा सुरक्षित रखते आए थे। उन्होंने परिस्थिति तथा काल के अनुसार होने वाले परिवर्तनों के अनुसार यज्ञ पद्धति में भी कुछ परिवर्तन तथा परिवर्धन किए। इन सब अतिरिक्त विषयों का समावेश पूरक ग्रन्थों के रूप में हुआ।[1] ये पूरक ग्रन्थ ही परिशिष्ट कहलाए। कल्पसूत्र के सम्बन्धित अंगों के साथ इन्हें जोड़ा गया। इन परिशिष्टों का उल्लेख सम्बन्धित कल्पसूत्रों के प्रसंग में किया गया है।

कल्पसूत्र से सम्बन्धित पद्धति और प्रयोग नामक ग्रन्थ भी लिखे गए। पद्धति ग्रन्थों में यज्ञ के सैद्धान्तिक पक्षों को समझाया गया जबकि प्रयोग ग्रन्थों में यज्ञ के क्रियात्मक पक्ष को स्पष्ट किया गया। कुछ पद्धतिग्रन्थ उल्लेखनीय हैं—केशव स्वामी द्वारा रचित बौधायन पद्धति, अग्निष्टोम पद्धति, याज्ञिकदेव द्वारा रचित कात्यायन पद्धति, भावदवकृत छन्दोग पद्धति, हरिहरकृत अन्त्येष्टि पद्धति, अथर्वणीय पद्धति, नारायणकृत शाखायन श्रौतसूत्र पद्धति। प्रयोग ग्रन्थों में उल्लेखनीय हैं—रुद्रदेव कृत आश्वमेधम्, ब्रह्मत्वम्, आपस्तम्ब स्मार्तप्रयोग, वेंकटेशकृतप्रयोगमाला, नारायण भट्ट कृत प्रयोगरत्न, तालवृन्तनिवासिकृत (जिसे आप्स्टिपिल्ल भी कहते हैं) प्रयोगवृत्तियां आदि।

ये ग्रन्थ यद्यपि वेदांग की कोटि में नहीं आते परन्तु वैदिक परम्परा को आगे बढ़ाने में इन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया है अत: इनका वेदांग के सहायक ग्रन्थों के रूप में प्रमुख स्थान है।

सन्दर्भ

1. सर्वा, 1.1
2. वही
3. छन्दोऽनुक्रमणी, 1.1

4. उमेश चन्द्र शर्मा, छन्दोऽनुक्रमणी, इंडेक्स
5. उमेश चन्द्र शर्मा द्वारा सम्पादित सर्वानुक्रमणी के साथ प्रकाशित
6. मैक्समूलर, एशियेंट संस्कृत लिट्रेचर, पृ० 103
7. मैक्डानल, स० बृहद् देवता, भूमिका, पृ० 18
8. पृ० देवता, 1.2.11
9. *बृहद्देवता, 2 20.99*
10. मैक्डानल, वही, पृ० 29
11. मैक्डानल, बृहद्देवता, परिशिष्ट 6, पृ० 136-45
12. मैक्डानल, वही, भूमिका, पृ० 23-24
13. बृ० दे० 2.136
14. मैक्समूलर, एशियेंट संस्कृत लिट्रेचर, पृ० 198
15. वही, बर्लिन हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, संख्या 142
16. मैक्समूलर, वही, पृ० 202
17. *डा० बी० आर० शर्मा, सपादक, अद्भुतकल्प, भूमिका, पृ० 25*
18. डा० रामगोपाल, इंडिया आफ वैदिक कल्पसूत्रज्, पृ० 492
19. मैक्समूलर, वही, पृ० 203

ग्रन्थानुक्रमणिका

1. अथर्वप्रातिशाख्य — डॉ० सूर्यकान्त, मेहरचन्द लक्ष्मणदास देहली, 1968
2. आग्निवेश्य गृह्य सूत्र — स० रवि वर्मा त्रिवन्द्रम, 1940
3. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र — स० रिचर्ड गार्बे 1882-1902
4. आश्वलायन गृह्यसूत्र — नारायण वृत्ति, स० वी० एन० एन० रानाडे, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1936
5. आश्वलायन श्रौतसूत्र — अंग्रेजी अनुवाद, अध्याय 1-6, स० ओल्डनबर्ग, सेक्रेड बुक्स ऑफ ईस्ट, भाग 29, 1886
6. ईशादि नौ उपनिषद — हरिकृष्ण गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2029
7. ऋक्तन्त्रम् — स० डॉ० सूर्यकान्त, मेहरचन्द लक्ष्मणदास देहली 1970
8. ऋग्वेद — वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, द्वितीय संस्करण, 1976

9. ऋग्वेद प्रातिशाख्य — डॉ० वीरेन्द्र कुमार वर्मा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, शोध प्रकाशन, 1972
10. ऐतरेय ब्राह्मण — सायण भाष्य सहित आनन्दाश्रम सस्कृत सीरीज पूना, 1930-31
11. ऐतरेय आरण्यक — स० ए० बी० कीथ, मास्टर पब्लिसर्ज नई देहली, 1981
12 काठक श्रौतसूत्र सकलनम् — स० डॉ० सूर्यकान्त, लाहौर, 1928
13 कात्यायन श्रौतसूत्र — स० विद्याधर शर्मा, अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1930
14 काशिका वृत्ति — स० श्री नारायण मिश्र, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1968
15. कौशिक सूत्र — स० एफ० ब्लूमफील्ड, जे०ए०ओ० एस० खण्ड-14, नई दिल्ली, 1890
16 कौषीतक गृह्यसूत्र — भवत्रात विवरण सहित स० टी० आर० चिन्तामणि, मद्रास 1944
17 खादिर गृह्यसूत्र — रुद्रस्कन्द वृत्ति सहित, स० महादेव शास्त्री और एल० श्रीनिवासाचार्य, मैसूर, 1913
18 गोपथ ब्राह्मण — स० द० गास्त्र, लिडेन, 1919
19. गोभिल गृह्यसूत्र — जर्मन अनुवाद, स० प्रॉ० नौअर, डोरपत, 1884, 1964
20 चरण व्यूह — स० उमेश वर्मा, विवेक पब्लिकेशज, अलीगढ, 1976
21 छन्द शास्त्रम् — स० मेधाव्रताचार्य, गुरुकुल झज्जर, रोहतक, स० 2024 वि०
22. जैमिनीय श्रौतसूत्र — वृत्ति भवत्रात, स० परमानन्द शास्त्री, देहली 1966
23 छन्दोऽनुक्रमणी — स० उमेश चन्द्र शर्मा, विवेक पब्लिकेशज, अलीगढ, 1981
24 तन्त्रवार्तिक — बनारस
25 तैत्तिरीय प्रातिशाख्य — अनुवाद, डब्ल्यू० डी० व्हिटन, जे० ए० ओ० एस०, भाग 9
26 तैत्तिरीय सहिता — स० एम० डी० सातवलेकर, पारदि, 1957
27. त्रिकाण्डशेषकोश — पुरुषोत्तम देव, बम्बई, 1916

28 निघण्टु व निरुक्त	अंग्रेजी अनुवाद सहित, सं० लक्ष्मण स्वरूप लाहौर, 1927
29 निदान सूत्र	सं० के० एन० भटनागर, लाहौर, 1939
30 पंचविध सूत्र मात्रा लक्षण	वी० आर० शर्मा, केन्द्रीय विद्यापीठ, तिरुपति
31 पाणिनीय शिक्षा	डॉ० मनमोहन घोष, एशियन ह्यूमनिटीज देहली, मद्रास, 1968
32 पैप्पलाद संहिता	सं० रघुवीर, देहली, 1979
33 प्रतिहार सूत्रम्	सं० डॉ० आर० शर्मा, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, 1973
34 बृहदारण्यक उपनिषद	एस० राधाकृष्णन, द प्रिन्सीपल उपनिषदस
35 बृहद्देवता	सं० मैकडानल, मोतीलाल बनारसी दास, 1965
36. बौधायन गृह्यसूत्र	सं० आर० सामशास्त्री मैसूर, 1920
37 भारद्वाज गृह्यसूत्रम्	सं० एच० जे० डब्ल्यू सलामोन्स, लिडेन 1913
38 भारद्वाज श्रौतसूत्र	सं० सी० जी० काशीकर, अंग्रेजी अनुवाद सहित, पूना, 1964
39 मनुस्मृति	सं० नारायण राम आचार्य 10वा संस्करण बम्बई, 1946
40 महाभाष्य (पतञ्जलि)	हरियाणा साहित्य-संस्थान गुरुकुल झज्जर, रोहतक, 1963
41 महाभारत	नीलकण्ठ व्याख्या सहित, सं० रामचन्द्र शास्त्री, पूना, 1929 33
42 माण्डूकी शिक्षा	भगवद्दत्त, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दरियागंज, नई दिल्ली
43 मानव गृह्यसूत्र	अष्टावक्र भाष्य सहित, सं० रामकृष्ण हर्षजी शास्त्री, श्रीनगर, 1928-1934
44 मानव श्रौतसूत्र	सं० जे० एम० वेन गेल्डनर, नई दिल्ली 1961
45 मुण्डकोपनिषद्	एस० राधाकृष्णन् द प्रिन्सीपल उपनिषदस्
46 मैत्रायणी संहिता	सं० एस० डी० सातवलेकर, 1952
47 याज्ञवल्क्य श्रौतसूत्र	आनन्दाश्रम विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1926
48. लाट्यायन श्रौतसूत्र	अगस्वामी भाष्य सहित, सं० आनन्द चन्द्र कलकत्ता, 1872

49 लौगाक्षि गृह्यसूत्र पर देवपाल का भाष्य — स० एम० कौल बम्बई, 1928
50 रामायण (वाल्मिकि) — स० आर० नारायण स्वामी ऐयर, मद्रास, 1933
51 वाजसनेयि-प्रातिशाख्य — स० बी० वेकटरमन शर्मा मद्रास, युनिवर्सिटी, 1934
52 वाराह गृह्यसूत्र — स० रघुवीर, लाहौर, 1932
53 वाराह श्रौतसूत्र — स० डॉ० डब्ल्यू केलैंड तथा रघुवीर, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, 1971
54 वैतान सूत्र — समादित्य भाष्य सहित, स० विश्वबन्धु, होशियारपुर, 1967
55 वैखानस स्मार्त सूत्रम् — स० डॉ० केलैंड, कलकत्ता, 1929
56 शतपथ ब्राह्मण — रत्नदीपिका सहित, हिन्दी अनुवाद, प० गगा प्रसाद उपाध्याय, भाग 1-3, 1967, 1969, 1970
57 क्षुद्र कल्प — बी० आर० शर्मा, विश्वेश्वरानन्द, विश्वबन्धु सस्थान, होश्यारपुर, 1974
58 शांखायन श्रौतसूत्र — डब्ल्यू केलेंड, अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका, नागपुर, 1953
59 षड्विंश ब्राह्मण — केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, 1967
60 सस्कार रत्नमाला — भट्ट गोपीनाथ दीक्षित, आनन्दाश्रम सस्कृत सीरीज, पूना, 1899
61 स्कन्द पुराण — स० श्री राम शर्मा आचार्य, सस्कृति सस्थान, ख्वाजा कुतुब वेदनगर बरेली, उ० प्र०, द्वितीय सस्करण, 1976
62 हिरण्यकेशि-गृह्यसूत्र — गृह्यसूत्र, स० किर्स्ते, वियना 1889
63 हिरण्यकेशि-श्रौतसूत्र — आनन्द आश्रम सस्कृत सीरीज पूना, 1907-32

Modern Authors

64 अग्रवाल वी० एस० — पाणिनिकालीन भारतवर्ष चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1969
65 आर्नोल्ड — वैदिक मीटर, मोतीलाल बनारसीदास, देहली, 1967
66 एच० ओल्डन वर्ग — सेक्रेड बुक्स ऑफ ईस्ट खण्ड 29, आक्सफोर्ड, 1889

67 उपाध्याय, बलदेव — संस्कृत शास्त्रों का इतिहास संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1969

68 काणे पी० वी० — हिस्ट्री ऑफ धर्म शास्त्रज् खण्ड, 1, भाग 1, भण्डारकर आरियण्टल इन्स्टिट्यूट, पूना, 1930-62

69 काशीकर सी० जी० — अ सर्वे ऑफ द श्रौतसूत्रज् बम्बई विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका खण्ड 25, भाग 2, 1966

70 कृष्णलाल — गृह्य मन्त्र और उनका विनियोग, नगनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1970

71 चिन्तामणि टी० आर० — प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रांजेक्शन्स ऑफ द ऑरियण्टल कॉन्फ्रेंस त्रिवन्द्रम

72 दीक्षित शंकर बालकृष्ण — भारतीय ज्योतिष प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, लखनऊ

73 ब्लूम फील्ड — द अथर्ववेद एण्ड गोपथ ब्राह्मण स्ट्रास बर्ग, 1899

74 ब्यूलर — सेक्रेड बुक ऑफ ईस्ट, खण्ड 14, आक्सफोर्ड, 1889

75 भारद्वाज, सुधीकान्त — लिंग्विस्टिक स्टडी ऑफ धर्मसूत्रज, मन्थन पब्लिकेशन, रोहतक, 1982

76 भारद्वाज, सुधीकान्त — अनलिटिकल नोशन्ज ऑफ स्पीच इन दि ऋग्वेद, म० द० वि० रिसर्च जर्नल, खण्ड 1, भाग 1

77 मैक्डानल ए० — अ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर, लन्दन, 1900

78 मैक्समूलर — एन्शियेंट संस्कृत लिट्रेचर, इलाहाबाद

79 मैक्समूलर एफ० — सेक्रेट बुक्स ऑफ ईस्ट खण्ड 30, आक्सफोर्ड, 1889

80 युधिष्ठिर मीमांसक — व्याकरण शास्त्र का इतिहास प्रथम भाग, रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, सोनीपत हरियाणा

81 रघुवीर — ऑरियन्टल मैगजीन, पंजाब युनिवर्सिटी लाहौर 1928

82 रामगोपाल — इण्डिया ऑफ वैदिक कल्प सूत्रज्, मोतीलाल बनारसीदास, द्वितीय संस्करण, देहली 1983

83. वर्मा सिद्धेश्वर — फोनेटिक आब्जर्वेशन्स ऑफ इण्डियन ग्रेमेरियंश, देहली, 1961

84 विण्टरनित्ज — अ हिस्ट्री ऑफ इन्डियन लिट्रेचर भाग 1, कलकत्ता, 1927

85. वैद्य सी० वी० — हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिट्रेचर (वैदिक काल) पूना, 1930

86 सिंह के० पी० — ए० क्रिटिकल स्टडी ऑफ कात्यायन श्रौतसूत्र, वाराणसी, *1969*

87 स्पेयर — स्टडी अबाउट द कथा सरित्सागर,

□□